अंक-22

ISSN 0975-5217

UGC-CARE LIST (GROUP-I)

वर्ष 2022

भैरवी

संगीत शोध पत्रिका

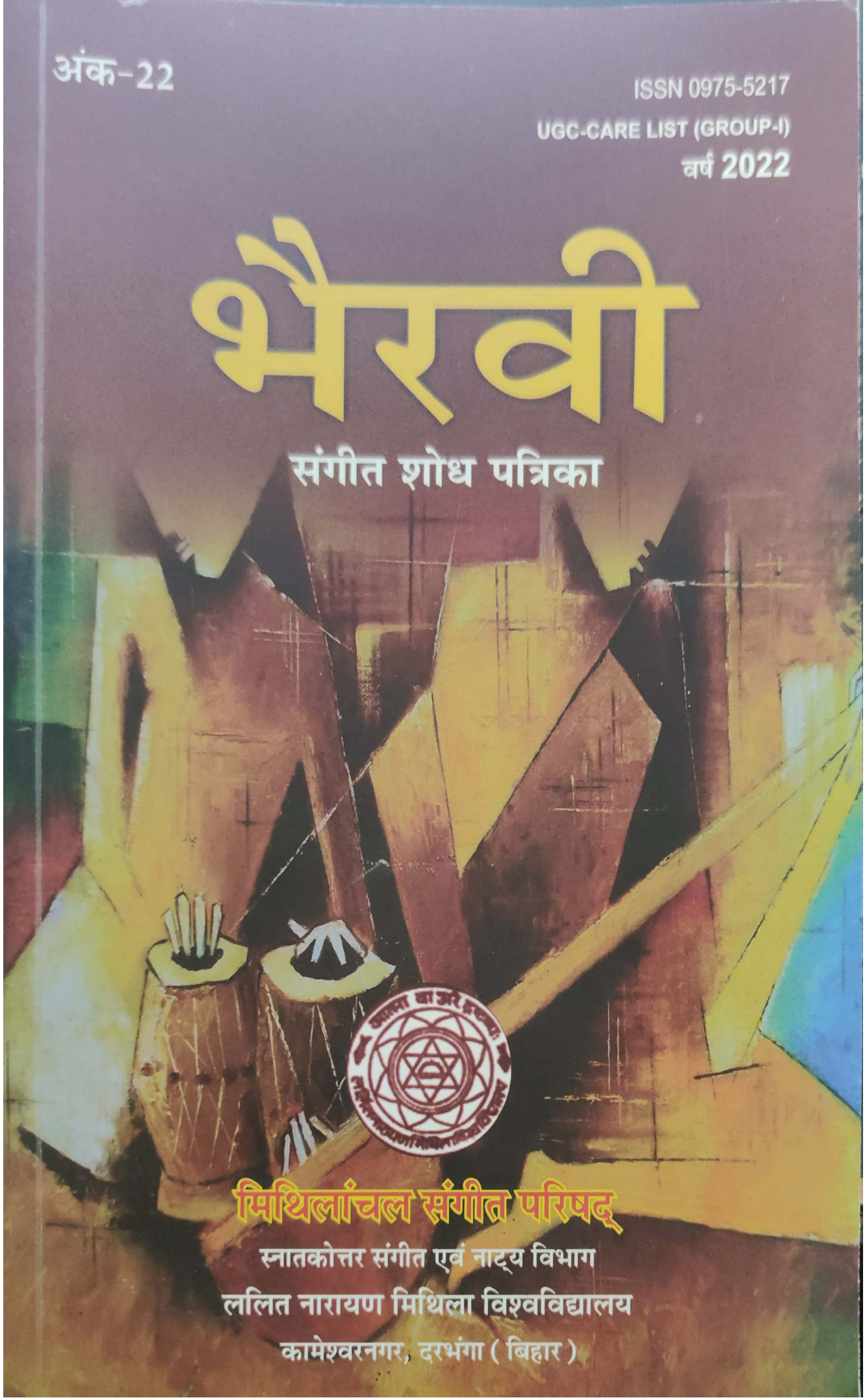

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

Scanned with OKEN Scanner

ISSN 0975-5217
UGC-Care list (Group-I)

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

(वर्ष 2022 अंक 22)

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित कला संकाय
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

ISSN 0975-5217

UGC-Care list (Group-I)

वर्ष-2022, अंक : 22

प्रधान सम्पादक

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,

कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

मो. - 09430063265

ईमेल - npushpamji@gmail.com

मूल्य

इस अंक का मूल्य : 400/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 800/- रुपये / त्रैवार्षिक 2400/- रुपये

पंचवार्षिक 4000/- रुपये / आजीवन : 15000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 850/- रुपये / त्रैवार्षिक 2500/- रुपये

पंचवार्षिक 4500/- रुपये / आजीवन : 16000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैक ड्राफ्ट से)

(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

''भैरवी'' विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित एवं UGC-Care list (Group-1) में शामिल है। साथ ही यह Peer Reviewed Refereed Visual and Performing Arts Research Journal है।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।

प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद-201 102

Patron

Prof. Chaman Lal Verma
Ex. Dean and Head
University Department of Music
Himachal Pradesh University, Shimla

Prof. Pt. Ritwik Sanyal
Top Grade Dhrupad Artist
Ex. Dean, Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. Pt. Sahitya Kumar Nahar
Vice-chancellor
Raja Maan Singh Tomar Sangeet Vishwavidyalaya
Gwalior, Madhya Pradesh

Editorial Board

Chief Editor

Prof. Pushpam Narain
Ex. Dean, Faculty of Fine Arts
Head, University Department of Music and Dramatics
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

Editorial/ Advisory Board

1. Prof. K. Shashi Kumar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Banaras Hindu University, Varanasi
2. Prof. Snehashish Janpriya Das
   Head. Department of Music
   Women's College Jag Chowk, Amarawati, Maharashtra
3. Dr. Ashwani Kumar Singh
   Associate Prof, Department of Music
   Faculty of Performing Arts. M.S. University, Baroda, Gujrat
4. Dr. Shobhit Kumar Nahar
   Asst. Prof. Instrumental Music
   Women's College
   Banaras Hindu University, Varanasi

Peer Review Committee

1. Prof. Om Prakash Bharti
   Head, Department of Performing Arts
   Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,
   Wardha, Maharashtra
2. Dr. Rajesh Kelkar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Maharaja Siyaji Rao University, Baroda, Gujrat
3. Prof. Umesh Kumar
   Head, Department of Hindi
   B.M.A Callege Baheri, Bihar
4. Dr. Amar Kant Kuwar
   Head, Department of Hindi
   M.L.S.M College, Darbhanga, Darbhanga, Bihar
5. Dr. Santosh Dattatrayrao Parchure
   Head, Department of Music
   S.P.H. Women's College, Malegaon, Nashik, Maharashtra
6. Dr. Shashank S. Maktedar
   Associate Prof. and Officiating Principal
   Goa College of Music, Panji, Goa
7. Dr. Ved Prakash
   University Department of Music and Dramatics
   Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar
8. Dr. Ramshankar
   Faculty of Music and Performing Arts
   B.H.U., Varanasi
9. Dr. Pallavi Shailesh Meshram
   Associate Prof. In Applied Arts
   Bharti Vidyapeeth' Collge of Fine Arts, Pune, Maharashtra

जपात्कोटि गुणं ध्यानं ध्यानात् कोटि गुणं लय।
लयात्कोटि गुणं गानं गानात् परतरं नाहि।।

(जप से करोड़ों गुणा प्रभावी ध्यान है, ध्यान से करोड़ गुणा लयात्मकता प्रभावशाली है। लय प्रधान जप से करोड़ गुणा प्रभाव गान का है और साधना के लिए गान अर्थात् संगीत से उत्तम उपाय अन्य कोई नहीं।)

'Music is the bridge of peace and love'

‘संगीत दो देशों के बीच शान्ति और प्रेम का सेतु है।’

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

संपादक की कलम से ...

संगीत शिक्षण का तात्पर्य सारगर्भित रूप में संगीत के साधना पक्ष में विद्यार्थी में अटूट श्रद्धा व आस्था उत्पन्न करना, संगीत के प्रयोगों के प्रति विशाल दृष्टिकोण अपनाते हुए भी उसके लालित्य एवं रसात्मक तत्वों के प्रति सचेत रहना तथा संगीत के उचित विकास के लिए प्रयत्नशील होना, वैज्ञानिक प्रगति के युग में वैज्ञानिक संयंत्रो का आश्रय लेते हुए तथा मनोवैज्ञानिक विचार को अपनाते हुए उसके सांस्कृतिक महत्व को समझना भी वर्तमान संगीत शिक्षा प्रणाली के आवश्यक अंग हैं। इन सभी बातों का सुंदर संतुलन एवं समन्वयन संस्थागत संगीत शिक्षण में ही संभव है।

एक तरह से देखा जाए तो सौंदर्य शास्त्र में अध्यात्म, दर्शन तथा मनोविज्ञान अंतर्निहित है। कला में निहित सौंदर्य तभी पूर्ण रूप से पल्लवित होता है जब कलाकृति में निहित भावनात्मक सौंदर्य मानव के हृदय को उद्वेलित कर उसे सांसारिकता से विछिन्न कर एक ऐसे आलौकिक संसार में करा दें जहाँ कलाकृति में निहित सौंदर्य ही सर्वापरि हो। अतः संगीत की शिक्षा पद्धति में इन विशिष्ट पक्षों पर समाहित होना भी अनिवार्य है। वर्तमान संदर्भ में इस बात की तीव्र आवश्यकता है कि संगीत शिक्षा प्रणाली को इतना सूक्ष्म बनाया जाए कि उससे एक ओर संगीत का कलापक्ष व सांस्कृतिक पक्ष और दूसरी ओर शैक्षणिक एवं सामाजिक पक्ष सशक्त होकर देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप उपयोगी सिद्ध हो सके और साथ ही साथ अपनी कलात्मक समृद्धता को भी चिरंजीवी बनाए रखने में समर्थ सिद्ध हो सके।

कला कोई भी हो उसका उद्देश्य मानव मन के अमूर्त भावों को मूर्त रूप देना, उसका लक्ष्य जीवन को सौंदर्यमय बनाना तथा सौंदर्य के माध्यम से दिव्यात्मकता का अनुभव कराते हुए मानव का आत्मिक उत्थान कराना एवं उसके व्यक्तित्व को नैतिक उत्कृष्टता से परिपूर्ण कराना है। अतः संगीत शिक्षा में यह आवश्यक है कि संगीत के छात्रों को उसमें निहित सौंदर्य के अध्यात्मिक पक्ष से परिचित कराकर संगीत की कलात्मक गरिमा से अवगत कराया जाए।

विद्वानों के मतानुसार संगीत की साधनामें अष्टयोंगांग यथा– यम, नियम, आसन, ध्यान, धारणा, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा समाधि का पालन करने से साधक में भावात्मक पवित्रता, धैर्य, लगन, इंद्रियों पर संयम एकाग्रचित होने की क्षमता, दीर्घश्वास धारण करके

धाराप्रवाह बनाए रखने की क्षमता आ जाती है। अतः संगीत के शिक्षक एवं शिक्षार्थी को सौंदर्यशास्त्र एवं अध्यात्म के इन अंगों से परिचित होना आवश्यक हो जाता है।

यद्यपि यह सभी अंग संगीत साधना की उत्कृष्ट अवस्था में योग साधना के समान है तथापि संगीत शिक्षा के प्रारंभिक चरण में भी छात्रों का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि संगीत कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिए या संगीत की शिक्षा ग्रहण करने में साधना का प्रारंभ से लेकर अंत एक विशेष महत्व ही नहीं वरन् यहीं संगीत सीखने का एकमात्र साधन है। संगीत शिक्षा प्रणाली में इस दृष्टिकोण को अपनाना नितांत आवश्यक है क्योंकि साधना एवं रियाज से ही विद्यार्थी में संगीत पर चरितार्थ होनेवाली सौंदर्यात्मक केंद्रों के अंतर्गत स्वर, लय, ताल एवं पद आदि के गुंथाव में निरंतरता, अखंडता, मधुरता, स्पष्टता, नियमबद्धता, सुव्यवस्था, विविधता, एकरूपता, जटिलता, प्रमाण बद्धता, संयम, कोमलता आदि सौंदर्यात्मक तत्वों को विभिन्न सांगीतिक प्रयोग के माध्यम से प्रयुक्त करते हुए सौंदर्यात्मक सांगीतिक कृति के रूप में राग की अवतारणा या किसी विशिष्ट गेय विधा में विधागत सीमाओं के अनुरूप कलात्मक अमूर्त चित्रण करने की क्षमता आ जाती है।

आज के युग में ज्ञान और शिक्षा की परिभाषा में बहुत परिवर्तन आ गया है। ज्ञान मात्र जानकारी का पर्याय हो गया है। विशेषकर शिक्षा संस्थाओं में यह बात शत प्रतिशत लागू होती है। ज्ञान प्राप्ति का मुख्य उद्देश्य आत्मशांति प्राप्त करना होना चाहिए। परंतु आज स्कूली शिक्षा का चरम लक्ष्य मात्र प्रमाण-पत्र प्राप्ति हो गया है। ज्ञान की गहराई का स्थान जानकारी के विस्तार ने ले लिया है तथा उसकी सहजता तथा गंभीरता का स्थान दिखाने और औपचारिकता ने ले लिया है।

चर्चाएँ अनंत हैं, लगातार कुछ ना कुछ आपके परामर्श के लिए करती रहूँगी। दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कल की शोध पत्रिका भौरवी का 22वाँ भाग आप सभी सुधी पाठकों के लिए समर्पित है। संगीता नुरागी विद्वानों एवं शोध छात्रों के आलेख ज्ञानवर्धक हैं। आपको पढ़कर अच्छा लगेगा। इसी आशा के साथ।

—प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण
संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

अनुक्रम

संपादक की कलम से ... 9

1. हिमाचल के किन्नौर के विभिन्न पर्वों में गाए जाने वाले लोकगीत : एक विवेचन — *डॉ. सरिता नेगी* 15
2. रामपुर रियासत और सदारंग परम्परा : एक अध्ययन — *रवि पाल* 23
3. संगीत कला में सौन्दर्यारसानुभूति — *कोमल रानी* 28
4. 'किराना घराना और आगरा घराना : बंदिश की विशेषता का तुलनात्मक अध्ययन' — *पारूल शर्मा* 33
5. कथक समूह नृत्य शैली में आधुनिक प्रयोग — Ishita Bhatnagar and Prof. Ravi Kumar Bhatnagar 37
6. बनारस घराने के कीर्तिमान गायक पद्मभूषण स्वर्गीय पंडित राजन मिश्र जी की सांगीतिक जीवन यात्रा — *ज्योति यादव* 45
7. सूफी संगीत में आध्यात्म एवं सूफी संत कलाकार — *डॉ. आकांक्षा पाल* 54
8. पं. अप्पा साहब जलगांवकर. जीवनी एवं हारमोनियम वादन शैली — डॉ. श्यामा कुमार भारती 58
9. टप्पा गायकी : एक अवलोकन — डॉ. मधुमिता भट्टाचार्य 65
10. संस्थागत शिक्षा पद्धति में संगीत शिक्षण को प्रभावशाली बनाने हेतु सहायक सामग्री की उपयोगिता — Dr. Anjalee Narayan 70
11. लोकगीतों के विविध आयाम : लोकधर्मी कवि श्री रामस्वरुप लाल 'मंगल' जी की गेय रचनाओं के सन्दर्भ में एक व्यक्तिक अध्ययन — मनोहर कृष्ण श्रीवास्तव, डॉ. संगीता पंडित 78
12. संगीत में गुरू-शिष्य शिक्षा का नवीन माध्यम— ऑनलाइन विडीयो कॉन्फ्रेंसिंग — डॉ. अश्विनीकुमार सिंह 85
13. संगीत और ज्योतिष शास्त्र का अन्तर्सम्बन्ध — कल्याणी गुप्ता 88
14. सुरजापुरी लोकगीतः सीमांचल की एक अतुल्य विरासत — डॉ. सुनील कुमार तिवारी, मौसमी सिन्हा 93

15. उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में
आगरा घराने का योगदान : एक अध्ययन — मेघना कुमार 99

16. उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में ख्याल गायन
का उद्भव एवं उसका विकास — दीपक सिंह 103

17. भोजपुरी समाज को उत्कृष्ट बनाने में
भिखारी ठाकुर का लोक नाट्य परंपरा — मो. इब्रान, डॉ. सुरेन्द्र कुमार 108

18. ध्रुपद गायन शैली में वीघा का स्थान — डॉ. विशाल जैन, अंजू पा डेय 117

19. धमार गायकी — डॉ. स्वाति शर्मा 121

20. भारत में बाल अधिकार रू बाल श्रम
सुशीला देवी यादव, प्रोफेसर सोहन लाल मीणा 129

21. ख्याल गायन में पंडित कुमार मर्डुर जी
की घरानेदार गायकी — ऋषभ चतुर्वेदी 137

22. लोकगीतों का विकासक्रम और नवाचार
(भोजपुरी लोकगीतों के विशेष सन्दर्भ में) — मनीषा, डॉ विशाल जैन 143

23. संगीत एवं दर्शन का अन्तः सम्बन्ध — प्रो. ऋचा कुमार, ज्योतिर्मयी मिश्रा 149

24. संगीत में राग यमन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव — आकाश कुमार, डॉ. विशाल जैन 156

25. भारतीय संगीत में कण्ठ संस्कार :
एक परिचयात्मक विवरण — अंकुर श्रीवास्तव, डॉ. विशाल जैन 161

26. संगीत में समय का महत्व — प्रोन्नति तिवारी, प्रो.पं. विद्याधर प्रसाद मिश्र 166

27. हवेली संगीत — डॉ. हर्षित वैयर 172

28. संगीत संचार में सम्प्रेषण माध्यम — हेमलता कुमारी 176

29. विद्यालयीन शिक्षण में संगीत का अन्य विषयों के
साथ अंतः संबंध : एक विश्लेषण — सोनम कुमारी 179

30. रवींद्र संगीत पर शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत का प्रभाव — सुंगधा वर्मा 183

31. भारतरत्न पंडित भीमसेन जोशी :
किराना गायकी में एक नया आयाम — Naval Kumar D. Jadhao 190

32. The Role of Design and Graphics to Enhance the
Interest of Readers in the Newsp Apers (Print and Online Editions)
Sarveshwaram Krishnam and Dr. Kaushal Tripathi 197

33. Esraj: A Brief Study — Dr. Krishnendu Dutta 206

34. Music as a Focus in Primary Education
Rajashree Nath, Prof. Sangeeta, Pandit Shivani Chaurasia 216

35. Musical Tradition of Bishnupur Gharana:
A study with reference to the contribution of 'Pandit Jadu Bhatta'
Bhattacharya Arpita, Pandit Sangeeta 222

36. The Tribal Music and Music Education Partha Sil, Dr. Santosh Kumar 230

37. Dhruva – Gana Kathika Kushari 237

38. Semiotics and Advertisement: Analysis of 'Mon Guerlain:
Eau De Parfum Intense' Dr Vivek 241

हिमाचल के किन्नौर के विभिन्न पर्वों में गाए जाने वाले लोकगीत : एक विवेचन

डॉ. सरिता नेगी

सार

'किन्नौर' हिमाचल प्रदेश में स्थित एक जनजातीय प्रदेश है। किन्नौर जिले की अपनी अलग पहचान है यह क्षेत्र देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, साधु-संतों की तपोभूमि रही है। किन्नौर को विभिन्न नामों कन्नौर, कुनावर तथा कनौरिङ् से सम्बोधित किया गया है। स्थानीय बोली में इसे 'कनौरिङ् कहते हैं क्योंकि यह शब्द स्थान विशेष तथा निवासियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु आधुनिक समय में इस जिले के लिए प्रयुक्त नाम 'किन्नौर' है। यहाँ के निवासियों को 'कनौरे' या 'किनौरे' कहते हैं। स्थानीय बोली में इसे 'कन्नौरिङ्' तथा हिन्दी में 'किन्नौर' है। किन्नौरी सभ्यता हिमालय की प्राचीन सभ्यता है। यद्यपि किन्नौर क्षेत्र में मनाए जाने वाले त्यौहार संपूर्ण भारत में मनाए जाने वाले पर्वों से सर्वथा भिन्न है। यहाँ के प्रमुख त्यौहार उख्याङ्, बीश, साज़ो लौसर सुसकार, दीवाल, शुभरात, शौक्फ़, चैत्रोल आदि है। अन्य क्षेत्रों में मनाए जाने वाले त्यौहार दीवाली, होली, शिवरात्रि आदि है। यही त्यौहार किन्नौर में भी मनाए जाते हैं। परंतु मनाने का ढंग अलग है। इसके अतिरिक्त बधाई उत्सव में देवता का आगमन घर में होता है।

***मुख्य शब्द** : किन्नौर, पर्व लोकगीत, उख्याँङ्, बीश, फागुन*

परिचय–किन्नौर हिमाचल प्रदेश में स्थित एक जनजातीय प्रदेश है। किन्नौर जिले की अपनी अलग पहचान है। यह क्षेत्र देवी-देवताओं, ऋषि मुनियों की तपोभूमि रही है। आधुनिक समय में इस क्षेत्र में मंदिर बौद्ध मठ पाए जाने का संकेत मिलते हैं। यहाँ प्राचीन काल से हिन्दु धर्म तथा बौद्ध धर्म की परम्पराओं का प्रचलन रहा है। भौगोलिक दृष्टि से यहाँ के लोगों रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा, धर्म, लोकसंगीत, लोकनृत्य इत्यादि सभी विशेषताओं को धारण किए हुए संपूर्ण क्षेत्र अपना अलग विशेष स्थान रखता है।

किन्नौर को विभिन्न नामों से संबोधित किया गया है। महापंडित राहुल सांकृत्यान के मतानुसार यह 'किन्नर देश' है उनके अनुसार 'किन्नर' के लिए 'किम पुरुष' शब्द भी संस्कृत में प्रयुक्त होता है। लेह में किन्नरों को 'माऊन' कहा जाता है। 'माऊन' अथवा 'मोन' बुशहर के नामों में से एक है। किन्नौर के दूसरे नाम 'कनौर', 'कुनावर', 'कूनावुर' तथा 'कनौरिङ्' भी है। प्रायः सभी अंग्रेज यात्रियों ने इस क्षेत्र को 'कुनावुर' के नाम से पुकारा है। स्थानीय बोली में इस 'कनौरिङ्' कहते हैं। क्योंकि यह शब्द स्थान विशेष तथा निवासियों को लिए

प्रयुक्त किया जाता है। अरस्तु कहते हैं कि जैसे भी हो आधुनिक 'कनौर' शब्द 'किन्नर' का अपभ्रंश है और किसी समय किमपुरुष प्रायः सारे हिमालय का नाम रहा होगा। यद्यपि आज वह संकुचित होकर बुशहर रियासत की एक तहसिल 'चिने' तथा कुछ नीचेउससे लगे हुए 20, 25 गांवों के लिए व्यव्हृत होता है। फ्रेज़र के अनुसार 'कुनावर' बुशहर का वह भाग है जो समस्त उत्तर पूर्वी और पूर्वी भागों में फैला है। और बर्फ पहाड़ों के पीछे और मध्य में स्थित है।

भारतीय शास्त्रों में देवयोनियों के अंतर्गत विद्याधर, अप्सरा, यक्ष राक्षस, गंधर्व, पिशाच, गुहयक, सिद्ध और भूत आदि योनियों के साथ किन्नर जन भी सम्मिलित

विद्याधरोप्सरो यदा-रक्षो-गंधर्व किन्नराः।
पिशाचो गुहयकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनमः।।

किन्नर और किमपुरुष वास्तव में एक ही माने जाते हैं क्योंकि किन्नर के लिए किम पुरुष शब्द भी संस्कृत में प्रयुक्त होता है। किन्नर और किमपुरुष शब्द में किम 'नर' तथा 'किमपुरुष दो शब्दों का स्पष्ट योग है। इसमें 'नर' और पुरुष दोनों शब्द 'मनुष्य' अर्थ के बोधक होने से परस्पर पर्यायवाची है

सिद्ध गंधर्व जुष्टानि किन्नरा भिरतानि चः
क्रीडा विहार रम्याणि देवादिनामितस्तातः।।

'मार्कण्डेय पुराण' के अनुसार हिमालय कासुरम्य आंचल किन्नरों की विहार स्थली रही है और वहां सिद्ध गंधर्व और किन्नर विहार कर रहे हें तथा इस पर्वत पर जगह-जगह देवताओं के लिए अत्यंत रमणीक स्थान बने हैं।

महापंडित राहुल सांकृत्यान सन् 1926 की अपनी पहली हिमाचल यात्रा में किन्नौर के शुन्नजोत से सुन्नम गांव की ओर जा रहे थे तो वहाँ किन्नर महिलाओं के मधुर गीत स्वरों ने उन्हें विमोहित किया। इन महिलाओं के असाधारण मधुर कंठ से निकले संगीत को सुनकर उन्हें संस्कृत साहिय में की गई किन्नर कंठियों की प्रशंसा सही लगी उनको विश्वास हो गया कि किन्नौर वस्तुतः किन्नर देश है।

किन्नौर के भिन्न-भिन्न नाम 'कनाऊर' शब्द से ही विकसित हुए हैं। 'कनाऊर' के ऊ का अन्तः स्थीकरण से 'व' होने 'कनावर' रूप बना। कनावर के 'क' वर्ण में 'अ' स्वर के स्थान पर कहीं-कहीं व वर्ण के 'अ' स्वर के स्थान पर भी 'उ' होने से कुनावर 'कूनावर' तथा कुनावुर आदि शब्द रूपों का प्रयोग प्रचलित हुआ है। परंतु आधुनिक समय में इस जिले के लिए प्रयुक्त नाम 'किन्नौर' है तथा यहाँ के निवासियों 'कनौरे' या 'किनौरे' कहते हैं तथा स्थानीय बोली में इसे 'कनौरिङ्' कहते हैं।

'किनौरी सभ्यता हिमाचल की प्राचीन सभ्यता है। किन्नौर हिमाचल प्रदेश में स्थित एक जनजातीय प्रदेश है। यद्यपि किन्नौर क्षेत्र में मनाए जाने वाले त्यौहार पूरे भारत में मनाए जाने वाले पर्वो से सर्वथा भिन्न है। यदि ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के मध्य कहीं से लोकवाद्य यंत्रों की ध्वनि सुनाई दे तो निस्संदेह वह संगीत त्यौहार अथवा उत्सव का होगा। किन्नौर के कुछ प्रमुख त्यौहारों के गीत इस प्रकार हैं।

उख्याङ गीथङ् (फूलों का त्यौहार)

शुनो लीयो राज़ो चारस राई दयारो ओमची।
ठ शुन्याज्ञोश हो नीङ् ता मा थासीच।
ऊ पाइतैंसु हो होली राङे मुसुबैन्डी
खोगे थाक्पा दुई कोद बङ्
फलु, दुरो योटङ् पौनुदुरो।
रीङ्-रीङ् बीमा होली शोने नालङ्ो।

ऊ मा ताड़्या आन्ज पालेसु मोमा।
ताङ् ली ताङ्ज्ञोक ली गुई राङ्ो कोमो या ली ताङ् ली ताङ् ज्ञोक
तौते ली काईं होली गुई सागङ्ो ऊ।
या ली तोते ली काईं
गुद पाटयाचे होली डालङ् औशाङ्सी या ली गुद पाटयाचे
बाङ् पाटयाचे होली डालङ् ओशाङ्सी याली बाङ् पाटयाचे।
चुनाङ् मुंडयाल होली थुदल्यो मोल्यासु चुनाङ् मुंडयाल।
ज़ोल्ग़ी मुंडयाल हो परका शांकरासु याली ज़ोल्ग़ी मुंडयाल
शुम बाल्या जोड़्ोर होली परका शांकरससु
डाङा बाल्याजोड़्ोर होली ईश्वर नारायणु
यालीतिश बाल्या जोड़्ोरथुदल्यो मोलासु
गुई बाल्या जोड़्ोर कैलाश पर्वतु।
जुगले उख्याङ्हो लीरूपी टैरासु
जुगले उख्याङ्।
योटुक्पा उख्याङ्
होली हो होले निज़ा बादुरे
नार-नार ली निश दयार।
काशो उख्याङ् ली हो होले ब्यूग
बादूरेजुगले इन्द्रौमाङ्
काशौ उख्याङ् ली हो बङ्गी पाबङ्ो
बङ्गी शाकङ्ो।
बङ्गी पाबङ् होली होले लौस्कार
चु ली मुंडयाल बङ्गी पाबङ्।
शोमेनु उख्याङ् होले कात्याङ्
मौक्शीरङ्याली शोमेनु उख्याङ्
शोप्च़े पाबो ली हो होले राच़कानङु
मुंडयाल शोप्च़े पाबो।
राच़कानङु मुंडयाल होली शाङ्च़े ब्रासु पोले

भावार्थ

उख्याङ् यानि फूलो का त्यौहारलगभग संपूर्ण किन्नौर में अति लोकप्रिय है। गीत के बोल हामस्काद यानि मूल किन्नौरी में है यह त्यौहार सितम्बर महीने में अलग-अलग तिथि में मनाया जाता है। त्यौहार से एक दिन पहले गांव से दूर ऊंचाई पर स्थित पाबङ् पहाड़ से फूल लाने की ज़िम्मेदारी गांव के कुछ युवकों को दी जाती है वे फूल बांधने की डोरी एवं खाद्य सामग्री लेकर ऊंचे पहाड़ पर भाँति-भाँति के फूल चुनकर लाते हैं तथा उनका सुंदर गुलदस्ता बनाकर अपने-अपने ग्राम्य देवी-देवताओं को अर्पित करते हैं। गांव के युवक-युवतियों द्वारा गायन एवं नृत्य किया जाता है।

सुसकार गीथङ् (फागुन गीत)

माफङ्च़ो दैन शोङ् शुयो चीमैच़ो।
शुयो चीमैच़ो सुशोलो बरशो छ़ात-छ़ात की हाचो।
लायङ् उ दैस हो डाङ् खारू ऊ दैस लाङ्घु उ दैस।
शुयो चीमैचो हो, दो शोङ्-शोङ् बन्ना
डुबलिङ् डाबलिङ्।
शौङ् शौङ् बन्ना पुए मैदानो।
पुए रीना सारो च़ौनका मौलिङ् दुलो।
शौङ्-शौङ् बन्ना लीयो लागङ्ो।
रौनङ् बौनङ् लोदो ज्ञालबो बुग्जाले।
दङ् शौङ् शौङ् बन्ना जाङ्ेना हिना।
शौङ्-शौङ् बन्ना रारङ्ना हिना।
रारङ् ना हिना बियूरी मैथारो।
शौङ्-शौङ् बन्ना पाङ्े ना ब्राओमो
पाङ्े ब्रानो ओमो चाटङ् बाले शालङ् वाङ्ा छ़ारयो
पाङ्े ज़ौ कोमो गाशङ् दु ज़ाओ मोठेस ख शेदो।
शौङ्-शौङ् बन्ना ग्रोसो थानङ्ो बोरीए
माइए पीतङ् मातोङ्ीआ।

बोरीए माइए गुदीस मा तोङ्मा बाङ्गीसी ता तोङ्गी।
ग्रोसो थानङ्गो ब्रोकासुरा।

भावार्थ

यह एक प्राचीन फागुन गीत है जो कि हामस्काद (मूल किन्नौरी) में है। इस गीत को स्थानीय भाषा में 'फागुल' या 'सुसकार' कहते हैं। यह गीत सावणियाँ (पर्वतीय देवियों) से सम्बन्धित हैं। इस उत्सव के दौरान पर्वतीय देवियाँ सम्पूर्ण किन्नौर का भ्रमण करती हैं तथा जनसामान्य द्वारा घर की छतों पर भोग के रूप में खाद्य सामग्री रखी जाती है। यह सावणियाँ विभिन्न पक्षियों का रूप धारण कर इस भोग को ग्रहण करती हैं।

दीवाल गीथङ् (दीवाली गीत)

कीशो दीवाले हामचा ली बशीद कीशो दीवाले।
दोक्चाली बशीद शोङल्यो नीरबोनिङ्च कीशो दीवाले।
नीरबोन्याङ् ज़ोल्यो काले बाज़ो।
नीरबोन्याङ् ज़ोल्यो।
रीङ् रीङ् बन्ना ईशुर नारायण बीज्ञीश रीङ् बन्ना।
दीवाल रङ् ऐके खोनाचो पन्नम
दीवाल रङ् ऐके।
कीशो दीवाले तोरो नीमा ता पोचिस मार
ज़ाओ कीशो दीवाले।
पोचिस मार जाओ शाङ्ची चुरपुरी,
शिङ्का टैकटैकी, मारका ज़ौबज़ौबी
थीज्ञो शुदुङ् तुङ्गो ज़ैङ्गैत ज़ाङ्ला बीज्ञो
थीज्ञो शुदुङ्।
तोरो नीमा ता काशो दीवाले पनाथो तोरो नीमा।

भावार्थ

दीपावली यानि कि किन्नौरी में दीवाल नाम से प्रसिद्ध है। गीत के बोल हामस्काद मूल किन्नौरी में है। यह त्यौहार दिसम्बर माह में मनाया जाता है। दीवाल त्यौहार की उत्पत्ति नीरमंड जो कि रामपुर तहसिल का एक क्षेत्र है से माना जाता है यह त्यौहार लगभग तीन-दिन तक मनाया जाता है। जिसमें ग्राम्य देवी-देवता की पूजा अर्चना की जाती है तथा पूजा के लिए प्रयोग होने वाले खाद्य पदार्थों में विशेष तौर पर सूखे फल होते हैं।

बीश गीथङ् (बैसाखी गीत)

कोनिको मूछो गूंगाती ले कोनिको मूछो गूंगाती।
च़ापती बानो गूंगाती ले च़ापती बानो गूंगाती।
माची-माची च़े फौमाच़े ले
थार बतो था ब्याङ् रीं।
कोमो ली कोमो फोमाच़े ले बैरङ् ली
बैरङ् फोमाच़े।
नापनो नाले बीशूरी दू ले बीशूरी
नीमा ठ लानतोंई।
बीशूरी नीमा सासाई कांई ले, बीशूरी
नीमा सासाई कांई।
बीशुरी शा ता शु चुमचुम ले,
बीशुरी शा ता शु चुमचुम।
नापनो नाले राजाले दुले नापनो
नाले राजाले दु।
राजाले नीमा गोनगोनी कांई ले
राजाले नीमा गोनगोनी कांई।
गोन गोनी कर-कर ठ लानते ले गोन
गोनी कर-कर ठ लानते।
गोन गोनी कर-कर कौंडु तागमु।
गोन-गोनी कर-कर कौंडु तागमु।
कौंडु ताग-ताग ठ लानतोंई ले कौंडु
तागताग ठ लानतोंई।
कौंडु ताग ताग पोले शैंईं ले कौंडु
ताग ताग पोलशैंईं।

भावार्थ

बीश (बैशाखी) त्यौहार अप्रैल महीने में मनाया जाता है। यह गीत पूर्बनी (गांव का नाम) बीश से सम्बन्धित है। इस गीत में बताया गया है कि गांव की दो युवतियाँ बकरी के बच्चे का वेश धारण करती हैं तथा उनके पीछे दो युवक शेर का रूप धारण कर उनका शिकार करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस गीत की रचना मनो-विनोद के लिए की गई है।

शुभरात गीथङ् (शिवरात्रि गीत)

बिशमोन पोरो माटी नाईं ठाटी गोसैंया
पूर्वा बिले का आओशा बागुरो हाशा।
बागुरे हाशे सोरो चुकौंदी लाई, सोरे
चुकीयो शेपो उपज़ो।
शेपो फुटीयो पिण्ड उपज़ो।
पिंड फुटीयो माज़ोरमो महादेव।
बिशमोन पोरो आपु महादेव।
ज़ाखानी शिरका सूर्य चन्द्वीरा।
शिरेका माज़ोरमो विष्णु।
ज़ाखनी शिरेका ब्रह्म, भाउई शिरेका विष्णु।
त्रोण मूर्ति गुनामुनी कीमो।
बीशोमोन पोरो माटी नाईं ठाटी गो सैंया।
आंदे लागो शक्लो माटी सोई माटी बोसोंदी नाईं।
आंदे लागो बोलो रातो माटी सोई माटी बोसोंदी नाई।
आंदे लागो बोलो काले माटी सोई माटी बोसोदें लागो।
पोए रे ठासो सात पोइएताल पाङ् शिरे ठासो।
सात पाइए ताल सोरगङ्, चांदे लागो, सुनो रूपैरो मानुष, चीज़ांदो लागो सुनांदो नाई।
चानदै लागो तांबो पीतलो मानुष।
सोई मानुष ले दास ठीका पोप।
च़ानंदे लागो छारू कतारूओ सोई मानुष।
मानुष लो दा ठीमा दोषेसोई मानुष सुनांदे लागो।
गाली देनो तु मोरो झोंपरी शोबोरी कपार मुट्ठी बोंदी जो कापटीक आग।
पहले शुभरात्रि कोसे घौर दैनु
पहले शुभरात्रि राज़ा घौर दैनु
राज़ो छ़ोटु पुज़ो भी न जानो।
पहले शुभरात्रि वज़ीर घोर दैनु
वज़ीरो छ़ोटु पुज़ो भी न जानो।

भावार्थ

यह गीत डोमङ्स्काद यानि (निम्न जाति की बोली) में है। यह त्यौहार किन्नौर में केवल बढ़ई जाति द्वारा मनाया जाता है तथा उच्च जाति के लोगों को केवल अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जाता है। इस त्यौहार को ये बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। इस गीत में शिवजी के उत्पत्ति के समय के विषय में बताया गया है। उस समय धरती पर कुछ नहीं था पूर्व की ओर से एक हवा का झोंका आया तथा यहाँ की मान्यता है कि जिसे ध्रती हिलने लगी जिससे शिवजी के पिण्ड की उत्पत्ति हुई तथा ऐसा भी माना गया है कि सूर्य, चन्द्व, तारे, विष्णु भी इनके बाद ही उत्पन्न हुए हैं। इस त्यौहार को मनाने का ढंग न तो राजा को, न हि राजा के वजीर को और न हि उच्च जाति के लोगों को पता था। केवल इस जाति के लोग ही जानते थे इसे मनाने का ढंग इसी कारण यह केवल इन्हीं के द्वारा आज तक मनाया जाता है।

उख्याँङ्-गीत (ऊपरी किन्नौर में मनाया जाने वाला फूलों का त्यौहार)

जोनबा छानशूम की 'याली।
फु हामीरी खाङ् ज़ीक छाकवा मी।
दो मीरू युमछ़ो खीला मी।
युमछ़ो ताङ्दु माजीघ् दीया मी।
डुबदुत ताङ्दु रोलखा पीवा मी।

रोलखा ताङ्दु लोदाप ज्ञावा मी।
लोदाप ताङ्दु डालवु मीन दा मी।
सोरखा ताङ्दु सोरखा ज्ञाक़ा मी।
सोरखा ताङ्दु ज्ञाथाक़ा दीया मी।
ज्ञाथाक़ ताङ्दु उलजुक दुता मी।
उलजुक ताङ्दु ज्ञावाम क़ोवा मी।
ज्ञावाम ताङ्दु दाज़ार ज़ीरा मी।
दाज़ार ताङ्दु यालुम डाक़ा मी।
यारलुम ताङ्दु योरखा सोवा मी।

भावार्थ

यह एक प्राचीन एवं ऊपरी क्षेत्र में गाया जाने वाला गीत है जो कि 'मस्काद (ऊपरी किन्नौरी) में है। इस गीत में दर्शाया गया है कि त्यौहार वाले दिन सब गांववासी मिलकर ईश्वर का धन्यवाद करते हैं कि उन्होंने इस सुंदर सृष्टि की रचना की तथा जीवन के विभिन्न क्रियाओं को करने की क्षमता दी। इसी प्रकार ध्न्यवाद ज्ञापन करते हुए गीत का अन्त होता है।

चासङ् चौत्रोल (चैत्र माह में मनाया जाने वाला त्यौहार)

गोली गो होना ला होले हो हायाबे होना गोली गो होना।
साङ् मा साङ् हो
योदली बेसारो साङ् या मा साङ्।
साङ्सी नीतो हो ले हो आनु रितङ् सी साङ् सी नीतो।
कुप्फु ली बाशो हो ले कन्नौरे माटुरे कुप्पु बाशो।
ऊ आ मा ऊ हो ले नारकासाङ् फूला ऊ आ मा ऊ।
ऊ च़ी ली नीतो हो ले नार कासाङ्
फूला ऊ च़ी ली नीतो।
आनुरितङ्सी हो ले राजाऊ राम बागो आनुरितङ् सी।
ऊम ता ली उज्ञो ली हो
ले हाती तौ़च्या मी माई़च ऊम ता उग्यो।
थोम ताली थोज्ञोश हो ले राजाऊ छ़ोरियास ता थोज्ञोश।
लिकशिम ता लिकशिज्ञोश हो ले ज़ाखाङ्
कानारे लिकशिम ता लिकशिज्ञोश।
ऊ आ मा ऊ हो ले बुरासङ् फूला
ऊ आ मा ऊ।
ऊम ताली उज्ञो होले आनुरितङ्सी
ऊम ताली उज्ञो।
काग ले दीघैस होले हो सौनिश
बोशङ् रूङ्ज्ञो कागले दीडैस।
सोनिश बोशङ् रूङ् रूङ् ली हो ले, फोलङ्
मा लानज्ञो सोनिश बोशङ् रूङ्रूङ् ली हो ले फोलङ्।
कुप्फु बाशो ली होले हो रुदुबाटङ् सी कुप्फु बाशो।
हुचुक बाशोली हो ले हो रु बाटङ्सी हुचुक बाशो।
गोली गो होना होले हाया बेले होना गोली गो होना।
हातु ली नीज्ञो ली हो होले जु बङ्गी सोवाङ् हातु नीज्ञो।
हातुईं मानी हो ले जु याकेस नारेणु हातुई मानी।

भावार्थ

किन्नौर के नए सम्वत के प्रारम्भ के उपलक्ष में मनाए जाने वाले तिवारङ्(त्यौहार) को चैत्रोल या चैत्रोली इसलिए भी कहते हैं क्योंकि यह त्यौहार चैत्र मास में आता है। किन्नौर के सभी क्षेत्रों में यह त्यौहार नहीं मनाया जाता। व्यापक रूप में तो यह त्यौहार बास्पा उपत्यका में स्थित चासङ् (चासू) गांव में ही मनाया जाता है। इस त्यौहार को चासङ् चैत्रोल के नाम से भी जाना जाता है। यह त्यौहार चार दिन तक मनाया

जाता है। इस त्यौहार के चारों दिवस इन विषयों में सम्पन्न किए जाने वाले पूजा आदि विशेष कार्यक्रमों के आधर पर अलग-अलग आज भी जाने जाते हैं। उदाहरण के तौर पर इसका प्रथम दिवस कोइलाल पजाम 'कैलाश की पूजा' के नाम से दूसरा दिवस 'हाण्डू -फ़ुसमु' यानि हाण्डी फोडने के नाम से तीसरा दिवस मिस्थो (शकुन दर्शन) या 'चौत्रोल' चौथा दिवस 'आएटड्' यानि हल चलाने के नाम से जाना जाता है। गांव की स्त्रियां ग्राम्य देवता के निकट फूल माला युक्त किल्टे (टोकरी) को प्रस्तुत कर अत्यन्त ही श्रद्धा भाव से उनके द्वारा गूंथकर लाई गई माला को स्वीकार करने के लिए निवेदन करती हैं। जैसे ही ग्राम्य देवता 'नारेणस' उनकी फूलमाला स्वीकार कर लेने का संकेत देते हैं वैसे ही माला पहना देती हैं तथा उख्यांड् यानि फुलैच गीत से इस त्यौहार को सम्पन्न किया जाता है। इसी के साथ नव सम्वत् के शुभारम्भ के उपलक्ष में मनाया जाने वाला यह चैत्रोल अपने पीछे छोड़ जाता है ढेर सारी मधुर स्मृतियां अगले वर्ष आने वाले चैत्रोल के लिए।

शौक्व़ गीत

शाला कुचाड़्ो बीज़्ो, शाला कुचाड़्ो।
मेरी आइमो न देखो। तेरी आइमो न
देखो, पाछै ढोलिया न देखो।
तोले पूछ ढोलिया, मेरी आइमो न देखो
ढोलिया बोला पीछे नागरच्ची ले पूछ।
पीछे बुकरिया बोला, तेरो आइमो न देखो।
शाला कुचाड़्ो बोल्यो, तेरी आइमो न देखो।
पाछै बुकरी लै पुछ, डाकरी लै पुछ़।
मेरी आइमो ना देखो, पाछे ब्रह्म लै पुछ़।
आमे आए, शादुए आए।
कीली बेरूआ, देऊ भण्डार।
हाण्डे-हाण्डे रोडे पो दुखो। सीता, लांगुरा,
वीरा। कीली बेरूओ, देऊ भंडार।
हुचुक नीमा थ लानते, हुचुक नीमा
सासाई कांई। लामठु पनरांई ज़ैमकाने,
ली हुचुक शा ता शु चुम चुम।
ली नापानो नाले याम छाड़्ा दु।
यामा छाड़्ा नीमा ठ लानते।
याम छाड़्ा नीमा छ़ाम ली लानते।
ली कासु राजेसु ऊम लो च़ाला।
ले बाडो टाटो मांगा छोटे टाटे बाहरी
दै। हाम तीच़ो बीज़्ोश ब्रह्म विष्णु।
इ मथुरो कोमो आई मथुरो चुमचुम।
दो डेन-डेन बन्ना ठांडयो सौरानड़्।
हामता तोकेंई, दारयो माटिड़् दैन।
दारयो माटिड़् दैन खोलिटु कोमो।
खोलीटो कोमो ब्रह्म विष्णु च़बारड़् कुटोन शेरईं।
दोनीए पेरे आफ़ुरई बाश्टु गीशां। यारूआ
चामंड़् खाड़ुच्या आड़्
गुद चुम चुम काज़्ो टीकरी बानिए।
ले धुरी के ठुरकु भंडारी बोइले वीरे ब्रह्म विष्णु।

भावार्थ

शौक्व़ त्यौहार तीन वर्षों के अंतराल के बाद चीनी (कल्पा) गांव में मार्गशीर्ष मास में मनाया जाता है। अतः यहाँ वही गीत प्रस्तुत किया गया है जिसे इस त्यौहार में गाए जाने वाले अलग-अलग खण्डों में गाया जाता है गीत के पहले खण्ड में देवता (कल्पा गांव के) 'शालाकुचाड़्' नामक स्थान पर राक्षस की खोज में निकलते हैं। अंत में उनके द्वारा ही राक्षस का संहार होता है। दूसरे खण्ड में देवता के कारीगर या देवता के कार्य करने वाले मुख्य लोगों की थकावट को जलपान द्वारा दूर किया जाता है। तीसरे खण्ड में ब्रह्म-विष्णु की उत्पत्ति सम्बन्धी गीत गाया जाता है। चौथे तथा अंतिम खण्ड में कहा गया है कि किस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु

विराजमान हैं मंदिर के चबूतरे पर तथा उनके चारों ओर नृत्य होता है। इस तरह त्यौहार का अन्त होता है तथा यह त्यौहार निम्न जाति वर्ग के लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्षः इस प्रकार हम देखते हैं कि किन्नौर एक ऐसा क्षेत्र है जो सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रसिद्ध है। यहां अन्य पहाड़ी क्षेत्रों की तरह विभिन्न अवसरों एवं पर्वों पर गीत गाए जाते हैं।

संदर्भ सूची

1. Cunnighm J.D. (1844) Noteson Moorcrafts travel in Ladakh and on General Account of Koonawar Asiatic Society of Bengal, Vol. XIII Pg. No. 230
2. शर्मा बंशीराम (1976), किन्नर लोकसाहित्य ललित प्रकाशन, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश, 1976, पृ॰ 3
3. Fraser Ballic James (1820), Journal of a Tour through part of the Snowy Range of the Himalayan Mountains, pg. 263
4. Captain A. Gerard (1841), Account of Koonawar, Gidwani Indus Publishing Company, New Delhi, pg. No. 1.
5. सांकृत्यानन राहुल (2006), किताब महल इलाहाबाद, पृ॰ 291
6. ठाकुर विद्याचंद (1995) 'किन्नर से बना किन्नौर' लेख सोमसी पत्रिका हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, पृ॰ 7, 8
7. नेगी, डॉ. सरिता (2020), किन्नौर की विभिन्न लोकभाषाओं में गाए जाने वाले लोकगीतों का सांगीतिक विवेचन, नैतिक प्रकाशन, गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश, पृ.स. 78-88

रामपुर रियासत और सदारंग परम्परा : एक अध्ययन

रवि पाल

सार-संक्षेप

भारतीय शास्त्रीय संगीत में ''परम्परा'' शब्द एक विशेष सम्मान व आदर के साथ प्रयोग किया जाता है। जिसकी जगह घराना शब्द का भी प्रयोग होता है लेकिन परम्परा कहने से उसका दायरा जरा बढ़ जाता है। वह एक घर या किसी एक वंश तक सीमित नहीं रहता है। भारतीय संगीत में इसी कड़ी में रामपुर परम्परा या रामपुर घराना इत्यादि सुनने को बहुतायत मिल ही जाता है जिसमें कुछ तो कलाकार अपने को रामपुर सहसवान घराने से संबंधित बताते हैं तो कुछ अपने को कहते हैं कि हम रामपुर की सदारंग परम्परा से संबंधित हैं। वास्तव में इन सबका अर्थ एक ही है या कुछ भिन्नताएँ हैं यह समझना अति आवश्यक है। अपने इस शोध पत्र में मैंने इन सब तथ्यों को बताने या स्पष्ट करने का प्रयास किया है। चूंकि संगीत और परम्परा दोनों का रिश्ता बहुत गहरा है अतः यह कहूँ कि बिना परम्परा के संगीत सीखना या करना तर्कपूर्ण नहीं है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि संगीत की शुरूआत ही गुरु-शिष्य परम्परा की नींव से मानी गई है। यह भी सत्य है कि रामपुर का संबंध संगीत से हमेशा से रहा है। इस शोध पत्र की प्राकल्पना में रामपुर रियासत व संगीत परम्परा तथा सदारंग परम्परा से संबंध इत्यादि विषयों को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा। प्रस्तुत शोध पत्र को लिखने के लिए मूलरूप से माध्यमिक स्रोतों को ही लेखन का माध्यम बताया गया है।

***मुख्य शब्द** : रामपुर रियासत, सदारंग-परम्परा, संगीत, रामपुर दरबार, घराना।*

रामपुर रियासत : रामपुर उत्त रप्रदेश की प्रसिद्ध मुस्लिम रियासत अठारवीं सदी के प्रारम्भ से ही विभिन्न विधाओं और कलाओं का केन्द्र थी। यहाँ के नवाबों को संगीत कला से बहुत प्यार था अतः उनके द्वारा इस कला का अद्वितीय विकास हुआ। बहादुरशाह प्रथम के राज्यकाल (1707-1712 ई.) में काबुल की पहाड़ियों में स्थित 'रोह' नामक स्थान से दाऊद खाँ नामक पठान भारत आया। दाऊद खाँ बहुत बलवान, साहसी और युद्ध-प्रेमी व्यक्ति था इसने शीघ्र ही अपनी सेना बना ली और उत्तर प्रदेश के कुछ इलाकों पर कब्जा कर लिया, जिसमें जिला बरेली, तहसली बहेड़ी परगना काबर के बकौली नामक गाँव था जो विशेषतया जाटों का था।[1] इस गाँव में दाऊद खाँ को एक सुदर स्वस्थ बालक मिला गया जिसे बाद में दाऊद खाँ ने गोद ले लिया। इसका नाम अली मुहम्मद रखा गया और ये ही भविष्य में रामपुर के नवाब बने। दाऊद खाँ के समकालीन दिल्ली दरबार के सम्राट बहादुरशाह जफर थे जिनकी सभा में सदारंग जैसे महान संगीतज्ञ इत्यादि थे। तात्पर्य यह है कि रामपुर राजवंश की स्थापना और

संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, मोबाइल न. 9717380957, ई-मेल :- rvpal175@gmail.com, पताः- साईं परिवार, मकान न. 70, ब्लॉक बी, गली न. 7, डी. सी.एम. कॉलोनी, नत्थूपुरा, बुराड़ी दिल्ली 110084

सदारंग के प्रशिक्षण का समय एक ही था। सदारंग का काल संगीत के इतिहास के लिए स्वर्ण युग है और रामपुर के गुणियों ने दिल्ली की सदारंग परम्परा का पूर्णतया अनुकरण किया है। जब मुगल साम्राज्य की अवनति के कारण दिल्ली के सब कलाकार आश्रय प्राप्त करने के लिए देश की विभिन्न रियासतों में चले गए। जहाँ नवाबों और रईसो ने इन कलाकारों को सम्मान देकर संगीत कला की सुरक्षा की।[2] इसमें रामपुर रियासत का नाम सबसे पहले आता है क्योंकि यह दिल्ली के सबसे निकटतम है। दाऊद खाँ की जब मृत्यु हुई तब उनके पोष्य पुत्र अली मुहम्मद खाँ की उम्र केवल चौदह वर्ष थी। अली मुहम्मद खाँ के संबंध मुगल दरबार के साथ काफी अनुकूल थे, इसी कारण इनको पंच हजारी मनसबदार का पद प्राप्त हुआ। यह सब मुगल साम्राज्य के महामंत्री कमरूद्दीन खाँ के प्रयत्नों से ही हुआ। किन्तु थोड़े दिनों पश्चात् कुछ लोगों की दुष्टता के परिणामस्वरूप अली मुहम्मद खाँ की सम्राट से अनबन हो गई। फलतः मुहम्मदशाह ने स्वयं अली मुहम्मद खाँ पर चढ़ाई कर दी और अली मुहम्मद खाँ को आंवला जिला बरेली के वनगढ़ नामक दुर्ग में आश्रय लेना पड़ा। लेकिन कुछ समय पश्चात् महामंत्री कमरूद्दीन खाँ ने पुनः दोनों में संधि करवा दी और मुहम्मद अली खाँ, मुहम्मदशाह के साथ दिल्ली आ गए जहाँ पर उनको मुगल दरबार में सदारंग जैसे ध्रुवपदकार और वीणा वादक, रसूल खाँ जैसे कव्वाल भवानीदीन जैसे ढोलकिए, नूरबाई, पन्नाबाई, कमलाबाई, रहमानबाई जैसी गायिकाएं और कलाकारों को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय के मूर्धन्य सूफी ख्वाजा मीर 'दर्द' भी वहाँ थे। रामपुर राजवंश के पूर्ण पुरूष अली मुहम्मद खाँ का इस स्थिति से प्रभावित होना स्वाभाविक था। अतः रामपुर के नवाबों में साहित्य और संगीत के प्रति रूचि जागृत करने का काम दिल्ली दरबार के सम्पर्क ने किया।[3] मुहम्मदशाह के आदेशानुसार नवाब अली मुहम्मद खाँ को सरहिंद की और जाना पड़ा तब वे अपने दो पुत्रों मुहम्मद अब्दुल्लाह खाँ और मुहम्मद फैजुल्लाह खाँ को अपने साथ ले गए और तीसरे पुत्र सादुल्ला खाँ आंवले की देख-रेख कर रहा था। अली मुहम्मद खाँ ने इस प्रयास में विजय प्राप्त की और 1750 में सम्राट अहमदशाह के राज्यकाल (1748-1754 ई.) में इनकी मृत्यु हो गई।

नवाब मुहम्मद सादुल्ला खाँ - ये कुछ समय मुरादाबाद में रहे, कुछ समय के बाद आंवले से तीन कोस दूर पूर्व की ओर वरल नदी के किनारे एक प्रासाद बनवा कर रहने लगे। इनके आश्रय में फिरोज खाँ 'अदारंग' मेहन्दी सेन और करीम सेन जैसे कलाकार थे जो स्थायी रूप से रहने लगे।4 इस प्रकार रामपुर राजवंश की दूसरी पीढ़ी ने सेनिए गुणियों को स्थायी आश्रय दिया। नवाब सादुल्ला खाँ की मृत्यु 1761 ई. में हुई, इस समय दिल्ली में सम्राट शाह आलम का शासन था।

सदारंग : भारतीय संगीत में सदारंग का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और व एक आचार्य की तरह प्रतिष्ठित है। इनका नाम नेमत खाँ था। इनके पिता का नाम परमोल खाँ और छोटे भाई का नाम खुसरो खाँ थ। नेमत खाँ का जन्म औरंगजेब के शासनकाल में हुआ था। सदारंग ने अनके विद्वानों से संगीत शिक्षा ग्रहण की। इन्होंने बहादुर शाह जफर और मुहम्मद शाह रंगीले का शासन काल भी देखा। लगभग इसी समय ध्रुपद का स्थान ख्याल ने ले लिया, जिसका मुख्य श्रेय सदारंग को जाता है। जब ध्रुपद का स्थान ख्याल ने ले लिया तो सदारंग

ने इस शैली को सुर, भाषा व लय से सजाने संवारने का तरीका सोचा और उन्होंने ख्याल गायकी को लोकप्रिय बना दिया। इनका कई विधाओं और अनेक भाषाओं पर अधिकार था, अतः उनकी रचनाएं, कविता व भाषा की .ष्टि से बड़ी प्रभावशाली होती थी। सदारंग सूफी संतों के भी भक्त थे। वे उनकी समाधियों पर भी जाते थे। इस प्रकार सूफी संतों की समाधियों पर प्रतिवर्ष 'उर्स' होते रहे हैं जहाँ संगीत के कलाकार एकत्रित होते हैं। सदारंग युग का समाज रसिक था जो कवित्तों को समझते थे अतः ख्याल और कव्वाली सुनना पसंद करते थे। सदारंग की कृतियाँ साहित्यिक होती थी जिसमें रस, भाव, नायक-नायिका भेद का दिग्दर्शन होता है। ख्याल अनेक गुणों के कारण लोकप्रिय हो गया। इस समय कव्वाल बच्चों के ख्यालों में ताने ऐसी शोभित होती थी जैसे मोतियों की माला और मधुर कण्ठ गायकों की ताने आतिशबाजी की तरह प्रतीत होती थीं। सदारंग के प्रमुख शिष्यों में फिरोज खाँ 'अदारंग' आदि है जो इनके शिष्य होने के साथ ही साथ दामाद भी थे।[5] सदारंग की शिष्याओं में पन्नाबाई, कमलाबाई इत्यादि का नाम प्रसिद्ध है जो मुहम्मद शाह के नाम से बनाए हुए सदारंग के ख्याल बहुत सुन्दर रूप से गाती थी। सदारंग स्वयं एक बहुत उदार हृदय व्यक्ति थे। वे एक श्रेष्ठ गायक और बीनकार भी थे। सदारंग परम्परा का गायन और वादन आज भी जीवित है। मुहम्मद शाह रंगीले का विशेष प्रेम उन्हें प्राप्त था। शाह के शासन-काल के अन्तिम चरण में सदारंग की मृत्यु हुई। आज उनकी मृत्यु को तीन सौ साल लगभग होने को है, लेकिन सदारंग की बन्दिशें आज भी उतनी ही लोकप्रिय हैं।

मुहम्मदशाह रंगीला (1719-1748) - बहादुरशाह का पोता मुहम्मदशाह 1719 ई. में गद्दी पर बैठा। यह सम्राट कूटनीतिज्ञ नहीं था अतः इसकी मुर्खता का लाभ विरोधियों ने उठाया। मुहम्मदशाह संगीत कला का अत्यंत प्रेमी था। इसी कारण इसका नाम 'रंगीला' पड़ा। इसके समय में गायकों के दो प्रमुख वर्ग 'कलावन्त' और 'कव्वाल' थे। इसके दरबार में सदारंग, अदारंग, इच्छाबरस आदि सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे जिन्होंने ख्याल बनाए और अपने शिष्यों को सिखाए। अपनी बंदिशों में इन्होंने सम्राट का नाम मुहम्मदशाह रंगीले दिया है। ख्याल गायकी का प्रचार इसी युग में बहुत तीव्रता से हुआ। इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना 'सितार' का आविष्कार है। सदारंग के छोटे भाई खुसरो खाँ ने ही इस वाद्य का प्रारम्भ किया और प्रचार में लाया। 'टप्पा' गायन शैली का प्रारम्भ भी इसी काल में गुलामनबी द्वारा हआ था जिन्हें मियां शौरी के नाम से जाना जाता है।[6] यह पंजाब का रहने वाला था और एक अच्छा गायक व कवि भी था। अतः रंगीले का राज्यकाल शासन की दृष्टि से तो अवनति की दशा की ओर जा रहा था जबकि संगीत के क्षेत्र में संगीतज्ञों ने नए-नए मार्गों की खोज कर डाली और ऐसी गायन शैलियों का प्रचार कर दिया जिसने प्राचीन ध्रुपद-धमार गायन शैली को जनता की रूचि के बाहर कर दिया। इसी समय फारस के बादशाह नादिरशाह ने सन् 1739 में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर दी। बादशाह को जीवन के अंतिम दिनों तक युद्ध का सामना करना पड़ा।

रामपुर का सदारंग परंपरा से संबंध

सन् 1731 ई. में नादिरशाह ने संगीत रसिक सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले पर आक्रमण कर दिया जिससे उनका मन मलीन हो गया और संगीत से उसे विरक्ति हो गई। मुगल सम्राट मुहम्मदशाह

रंगीले के पश्चात् कलाकारों को राज्याश्रय प्राप्त करने के लिए दिल्ली नगरी से बाहर जाना पड़ा। दिल्ली केन्द्र की अस्थिरता के कारण सदारंग परंपरा के अधिकांश कलाकार अवध और रामपुर रियासतों में जाकर बस गए, जहाँ उन्हें आश्रय प्राप्त हुआ। मुगल दरबार के कुछ कलाकार रूहेला नवाब सादुल्लाह खाँ के आश्रय, में आ गए जिसमें फिरोज खाँ 'अदारंग' और उनके शिष्य करीमसेन और मेहंदीसेन जैसे गुणी कलाकार भी थे।[7] अवध के नवाब वाजिद अली शाह ने भी अपना सम्पूर्ण जीवन मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले की तरह 'संगीत कला' के उत्थान के लिए लगा दिया। जब अवध में राजनैतिक अशांति प्रारंभ हो गई तब वहाँ के कलाकारों को भी इधर-उधर आश्रय ढूंढना पड़ा जिसमें रामपुर दरबार ही ऐसा था जिसने सभी कलाकारों का स्वागत किया। इस प्रकार सदारंग परंपरा का समावेश रामपुर में हुआ। परंपरा शब्द के विषय में या यूँ कहो कि उसका दूसरा अर्थ 'सम्प्रदाय' है अथवा किसी भी कला का संबंध परंपरा अथवा सम्प्रदाय से बहुत गहरा होता है क्योंकि सम्प्रदाय का अर्थ है 'सम् भलीभांति', 'प्र-प्रकर्षपूर्ण और दाय-पूर्वजों की सम्पत्ति'। जो कला पूर्वजों द्वारा परिश्रम से विधिवत् शिक्षा द्वारा प्राप्त होती है उसको ही हम सम्प्रदाय अथवा परंपरा कहते हैं। आजकल संगीत के क्षेत्र में घरानों का नाम लेने का प्रचलन बहुत हो गया है। किन्तु 'घराने' का क्षेत्र सीमित हो जाता है, उसका वैयक्तिक और स्थानीय महत्व है। अतः संगीत के इतिहास में रामपुर दरबार के शासकों का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए जिन्होंने दृढ़ संकल्प होकर संगीत की अमूल्य परंपरा की रक्षा करके उसे जीवित रखा। आज उसी का परिणाम है कि देश के मूर्धन्य कलाकार जैसे स्व. अलाउद्दीन खाँ, स्व. हाफिज अली खाँ, स्व. मुश्ताक हुसैन खाँ व स्व. भातखंडे जी तथा आचार्य बृहस्पति जैसे रत्नपारखी लोगों ने रामपुर में विकसित इस परंपरा से लाभ उठाया है।

रामपुर-सहसवान घराना

रूहेलखण्ड की रियासत तथा रामपुर के नवाबों के संगीत प्रेम के परिणाम स्वरूप ही रामपुर घराने का उदय माना गया है। जिसमें सहसवान एक जगह का नाम जो रामपुर में है। बहुतायत कलाकार जिन्होंने इस घराने का नाम किया वह सहसवान जगह से संबंधित थे। जिसके कारण उनकी आने वाली पीढ़ी ने इस घराने के नाम में सहसवान को जोड़ा है। रामपुर घराना वीणा, सुरसिंगार और ध्रुपद के अनुयायी सेनिया घराने से सम्बन्धित है और रामपुर सेनिया घराने का मुख्य केन्द्र माना जाता है। रामपुर घराने के प्रवर्तक 'बहादुर हुसैन खां और अमीर खां माने जाते हैं। जो रामपुर रियासत के नवाब यूसुफ अली खां (1855-1864) के समय में थे। नवाब के दोनों पुत्र नवाब कल्बे अली खां व हैदर अली खां के समय तक भी इन गुणियों का साथ रहा। नवाब हैदर अली ने बहुत ही अनुनय-विनय करने के बाद बहादुर हुसैन खां से सुर सिंगार की शिक्षा प्राप्त की।[8] यह सब तथ्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि रामपुर के नवाबों में संगीत प्रेम व उसका आदर करना इत्यादि गुण थे जिसके कारण वहाँ कलाकारों का जमघट लगा ही रहता था। सेनिया घराने के बीनकार और ध्रुपद गायक प्यार खां जाफर खां और बासत खां के वंशज बहादुर हुसैन खां थे। बहादुर हुसैन खां मुख्यतः सुरसिंगार वादक थे परन्तु ये गायन की शिक्षा भी दिया करते थे। रामपुर घराने के दुसरे प्रमुख संगीतज्ञ ध्रुपद गायक और सुरसिंगार तथा वीणा वादक अमीर

खां जो सदारंग वंशज वीणा वादक उमराव खां के सुपुत्र और रिश्ते में बहादुर हुसैन खां के दामाद थे। अमीर खां के पुत्र वजीर खां का भी बहुत योगदान रामपुर घराने को प्रतिफल करने में रहा।[9] अमीर खां के शिष्यों में - फिदा हुसैन खां, बुनियाद हुसैन, मुहम्मद हुसैन आदि। विष्णु नारायण भातखण्डे वजीर खां के शिष्य रहे थे। बहादुर हुसैन के शिष्यों में इनायत हुसैन खां, अली हुसैन खां, गुलाम नबी खां, नवाब हैदर अली, पन्नालाल वाजपेयी, बुनियाद हुसैन खां, मजरुह खां मुहम्मद हुसैन आदि रहे। वर्तमान में रामपुर घराने के शिष्यों ओर प्रशिष्यों में भारतीय संगीत को सम्पूर्ण विश्व में उच्च स्थान प्रदान किया है। ध्रुपद, धमार, ख्याल ओर विभिन्न वाद्यों का जो संगम रामपुर घराना में है, वह अन्य किसी घराने में नहीं प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

रामपुर के नवाबों का संगीत कला में बड़ा योगदान रहा है। रामपुर ने अनेक महान कलाकारों, संगीतज्ञों, संगीत शास्त्रियों को जन्म दिया है व उनकी कला को सुरक्षित कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी निर्वाहित होने में भी योगदान किया। रामपुर में सदारंग परम्परा का हस्तक्षेप तो शुरू से ही रहा तो उस परम्परा से रामपुर से अछूता कैसे रह पाता अतः रामपुर को रामपुर की सदारंग परम्परा भी कहा जा सकता है। अब सदारंग का समय लगभग वही है जब ख्याल गायकी का प्रचलन शुरू होने लगा था। जिसके आधार पर रामपुर घराना कहना या रामपुर की सदारंग परंपरा कहना मानों एक दुसरे के पर्याय ही है। अब रामपुर घराने के प्रवर्तक रहे जाने वाले बहादुर हुसैन खां व अमीर खां के शिष्य परम्परा के अपने भी घराने बनने लगे जैसे इनायत हुसैन खां सहसवान घराना, बाबा अलाऊद्दीन खां का मैहर घराना। कहने को नाम अलग-अलग हैं लेकिन जड़ें रामपुर से ही हैं। बदायूँ के पास एक जगह है - सहसवान। जहाँ से कई गुणी कलाकार हुए जिन्होंने रामपुर का नाम किया। तो इस कारण रामपुर घराना में सहसवान जुड़ गया। अतः परिणाम स्वरूप यही निष्कर्ष निकलता है कि रामपुर घराना, रामपुर परम्परा, रामपुर की सदारंग परम्परा, रामपुर सहसवान घराना इत्यादि सभी में नाम में ही अन्तर है यदि भीतर गहराई में झांकों तो सबकी जड़ें समान हैं जो रामपुर से जुड़ी हुई हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सरयू कालेकर, ''रामपुर की सदारंग परंपरा : प्रतिनिधि आचार्य बृहस्पति'' पृष्ठ-39.
2. निर्मल पांडे, ''नगमा-ए-मौसिकी रामपुर'', पृष्ठ-44.
3. वही, पृष्ठ-43.
4. सुलोचना बृहस्पति, आचार्य बृहस्पति, ''तानसेन एवं अन्य कलाकार'', पृष्ठ-186
5. वही, पृष्ठ-139
6. गीता पेंटल, ''पंजाब की संगीत परंपरा'' पृष्ठ-72.
7. सुलोचना बृहस्पति, आचार्य बृहस्पति, ''तानसेन एवं अन्य कलाकार'', पृष्ठ-186
8. लक्ष्मी नारायण गर्ग, ''हमारे संगीत रत्न'', पृष्ठ 500
9. डॉ. सुशील कुमार चौबे, ''संगीत के घरानो की चर्चा'', पृष्ठ 54.

संगीत कला में सौन्दर्यारसानुभूति

कोमल रानी

सारांश

प्राचीन काल से ही मनुष्य ललित कलाओं के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति करता आ रहा है। सभी ललित कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। शब्दों के अभाव में भी मात्र स्वरों के विशिष्ट संयोजन से ही संगीत में सौन्दर्याभिव्यक्ति संभव है। भारतीय परंपरा में प्राचीन काल से ही संगीत का अध्यात्म से गहन संबंध रहा है। संगीत को स्वयं ईश्वर से संबंधित बताया गया है। संगीत का आधार 'नाद' है। इसे ही 'नाद ब्रह्म' कहा गया है। प्राचीन भारतीय परंपरा में संगीत का स्वरूप आध्यात्मिक होने के कारण ही इसे मोक्ष प्राप्ति का साधन माना जाता था। संगीत में आहत नाद का प्रयोग होता है। इसे ही संगीतोपयोगी नाद कहा गया है। संगीतोपयोगी नाद मात्र ध्वनि नहीं है अपितु नियमित एवं स्थिर आंदोलन संख्या वाली मधुर ध्वनि है। नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर तथा स्वर के विशिष्ट संयोजन से राग की उत्पत्ति होती है। स्वर का विशिष्ट गुण है 'रंज्जकता'। स्वर रंज्जक होने का कारण स्वतः ही आनंदमयी होते हैं। यह स्वर ही राग संगीत का स्रोत है, अतः हम देखते हैं कि संगीत कला की नींव ही सौंदर्यानुभूति तत्व पर आधारित है। स्वर, लय, ताल का विशिष्ट संयोजन ही संगीत में सौन्दर्य की उत्पत्ति का आधार है। ऋग्वेद में सौन्दर्यानुभूति को 'श्री' कहा गया है। इसके अलावा कान्त, मनोरमं, रुचिरं, ललित, दिव्य आदि शब्दों का उल्लेख भी मिलता है। अंग्रेज़ी में इसे ष्ठमंनजलष कहा गया है। ललित कलाओं में निहित सौन्दर्यानुभूति का सैद्धांतिक विश्लेषण करने हेतु ही इसे एक शास्त्र के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए सौन्दर्यानुभूति शास्त्र (मेजीमजपबे) कहा गया।

भारतीय कला सौन्दर्य परंपरा मूलतः आध्यात्मिक होने के कारण सत्यं, शिवं, सुंदरम की अवधारणा पर आधारित है जो स्वयं में कल्याणकारी तथा आनंदमयी है।

संकेत शब्द : *भारतीय, परम्परा, सौन्दर्यानुभूति, संगीत, कला, अवधारणा, रस।*

सौंदर्यानुभूति एक ईश्वरीय गुण है। भगवान श्री कृष्ण ने कहा है - विश्व के समस्त सौन्दर्य में मेरा ही तेज विद्यमान है। ललित कलाएँ मनुष्य की नैसर्गिक सौन्दर्याभिव्यक्ति का आधार है। समस्त कलाओं की अभिव्यक्ति का प्रेरणा स्रोत मनुष्य की सौन्दर्यप्रियता ही है। ललित कलाएँ मनुष्य की सौन्दर्य चेतना की प्रतीक हैं। सभी ललित कलाओं में अभिव्यक्ति के माध्यम की सूक्ष्मता के आधार पर संगीत को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। संगीत कला का सौंदर्य दिव्य है जहाँ संगीत है, वहाँ ईश्वर का वास है। भारतीय संगीत का आधार नाद है, जिसे नाद ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है यही आदिनाद 'ऊँ' पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय परम्परा में संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना जाता था।

रिसर्च स्कोलर, एम.डी.यू. यूनिवर्सिटी, रोहतक (म्यूजिक डिपार्टमैंट)

संगीत शास्त्रों में ब्रह्मा की प्राप्ति के लिये नादोपासना का मार्ग बताया गया है तथा इस सारी सृष्टि को ही 'नादात्मक' कहा गया है -

'न नादेन बिना गीत न नादेन बिना स्वराः।
न नादेन बिना नृत तस्मान्नादात्मंक जगत्।।
नादरूपोः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः।
नादरूपा पराशक्तिर्नादरूपो महेश्वरः।।

नाद से ही श्रुति तथा श्रुति से स्वर की उत्पत्ति हुई है। स्वरों के विशिष्ट-संयोजन से राग का सृजन होता है। संगीत ग्रंथों में स्वर के लिए ''श्रुत्यंतर भावी यः स्निग्धोश्ष्नुरणात्मकः, रंज्जकों जन चित्ताना सः रागः कथितौ बुधैः आदि परिभाषाएँ दी गयी है। इनसे यह विदित होता है कि स्वर में स्निग्धताः, अनुसरण, प्रकाशमान, स्पष्ट व रंज्ज्कता निहित है और इन्हीं विशेषताओं युक्त स्वरों से राग की रचना होती है। स्वर रंज्जक होने के कारण स्वतः ही आनंददायी होते हैं। ये स्वर ही राग संगीत का स्रोत हैं अतः हम कह सकते हैं कि संगीत कला की नींव है सौन्दर्यतत्व पर आधारित है। संगीत में निहित रंज्जक तत्व ही सौन्दर्य का प्रतीक है। राग रचना में आरोह-अवरोह के रूप में ली गई अनेक स्वर संगतियों में 'काकु' प्रयोग के साथ मधुर ध्वनि प्रवाह, स्वरात्मक लय तथा लयात्मक स्वर आदि ही मिलकर संगीत का निर्माण करते हुए उसमें निहित सौन्दर्य तत्व का श्रव्य रूप में अनुभव कराते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि स्वर व लय की विशिष्ट संयोजना द्वारा ही संगीत में सौन्दर्य का जन्म होता है।

भारतीय परंपरा में ऋग्वेद में सौन्दर्य को 'श्री' नाम से सम्बोधित किया गया है, इसके अतिरिक्त 'श्रिय' आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। अमर कोष में सुन्दर शब्द तथा उसके अनेक पर्याय शब्द मिलते हैं।

यथा -

''सुन्दर रूचिरं चारू, सुषमं, साधु, शोभनम्।
कान्त, मनोरम्, रूच्यं मनोज्ञं, मंजु, मंजुलम,
अभीष्टेभीप्तिं, हदयं, दयितं, वल्लभं, प्रियंम्।''

इसके अतिरिक्त ललित, सुष्ठु काम्य, कमनीय, दिव्य आदि शब्दों का भी प्रयोग 'सौन्दर्य' शब्द के पर्याय के रूप में किया गया है।

अंग्रेजी में सौन्दर्य का वाचक शब्द है - Beauty, Beauty का अर्थ है "Any of those attributes of form, sound, colour, execution, character, behavior etc. which give pleasure and gratification to the sense or to the mind, a person or thing possessing this" (आकृति, रूप, ध्वनि, रंग, प्रस्तुतिकरण, चरित्र, व्यवहार आदि जो इन्द्रियों अथवा मन को आनंद तथा संतोष प्रदान करें अथवा ऐसे गुण से सम्पन्न कोई व्यक्ति अथवा वस्तु)।

ललित कलाओं में निहित सौन्दर्य का तात्विक विवेचन करने तथा उसके आधार पर सिद्धांतों का निरूपण करने हेतु ही 'सौन्दर्यशास्त्र' (aesthetics) की व्युत्पत्ति हुई तथा इसे एक शास्त्र के रूप में मान्यता प्रदान की गई। Aesthetics का शाब्दिक अर्थ है "The Science of the Beauty in art and nature" अर्थात कला व प्रकृति के सौंदर्य का विज्ञान या शास्त्र। इससे पहले पाश्चात्य परम्परा में सौन्दर्य का विवेचन दर्शन की एक शाखा के रूप में होता था।

भारतीय सौंदर्य दर्शन मूलतः आध्यात्मिक है। सौन्दर्य शब्द की चर्चा करते हुए सत्यं, शिवं, सुंदरम व सच्चिदानंद शब्द सहज ही सामने आते हैं। सत्यं, शिवं सुंदरम व सच्चिदानंद के गुण हैं इसमें सुंदरम का स्थान सबसे आगे हैं। सुन्दरम् के अन्तर्गत ही सत्य एवं शिव का

समागम है। जो सुन्दर है उसका अस्तित्व है, वहीं 'सत्य' है, सुन्दरम में आनंद प्रदायनी क्षमता हैं, जो आनंदमयी है वो स्वतः ही कल्याणकारी हैं। यही 'शिव' है। सुन्दरम् की अनुभूति ही आनंद की अनुभूति है संगीत कला जब अपने सूक्ष्म सौंदर्य से श्रोताओं को अवधानमग्न और तन्मय कर देती है तभी परम् सुन्दरम की स्थिति आती है और परमानंद की अनुभूति होती है। विविध भावों से परे इसे सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यानुभूति की परमानंद अवस्था को ही, आचार्य अभिनवगुप्त ने रसानुभूति का 'चरम तल' तथा विश्वनाथ ने 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा है।

भारतीय परंपरा में 'रस' को सौन्दर्य का पर्याय माना गया है। रस का सम्बन्ध आनंद से है ललित कलाओं की विशेषता है आनंद प्रदान करना। कला द्वारा निर्मित रस प्रकृति द्वारा उत्पन्न पदार्थों के रस से भिन्न है।

सभी कलाओं में कलाकार के हृदय में अपनी कला के प्रति एक भावना होती है जो आध्यात्मिकता से परिपूर्ण होती है। प्रत्येक कला का उद्देश्य आत्मोन्नति, मोक्ष प्राप्ति, सामाजिक उत्कर्ष तथा लोकरंजन से जुड़ा होता है। आत्मोन्नति एवं मोक्ष प्राप्ति को कला का लक्ष्य मानने से उसका संबंध स्वतः ही मानव के उस आत्मिक एवं मानसिक बल से जुड़ जाता है यही कारण है कि कला को विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम कहा गया है। भारतीय परम्परा में सौन्दर्यानुभूति ही रसानुभूति है अभिव्यक्ति के स्तर पर सौन्दर्य तथा अनुभूति के स्तर पर आनंद। रस, शृंगार, हास, करूण, शोक आदि ही नहीं बल्कि भयानक रौद्र, अद्भुत, वीभत्स आरि रसों से युक्त आदि मानसिक विचारों को भी 'भय' के घेरे से दूर रहकर उनका रसास्वादन सौंदर्यात्मक रूप में कराता है। जैसे संगीत कला में करूण भाव के प्रस्तुतीकरण में कलाकार स्वयं पीड़ित नहीं हो उठता वरन विभिन्न अलंकार एवं संगीत के घटकों, काकू प्रयोगों द्वारा आलाप बन्दिश आदि को इस प्रकार भावों से ओतप्रोत कर देता है कि सहृदय श्रोताओं को भी कलाकार की मानसिक स्थिति के साथ तादात्म्य होने के कारण उन्हें भी एक समान भावानुभूति होती है। तादात्म्य होने की यही अवस्था रसानुभूति अथवा सौन्दर्यानुभूति है। सभी प्रकार के विचारों और उनके लिए निमित्त रसों का आस्वादन कराने की क्षमता एक कुशल कलाकार में होती है। उसका कारण यह है कि कलाकार सहनशील व सहृदय होने के कारण प्रत्येक वस्तु व्यक्ति या कथन की गहराई तक पहुँचने का प्रयास करता है। स्वार्थपरता से दूर रहकर आत्मा का ब्रह्मा की सिद्धि में एवं वास्तविकता में विश्वास रखते हुए, बहिरंग के साथ अंतरंग को भी जांचता परखता है तथा बिना किसी की परवाह किए निस्संकोच मुक्त रूप से भावाभिव्यक्ति करता है और इस प्रकार हर तरह से मानसिक विचारों भावों व रसों का अनुभव कलात्मक एवं सौन्दर्यात्मक रूप में स्वयं भी करता है व दूसरों को भी कराता है।

सौन्दर्यानुभूति की उपलब्धि अंतः और बाह्य दोनों ही कारणों से मानी जा सकती है यह आवश्यक नहीं है कि कोई सुंदर वस्तु सभी को सुन्दर प्रतीत हो। सौन्दर्यानुभूति अनुभवनिष्ट भी हो सकती है। कमल अथवा गुलाब का फूल, नदी का कल-कल कर बहना, झरने का गिरना सभी को सुंदर लगा सकता है किन्तु मानवीय भावनाओं के आधार पर देखा जाए तो प्रत्येक व्यक्ति को अपना आराध्य देवी देवता, प्रत्येक माँ को अपना बालक एवं प्रियजन रूपवान अथवा कुरूप होने पर भी सुन्दर प्रतीत होता है क्योंकि यहाँ प्रेम ही प्रधान भाव बनकर

सौन्दर्यानुभूति का अनुभव करा देता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्यानुभूति केवल वस्तु का गुण नहीं है अपितु मानसिक प्रतीति भी है।

विद्वानों ने सौन्दर्यानुभूति का संबंध रस के साथ जोड़ते हुए उसे आनंद का मूलभूत तत्व बताया है रस निष्पत्ति के लिए संवेगात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में संगीत की प्रमुख भूमिका रहती है सौन्दर्यानुभूति के निर्माण में माधुर्य ओज एवं प्रसाद इन तीन गुणों का समावेश रहता है माधुर्य - मिठास, कोमलता एवं प्रेम की भावना से हृदय को कोमल एवं द्रवित करने वाला, ओज-वीरता व शूरता की भावना भरने वाला तथा प्रसाद - मोहक स्पष्ट, सरल व शाँतचित्त की भावना को व्यक्त करने वाला है, इनके अन्तर्गत ही संगीत के माध्यम से सूक्ष्म या स्थूल रूप में अभिव्यक्ति की अनेक सुंदर धाराएँ प्रवाहित होती हैं।

ललित कलाओं को सौन्दर्यानुभूति का साक्षात स्वरूप कहा गया है। ये आनन्दात्मक होने के कारण ऐन्द्रिय सुख के साथ मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक सुख भी प्रदान करती है। ललित कलाओं की अभिव्यक्ति से जो रस उत्पन्न होता है उसे कलात्मक अनुभूति कहा गया है। कलात्मक रचना द्वारा रस की प्राप्ति मानवीय सृष्टि एवं प्रयत्नों का फल है। ललित कलाएँ सौन्दर्याभिव्यक्ति का वो माध्यम है जो अलौकिक आनंद प्रदान करती है।

भावों की अभिव्यक्ति में अन्य कलाओं की अपेक्षा संगीत कला का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। संगीत मात्र ध्वनि के सुन्दर संयोजन द्वारा ही सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति में सक्षम है। ध्वनि जब स्थिर नियमित स्पष्ट, मधुर एवं संगीतोपयोगी हो जाती है तब वह स्वर में परिणित हो जाती है। स्वर के शुद्ध तथा विक्रत दोनों ही रूप संगीत में सौन्दर्याभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। राग भारतीय संगीत की अनुपम निधि है। राग स्वर वर्ण से अलंकृत विशिष्ट स्वरावली है जो रंज्जक तथा आनंद प्रद है। राग में सौन्दर्य के अनंत रहस्य निहित हैं। एक राग अनेक बार सुनने पर भी सुन्दर एवं मनोहारी प्रतीत होता है। राग भारतीय संगीतज्ञों की सुविकसित, परिष्कृत, सूक्ष्म सौन्दर्यभावना का प्रतीक है। राग का स्वर वर्ण से विभूषित 'ध्वनिविशेशस्तु' अंग उसके रूप सौंदर्य से संबंधित है तो उसका 'रंज्जकत्व' तत्व अंतः सौन्दर्य से संबंधित है। राग के विस्तार में स्वरों के विविध लगाव, आलाप, तान, वादी, संवादी विवादी स्वरों का उचित संयोजन, कण, मुर्की, मीड़, खटका, गमक आदि अलंकरणों का प्रयोग, राग भाव के अनुसार ताल का सही निर्धारण तथा उचित लयों का प्रयोग उसके सौन्दर्य वृद्धि में सहायक होते हैं। इस प्रकार स्वर लहरियों की अविरलता तथा स्वर, ताल, लय का अपूर्व संयोजन ही संगीत का सौन्दर्य आदर्श है जो सुनने वाले को विशिष्ट आनंदानुभूति कराता है। यही सौन्दर्यानुभूति है। कलाकार द्वारा जब किसी राग की अवतारणा की जाती है तो कलाकार, कलाकृति एवं श्रोता इन तीनों के बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। गायक अथवा वादक अपनी कल्पना के सहारे रचना को सुन्दर स्वर लहरियों से संवरता है तथा विस्तारित करता जाता है तथा श्रोता अपनी मनोस्थिति के अनुसार उसका रसास्वादन करता जाता है। कलाकार की भावाभिव्यक्ति तथा श्रोता की भावानुभूति की इस प्रक्रिया के बीच में 'सौन्दर्य' अपना स्थान बना लेता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कलाकार के अर्न्तमन में स्थित सौंदर्य की कल्पना का बाह्स सौन्दर्य के साथ सामंजस्य, निर्मित कलाकृति में उस सौन्दर्य का आविर्भाव

तथा श्रोता के मन में सौन्दर्य का अनुभव इन तीनों (कलाकार, कलाकृति तथा सहृदय) के समन्वित रूप में ही सौंदर्य निहित है। कलाकार अपनी कलाकृति द्वारा आनंद एवं वेदना दोनों प्रकार के भावों को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। कोई शृंगारिक अथवा शांत रस से परिपूर्ण रचना यदि श्रोता के मन को आनंदित करती है उतना ही आनंद कोई विरह गीत या करूण रस से परिपूर्ण रचना भी प्रदान कर सकती है। उचित स्वर सन्निवेश भावों के अनुसार काकु प्रयोग श्रोता के चित्त को आल्हादित करने की क्षमता तथा कल्पना का प्रयोग किसी भी रचना को हृदयग्राही बना सकता है। संगीत रचना के बाह्य तथा आंतरिक दोनों स्वरूपों को उभारना व श्रोताओं को स्वर लहरियों के सागर में विहार कराना ही यदि कलाकार का लक्ष्य हो, और वह इसमें सफल हो तभी सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से वह उत्कृष्ट कला कही जा सकती है।

वाद्य संगीत पदविहीन होने के उपरांत भी स्वरों के सुनियोजित एवं सुन्दर संयोजन के कारण आनंदानुभूति के एक विशिष्ट वातावरण का निर्माण कर देता है। श्रोतागण तन्मय होकर उस वातावरण में विशेष सौन्दर्यात्मक तत्वों के निहित होने के कारण उसका रसास्वादन करने को बाध्य हो जाता है। यही सौन्दर्यात्मक तत्व कला को 'सत्य' ब्रह्म या मोक्ष प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। श्रोताओं की तन्मयता ही इस बात की घोतक होती है कि उस समय श्रोता अचेतन होते हुए भी चेतन तथा निष्क्रिय होते हुए भी सक्रिय रहता है। श्रोताओं को आनंद के चरमोत्कर्ष तक ले जाने वाला यही भाव सौन्दर्य के शास्त्रीय लक्षणों से युक्त माना जा सकता है। इन लक्षणों के अन्तर्गत, सम्मात्रा (Symmetry), संगति (Harmony), संतुलन (Balance), सुव्यवस्था (Order), विविधता (Variety), औचित्य (Propriety), स्पष्टतया सौम्यता (Simplcity), आदि अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। संगीत कला में सौन्दर्य के शास्त्रीय नियमों लक्षणों के पालन से, सौन्दर्य उपादानों के समुचित प्रयोग से, कलाकार की सुन्दर एवं सफल अभिव्यक्ति से, अनुकूल वातावरण में, श्रोता के सहृदय एवं ग्रहणशील होने पर संगीत कलाकृति से जो विलक्षण आनंद की अनुभूति होती है वही सौन्दर्यानुभूति है। संगीत कला से प्राप्त आनंद मूलतः विशुद्ध ही होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. संगीत निबंध संग्रह
2. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका
3. सौंदर्य, रस एवं संगीत
4. सौन्दर्य
5. भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र
6. कलाबोध एवं सौन्दर्य
7. भारतीय संगीत का सौन्दर्य विधान

'किराना घराना और आगरा घराना : बंदिश की विशेषता का तुलनात्मक अध्ययन'

पारूल शर्मा

सारांश

पूर्व काल में भारतीय शास्त्रीय संगीत में ख्याल गायकी के कई घराने प्रचलित थे जैसेः रामपुर, दिल्ली, आगरा, लखनऊ, किराना, पटियाला, जयपुर, मेवाती, ग्वालियर और भिंडी बाजार घराना। इन सभी घरानों की अपनी विशिष्ट शैलीयां है परंतु वर्तमान में केवल कुछ घराने ही मुख्य रूप से प्रचलन में रह गए है इनमें से किराना और आगरा घराना संगीत में गायन शैली के आधार पर अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं किराना घराना अपनी गायकी और अनोखी प्रतिभा के कारण जाना जाता है स्वर प्रधान गायकी होने के कारण इसमें बंदिश के बोलों की की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि भाव के आधार पर बोल बनावट को विशेष स्थान दिया जाता है और आगरा घराने की गायकी पर लयकारी का विशेष प्रभाव देखा जाता है इस घराने में बंदिश के बोलों की तरफ ज्यादा ध्यान दिया जाता है बंदिश के बोलों को कलात्मक तरीके से पेश करना इस घराने की विशेषता है। इस प्रकार दोनों घरानों की बंदिश प्रस्तुत करने के तरीके में काफी अंतर देखने को मिलता हैं दोनों घराने अपनी - अपनी बंदिश कहने के ढंग को लेकर विशेष लोकप्रिय है दोनों घरानों की गायकी को आज भी संगीत के विद्यार्थी अपनी रहे है आधुनिक समय की माणिक वर्मा ने इन दोनों घरानों के दिग्गज़ कलाकारों से शिक्षा प्राप्त कर अपनी एक अलग गायकी बनाई। आशा है कि इसी प्रकार भविष्य में नई पीढ़ी के कलाकार किसी एक घराने की गायकी पर निर्भर ना रहकर अपनी गायकी में विभिन्न घरानों के सौंदर्य तत्वों का समुचित मिश्रण करके अलग-अलग प्रकार की बनाएंगे यही मेरे उपरोक्त शोध-पत्र का उद्देश्य हैं।

मुख्य शब्द :- *किराना घराना, आगरा घराना, बंदिश, मुखड़ा, भावपूर्ण, नोम्-तोम् आलाप, लयकारी।*

भारतीय शास्त्रीय संगीत केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं तथापि ईश्वर उपासना का मार्ग होते हुए मनुष्य की हृदयगत भावनाओं का सौंदर्य पूर्ण नादमय अभिव्यक्ति करण भी है आदिकाल से एक वेगवान प्रवाह के रूप में चलती आ रही संगीत की गायन सरिता में कई तरह के मोड़ आए जो प्रबंध, ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, गीत, भजन और गज़ल इत्यादि शास्त्रीय, उपशास्त्रीय अथवा सुगम संगीत के रूप में जाने गए। इनमें से ख़्याल गायन शैली एक ऐसा मोड़ था, जहां पर इस संगीत सरिता ने अन्य छोटी-छोटी धराओं में प्रवाहित होना शुरू कर दिया, जिन्हें आज हम संगीत के घरानों के रूप में जानते हैं। घराना अर्थ संगीत में विशिष्ट अर्थ के रूप में प्रयुक्त होता है। यद्यपि शाब्दिक अर्थ से घराना किसी कुल, वंश या परिवार के लिए अभिप्रेत है, तथापि संगीत की ख़्याल गायन शैली में एक विशिष्ट ढंग की

शोधार्थी-पी.एच.डी यूजीसी नेट, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

गायन प्रणाली के अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त होता है। शास्त्रीय संगीत में ग्वालियर, आगरा, जयपुर अतरौली, किराना, पटियाला और दिल्ली इत्यादि कई प्रसिद्ध घराने अपनी गायकी स्थापित कर चुके हैं शास्त्रीय संगीत में संगीत के मूल तत्व स्वर, तान आदि का सम्मिश्रण होते हुए भी, जब घराना परंपरा से अपना नाता जोड़ने लगता है, तो उसमें आवाज़ का विशिष्ट लगाव, राग विस्तार की प्रक्रिया, तान का वैशिष्टय पूर्ण ढंग, बंदिशों का अलग-अलग रख रखाव उस समूचे गायन के प्रस्तुतीकरण का अपना अलग-अलग अर्थ स्पष्ट होता हैं। इसी कारण संगीत में गायन शैली के आधार पर भिन्न-भिन्न घरानों में किराना और आगरा घराना अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं।

किराना घराना : भारतीय शास्त्रीय संगीत और गायन की हिंदुस्तानी ख़्याल गायन की परंपरा को वहन करने वाले घरानों में से एक है किराना घराना। जो अपनी चैनदारी तथा भाव प्रधान गायकी के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है इस घराने का उद्‌गम प्रसिद्ध बीनकार उस्ताद बंदे अली खां से माना जाता है इस घराने का नामकरण यूपी के मुजफरपुर नगर जिले के किराना से हुआ माना जाता है जो इस घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ अब्दुल करीम खां का जन्म स्थान भी है अब्दुल करीम खां को इस घराने का वास्तविक संस्थापक माना जाता है गायन के संदर्भ में मुख्यतः अब्दुल करीम खां साहब और उस्ताद अब्दुन वहीद खां साहब इस घराने के आधुनिक प्रचारक है जिन्होंने अपनी गायकी से, इस घराने को ख़्याल गायकी के प्रतिष्ठित घरानों में स्थान दिलाया हैं।

आगरा घराना : इस घराने का आरंभ शाहजहां अकबर के दरबारी गायक 'हाजी सुजान खां' जो तानसेन के दामाद थे, से माना जाता है। किंतु आगरा घराने की गायकी के प्रचार-प्रसार और उसे समृद्ध करने का श्रेय 'घग्घे खुदाबख़्श' को ही जाता है आगरा घराना भारत के प्रसिद्ध घरानों में से एक है। यह मूलतः ध्रुपद-धमार गायकों का घराना रहा है इसलिए इसके ख़्याल गायन पर भी ध्रुपद-धमार के नोम्-तोम् की आलापचारी और लयकारी की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। जहां तक गायकी का संबंध है इस घराने की गायकी का ग्वालियर घराने की गायकी से विशेष संबंध है क्योंकि आगरा घराने की ख़्याल शैली के अन्वेषक घग्घे खुदाबख़्श ने ख़्याल की शिक्षा ग्वालियर घराने के मूल पुरुष 'नत्थन पीरबख़्श' से प्राप्त की थी। इसीलिए दोनों गायकियां आपस में मिलती-जुलती हैं।

(किराना और आगरा घराना) बंदिश की विशेषता :- किराना घराने में बंदिश वह काव्यात्मक संरचना है जो राग अनुकूल कुछ निश्चित स्वरों तथा एक निश्चित ताल चक्र में निबद्ध रहती हैं। आगरा घराने में बंदिश गाना एक बहुत जरूरी चीज़ मानी जाती है नई-नई आकृति का सौंदर्य पाने के लिए एक ही राग की कई रूप दिखाने के लिए यह एक अच्छा तरीका होता है प्रत्येक बंदिश का एक मिजाज़ होता है। इस मिजाज़ को समझ कर जब बंदिश प्रस्तुत की जाती है, तो इसकी आकृति का सौंदर्य खिल उठता है गायक जब चीज़ का विस्तार करते हैं तब उनको बोल-बढ़त, बोल-बांट और तान में लय और बोल की काट-तराश में ताल की विशिष्ट प्रकृति को संभालना पड़ता है। आगरा घराने की गायकी में इन चीज़ों के प्रति पूरा आदर दिखाई देता है। अतः इस गायकी के चित्रण में इन चीज़ों का बड़ा महत्व समझा जाता है। उक्त दोनों घरानों की बंदिश प्रस्तुत करने के तरीके को लेकर घरानों के दिग्गज़ कलाकारों ने अपने विचार प्रस्तुत

किए हैं :-

आगरा घराने के कलाकार पंडित यशपॉल के अनुसार :- ''किराना गायकी स्वर प्रधान गायकी होने के कारण इसमें बंदिश के बोलों की और ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। इस घराने में गायक बंदिश को पूरा नहीं गाते, केवल मुखड़ा ही गाते हैं। स्थाई का एक बोल लेकर उसी में गाना खत्म कर देते हैं। विलंबित ख़्याल में बंदिशों को पूरा सुनने का अवसर बहुत कम मिलता है। अधिकांश गायक विलंबित ख्याल में केवल मुखड़े के बोल ही स्पष्ट कहते हैं। द्रुत ख़्याल में छोटे ख़्याल की बंदिशे अवश्य पूरी गाई जाती हैं। इसके विपरीत आगरा घराने में राग के सौंदर्य को बंदिश के माध्यम से सजाते बनाते हैं। बंदिश शुरू करने से पूर्व नोम्-तोम् का आलाप करते हैं तत्पश्चात् बंदिश की पूरी स्थाई व अंतरा गाकर बंदिश को विभिन्न आभूषणों जैसे स्वर का लगाव, बहलावा, बोलबांट, लयकारी इत्यादि से सजाते हैं। राग की बंदिशें राग स्वरूप तथा तान की दृष्टि से अत्यंत व्यवस्थित होती हैं।''

डॉ सुरेश गोपाल श्रीखंडे के अनुसार :- ''किराना घराने की गायकी में भक्ति रस की बंदिशे अधिक सुनने को मिलती हैं। यह हम स्थूल रूप से कह सकते हैं। बंदिश में भाव कौन -सा है, यह देख कर उसके साथ एक रूप होकर हम गाते हैं। इसके विपरीत आगरा घराने की गायकी में राजा, महाराजा, बादशाह इनकी स्तुति पर बंदिशें ज्यादा सुनने को मिलती हैं यह विधान हम स्थूल रूप से कह सकते है। आगरा घराने की बंदिश की रचनाओं में तान प्रधान बंदिशें थोड़ी बहुत ही सुनने को मिलती है लयकारी पर ज्यादा ध्यान दिया जाता हैं।''

पं. गणेश प्रसाद शर्मा के अनुसार :- ''किराना घराने की गायकी भावपूर्ण गायकी है इस घराने के कलाकार बंदिश के मुखड़े को तोड़-मरोड़ कर गाते हैं, ज्यादा बोलतान नहीं करते, बंदिश के शब्दों का ठीक-ठाक उच्चारण करते हैं, भाव का ध्यान रखते हैं और नोक-झौंक तथा बोल - बांट पर अधिक ध्यान देते हैं यही किराना घराने की सबसे बड़ी विशेषता है। इसके विपरीत आगरा घराने की बंदिश में लयकारी प्रधान हैं बंदिश शुरू करने से पहले नोम् - तोम् का आलाप करते हैं उसके पश्चात् बंदिश गाना प्रारंभ करते है। और बोल-बांट करते हैं। उस्ताद विलायत हुसैन खां के पुत्र यूनुस हूसैन खां साहब बंदिश में अधिक बोल - आलाप, नोम्-तोम् के आलाप, लयकारी और बोल-तान करते थे और इस घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक उस्ताद फैयाज़ खां बंदिश में बहुत कम सरगम कहते थे यदि कहते भी तो बहुत सपाट सरगम कहते थे कहने का अभिप्राय है कि सरगम को कहना अच्छा नहीं मानते थे बोल-तान परी ज्यादा ध्यान देते थे।'' इस प्रकार दोनों घरानों की बंदिश कहने के ढंग में काफी असमानता देखने को मिलती हैं लेकिन दोनों ही घराने अपने-अपने घरानों की विशेषताओं के कारण काफी प्रचार में हैं। किराना और आगरा घराने की प्रसिद्ध कलाकार माणिक वर्मा ने सुरेश बाबु माने और श्री जगन्नाथ बुआ से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। इन दोनों घराने से शिक्षा प्राप्त करने के अलावा उन्होंने अन्य घरानों से कुछ अच्छे तत्व भी ग्रहण किए।कहने का अभिप्राय हैं जिस प्रकार माणिक वर्मा ने एक घराने की गायकी पर निर्भर न रह कर अपनी गायकी में अन्य घरानों के सौंदर्य तत्वों को आत्मसात किया और अपनी गायकी की अलग प्रकार की बनाया। आशा करती हुं कि उसी प्रकार वर्तमान में भी शास्त्रीय संगीत से जुड़े विद्यार्थी अपनी गायकी में एक से अन्य घरानों के सौंदर्य तत्वों को ग्रहण करके अपनी

एक अलग प्रकार की गायकी बनाएंगे और घरानों की लोकप्रियता में अपनी योगदान देंगे।

निष्कर्ष :- उपरोक्त विवेचन से जो बातें उजागर होती है उनके आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि किराना घराने में बंदिश की आवश्यकता के अनुसार महत्व नहीं दिया जाता। इस घराने के कलाकार बंदिश का केवल मुखड़ा गाकर ही राग-विस्तार शुरू करते हैं लेकिन आगरा घराने में घरानेदार बंदिश का एक महत्वपूर्ण नियम है। ख़्याल की बंदिश प्रवाहित व अविरल रहती हैं अतः आगरा घराने में बंदिश को प्रर्याप्त महत्व दिया जाता है। अंत में किराना और आगरा इन दोनों घरानों की बंदिश की विशेषताओं को संपूर्ण अवलोकन करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि दोनों घरानों की बंदिश को प्रस्तुत करने के ढंग में समानता कम है और अंतर अधिक है यह दोनों ही गायकियां अपनी-अपनी दृष्टि से परिपूर्ण है। किराना और आगरा इन दोनों घरानों में यही समानता देखने को मिलती हैं कि ये दोनों ही घराने ख़्याल गायकी का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। दोनों घरानों की गायकी मधुर, रंजक, हृदयस्पर्शी तथा लोकप्रिय है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ मधुबाला सक्सेना, ख़्याल शैली का विकास, वी.के.अरोड़ा, विशाल पब्लिकेशंस यूनिवर्सिटी केंपस, कुरूक्षेत्र 132119।
2. सुशील कुमार चौबे, संगीत के घरानों की चर्चा, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनउ-1977
3. आर.सी.मेहता, आगरा घराने की गायकी, विशेषताएं तथा चीजें, महाराजा सियाजीराव विश्वविद्यालय बड़ौदा-1969
4. नरेंद्र विशिष्ट आलेख- किराना घराने के संगीतकार, संगीत पत्रिका, दिसंबर 1984, संगीत कार्यालय हाथरस (उ.प्र.) 204101
5. डॉ सुरेश गोपाल श्रीखंडे, साक्षात्कार, दिनांकः 30.05.2011, कुरूक्षेत्र।
6. पंडित गणेश प्रसाद शर्मा, साक्षात्कार, दिनांक : 10.06.2011, अंबाला।
7. पंडित यशपॉल शर्मा, साक्षात्कार, दिनांक : 12. 06.2011, चंडीगढ़
8. www.prabhaatre.com

कथक समूह नृत्य शैली में आधुनिक प्रयोग

Ishita Bhatnagar and Prof. Ravi Kumar Bhatnagar

सार

भारतीय संगीत की त्रिवेणी में नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है। शास्त्रीय नृत्यों की श्रेणी में कथक नृत्य-शैली का सर्वोच्च स्थान है। प्राचीन काल में मंदिरों में प्रस्तुति से लेकर आधुनिक काल तक कथक नृत्य की विकास यात्रा अत्यन्त रोचक एवं महत्वपूर्ण रही है। अपने एकल एवं युगल प्रदर्शन के साथ कथक नृत्य ने सामूहिक नृत्य में भी कीर्तिमान स्थापित किये हैं। कथक के समूह नृत्य की चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में सर्वप्रथम 'रास-नृत्य' के रूप में प्राप्त होती है। आधुनिक काल तक आते-आते कथक में सामूहिक नृत्य के प्रयोग आरम्भ हो गए, जिनमें सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय नवाब वाजिद अली शाह को जाता है। 20वीं शताब्दी में पंडित उदय शंकर जी ने समूह नृत्य क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोग किये किन्तु कथक समूह नृत्य के क्षेत्र में मैडम मेनका, पं. शम्भू महाराज व पं. लच्छू महाराज तथा पं. बिरजू महाराज जैसे उत्कृष्ट कलाकारों ने अपना उल्लेखनीय योगदान दिया। कालान्तर में कथक नृत्य के सामूहिक स्वरूप में अनेक आधुनिक नवीन प्रयोग हुए जिनमें ध्रुपद, धमार, ठुमरी, तराना, त्रिवट आदि जैसी अनेक गायन-शैलियों के साथ कथक नृत्य का प्रस्तुतिकरण भी आरम्भ हो गया। नवीन प्रयोगों की शृंखला में 'कथक नृत्य-नाटिका' अर्थात 'कथक-बैले' भी प्रचार में आया जिसमें भारतीय संस्कृति के साथ पाश्चात्य नृत्य का सम्मिश्रण किया गया। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कथक में एकल व युगल नृत्य के साथ सामूहिक नृत्य का भी विशिष्ट स्थान है जो कि वर्तमान में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर विख्यात हो रहा है।

भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की श्रेणी में 'कथक' नृत्य-शैली को सर्वोत्तम स्थान प्राप्त है। प्राचीन काल में कथक नृत्य मंदिरों में कथावाचकों द्वारा कथित किया जाता था। समयान्तर में इस नृत्य-शैली का प्रस्तुतिकरण मंच पर किया जाने लगा तथा मंदिरों से मंच तक का इतिहास अत्यधिक चिरस्मरणीय रहा है। कथक नृत्य-शैली की एकल व युगल प्रस्तुति सर्वमान्य है, किन्तु कालान्तर में समूह नृत्यों का प्रस्तुतिकरण भी कीर्तिमान हासिल कर रहा है। कथक समूह नृत्य का प्राचीन स्वरूप 'रास' माना गया है। 'भागवत् पुराण' के समय वैष्णव धर्म से प्रभावित 'रास' नृत्य का विकास हुआ जिसमें आठ से दस गोपियों के साथ भगवान कृष्ण ने सामूहिक नृत्य प्रस्तुत किया तथा 'रास-नृत्य' से ही 'नटवरी नृत्य' अर्थात् 'नटवर कृष्ण के नृत्य' का विकास हुआ, जो कालान्तर में 'कथक' का समानार्थी बन गया है।

19वीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध नवाब वाजिद अली शाह के काल में लखनऊ में कथक नृत्य का उत्कृष्ट रूप से विकास हुआ। ब्रज के रास-नृत्य व गान से प्रभावित होकर वाजिद अली ने बिन्दादीन और कालका प्रासाद की सहायता से सर्वप्रथम नृत्य-मण्डली बनाई जिसके प्रस्तुतिकरण को उन्होंने 'रहस' कहा। कथक समूह नृत्य में नाट्य का प्रयोग सर्वप्रथम वाजिद

अली ने 'इन्द्रसभा' से किया था। कथक नृत्य-शैली में असंख्य नृत्य-प्रकारों को अविष्कृत किया था, जैसे-सलामी, सीधी गलबहियाँ, मोरपंखी, चक्कर, पलटा, मुजरा, घूंघट, चन्द्रमुखी, सूरजमुखी इत्यादि। वाजिद अली शाह ने 'अख़्तर' उपनाम से अनगिनत साहित्यिक एवं सांगीतिक रचनाओं को लिपिबद्ध किया। इन्होंने असीमित होलियां, धमार, ठुमरियां आदि गेय विधाओं का समावेश किया है। इसी प्रकार से वाजिद अली शाह का असाधारण योगदान रहा है, जिसके अन्तर्गत इन्होंने कला व कलाकारों को प्रोत्साहन दिया व कथक समूह नृत्य-शैली को पूर्ण रूप से विकसित किया। धार्मिक भावनाओं के सराबोर से कथक समूह नृत्य-शैली ने शनैः शनैः 19वीं शताब्दी तक अपने को पूर्ण रूप से वातावरण के अनुसार समायोजित कर लिया था और इसी क्रम में अग्रसर होती गयी।

20वीं शताब्दी में सर्वप्रथम समूह नृत्य की श्रेणी में सर्व विख्यात कलाकार पं0 उदय शंकर जी का अप्रतिम योगदान रहा है। शास्त्रीय नृत्यों व लोक नृत्यों की विशेषताओं को सम्मिलित करते हुए उन्होंने अपनी स्वतंत्र शैली का अनुसंधान किया जिसे 'ओरियण्टल स्टाइल' के नाम से जाना गया। पं. उदय शंकर जी की 'ओरियण्टल शैली' का उद्गमन ही भारतीय प्रकार के 'बैले' में धार्मिक कथा के स्थान पर सामान्य मानव-जीवन से प्रेरित नृत्य व नाट्य के रूप में उजागर हुआ। पं. उदय शंकर जी ने समूह नृत्यों का आगमन तो किया परन्तु कथक नृत्य-शैली उनकी मुख्य शैली नहीं थी।

इसी क्षेत्र में मुम्बई की मैडम मेनका का 'कथक समूहन' व 'बैले' नृत्य प्रस्तुतिकरण दो दशकों तक बहुत चर्चा में रहा। 'देव विजय', 'मेनका लास्यम', 'ऊर्जा' जैसे बैले-नृत्य उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। इसके पश्चात् 'संगीत नाटक अकादमी' के द्वारा स्थापित 'भारतीय कला केन्द्र' दिल्ली में कथक नृत्य की शिक्षा व उसकी सामूहिक संरचना का आरम्भ हुआ। पं. बिरजू महाराज जी द्वारा रचित 'गोवर्धन लीला', 'मालती माधव', 'कुमार सम्भव' आदि सामूहिक नृत्य-नाट्य का प्रस्तुतिकरण किया गया था। इसके अतिरिक्त कुछ अल्पावधि नृत्य समूहों की भी रचना अंग-संचालन, कथा मंचन, वेश, संगीत तथा प्रदर्शन शैली के आधार पर की गयी। इन सभी सामूहिक नृत्यों का उपकरण कथक ही था, किन्तु कथक नृत्य के साथ-साथ कतिपय नवीन संयोजनों ने उसे उचित मात्रा में अलंकृत कर दिया, जिससे उसकी अथाह सम्भावनाओं के अनेक द्वार खुल गये।

यद्यपि प्राचीन काल से ही कथक नृत्य के प्रस्तुतिकरण में विभिन्न गायन-शैलियों का प्रभाव उसमें परिलक्षित होता आया है, तथापि कथा-संदर्भों ने इसे भजन, ध्रुपद, धमार की सौग़ात दी तथा दरबारी रिवाज़ से ख़्याल, ठुमरी, ग़ज़ल, तराना, दादरा इत्यादि का भी समावेश हुआ। कथा के रुझान ने इसे चैती, कजरी, होरी इत्यादि गायन-शैलियों से मिश्रित किया व कथक नृत्य के कलाकर्मियों की श्रेष्ठता ने इसे चतुरंग, त्रिवट, रागमाला का स्थान प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप कथक नृत्य की भावाभिव्यक्ति, काव्यानुभूति की रमणीयता में वृद्धि हुई।

उपरोक्त गायन-शैलियों का प्रयोग एकल नृत्य तक ही सीमित था अर्थात् पूर्ण वृत्तांत, जिसके अन्तर्गत वंदना, थाट, आमद, तोड़े, टुकड़े, कवित्त आदि के प्रदर्शन के पश्चात् विभिन्न गायन-शैलियों पर नृत्य प्रस्तुत किया जाता था। तत्पश्चात् आधुनिक समय में उपरोक्त गायन-शैलियों का प्रयोग सामूहिक नृत्यों में होने लगा है जो कि किसी एक या उससे अधिक गायन-शैलियों पर आधारित हो सकती है। कथक

में इन गायन-शैलियों के साथ-साथ बैले का सम्मिश्रण भी हुआ जिसे 'कथक-बैले' के नाम से जाना गया। कथक में सूफ़ियाना व यूजन के प्रयोग भी दृष्टिगत होते हैं। इस प्रकार कथक में अनगिनत नवीन संरचनाओं का उद्‌भव हुआ है। इसी सन्दर्भ में कथक समूह नृत्य-शैली के उपरोक्त आधुनिक प्रयोगों का विस्तृत स्वरूप इस प्रकार है :-

कथक समूह नृत्य में नवीन प्रयोग

सात्वती	कैशिकी	जाति अंग
• ध्रुपद	• ठुमरी	• त्रिवट
• धमार	• दादरा	• चतुरंग
• ख़्याल	• ग़ज़ल	• तराना
• सरगम गीत	• सूफ़ी	
	• होरी/कजरी/चैती	
	• भजन	
	• बैले (नृत्य - नाटिका)	

ध्रुपद - 'ध्रुव' और 'पद' के मेल से ध्रुपद गायन-शैली की रचना हुई है। मध्यकाल से ही ध्रुपद गायन-शैली उत्तर भारत की अग्रगण्य संगीत-शैली रही है। रास-साहित्य की मुख्य गायन-शैली भी ध्रुपद ही रही है तथा कथक नृत्य में भी ध्रुपद शैली का प्रयोग प्राचीन समय से किया जा रहा है। ध्रुपद शैली का रूपरंग सदैव धार्मिक रहा है तथा नृत्य का अभ्युदय भी धर्म से सम्बन्धित है।

ऐतिहासिक सन्दर्भों से प्रमाणित होता है कि कथक नृत्य शैली मंदिरों में भक्तिमय रचनाओं व पदों पर प्रस्तुत की जाती थी तथा भक्तिकाल में 'कीर्तन-प्रथा' कथक नर्तन का आधार बनी। कीर्तन ध्रुपद गायकी का ही अवयव माना जाता है जिसका साहित्य मुख्य रूप से ब्रज भाषा में समाहित है। कीर्तन में ईश्वर की स्तुति का पद, भगवान की लीलाओं का वर्णन, विविध वेश भूषा का प्रयोग इत्यादि का वर्णन किया जाता है। कीर्तन से सम्बन्धित कथक समूह नृत्य में लयात्मक शब्द और पखावज के बोलों का समावेश होता है। वर्तमान में कथक समूह नृत्य में ध्रुपद शैली के सन्दर्भ में अनेक प्रयोग हुए हैं जिनमें कतिपय प्रस्तुतियों का उल्लेख इस प्रकार है :-

- ⇨ ध्रुपदांगी कथक - 'A Jaraa' पार्वती दत्ता द्वारा सरस्वती नदी की एक नवीन कल्पना
- ⇨ ध्रुपदांगी कथक - 'Bansi Dhar' हरी हरा की अवधारणा पर राग मुल्तानी में पारंपरिक ध्रुपद
- ⇨ 'नाचत कर डमरू बाजे' - पुष्पांजलि द्वारा संगीतमय रूप से पं. राजेन्द्र गंगानी जी की रचना

धमार - ध्रुपद शैली के समान ही मध्यकाल में 'धमार' गायन शैली का प्रचार-प्रसार हुआ। धमार शैली को 'होरी' भी कहा जाता है अर्थात् धमार की गायकी का प्रसंग राधा-कृष्ण की होली का वर्णन ही होता है। विदुषी सुश्री शोवना नारायण के अनुसार धमार के गीत होरी और कृष्ण से सम्बन्धित होते हैं जिनमें गोपियों के साथ छेड़-छाड़ होती है। रास-साहित्य में धमार शैली को गायन के प्रकारों में सम्मिलित किया गया है। रास-नृत्य के समान की कथक नृत्य शैली में भी धमार गायकी का प्रयोग होता है तथा इसमें भी ध्रुपद के समान ही विलम्बित, दुगुन, तिगुन, चौगुन आदि लयों में नृत्य प्रस्तुत किया जाता है।

ख़्याल - उत्तर भारत में ध्रुपद गायन-शैली पर नृत्य का प्रदर्शन प्राचीन काल से ही होता आ रहा है तथा ध्रुपद के पश्चात् मुग़लकाल में 'ख़्याल' गायकी का भी नृत्य पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ने लगा। ख़्याल गायकी में आरोह तथा अवरोह द्वारा गूंथे गये विभिन्न स्वर-समूह

और कथक नृत्य में आश्चर्यजनक लयात्मक पद-संचालन और तोड़ों/टुकड़ों का प्रयोग बन्दिशों के लिए उचित रहा है। नृत्य के बोलों के विविध संयोजन और एकीकरण द्वारा बोलतान और तान के समकक्ष ही अंकगणित की तरह निश्चित अंकों में तालबद्ध अलंकारी फ़रमाइशी टुकड़ों का चलन बढ़ा। इस प्रकार ख़्याल गायकी के अनुरूप एक अपूर्व नृत्य रूप विकसित हुआ, जिसमें कला-पक्ष प्रधान था और भाव-पक्ष अपेक्षाकृत गौण।

मुख्य रूप से छोटे ख़्याल की बंदिशों पर ही कथक समूह नृत्य का प्रचलन रहा है क्योंकि विलम्बित ख्याल की गति नृत्य के अनुरूप नहीं थी। विविध रागों का प्रयोग नृत्य में भावाभिव्यक्ति का माध्यम बना है तथा वर्तमान में कथक नृत्याँगनाएं ख़्याल रचनाओं के माध्यम से विभिन्न प्रस्तुतियों में नवीन कला का सृजन कर रही हैं। काव्य साहित्य में अनेक प्रसंगों पर बंदिशों की रचना होती है, जैसे - राधा-कृष्ण सम्बन्धित, शृंगार तथा विरह सम्बन्धित, ऋतु-वर्णन, नायक-नायिका विवरण इत्यादि तथा अधिकतर रचनाओं में ब्रज भाषा, भोजपुरी, अवधी प्रयोग होती है। कथक समूह नृत्य के प्रस्तुतिकरण में उन रचनाओं का अधिकतर प्रयोग होता है जिनमें शब्दों की बहुलता रहती है तथा कथक नृत्य में प्रस्तुत छोटे ख़्याल की बंदिश को 'बंदिश की ठुमरी' भी कहा जाता है। वर्तमान में ख्याल शैली के सन्दर्भ में विभिन्न प्रस्तुतियों का उल्लेख इस प्रकार है :-

- ⇨ राग मियाँ मल्हार - 'गरज गरज' कथक बीट्स द्वारा प्रस्तुतिकरण।
- ⇨ 'बंदिशी' - सुजाता बैनर्जी व समूह द्वारा प्रस्तुति।

सरगम गीत - रागबद्ध व तालबद्ध स्वर रचना को सरगम गीत कहा जाता है। इसमें किसी भी प्रकार के शब्दों का प्रयोग नहीं होता केवल स्वर प्रयुक्त किये जाते हैं जो भिन्न-भिन्न ताल व रागों में निबद्ध होते हैं। नवीन प्रयोगों में सरगम गीतों पर भी कथक समूह नृत्य का प्रदर्शन किया जा रहा है। वर्तमान में सरगम गीत में विभिन्न प्रस्तुतियों का उल्लेख इस प्रकार है :-

- ⇨ खजुराहो नृत्य महोत्सव में नीलम् चंद्रया व निनाद समूह के द्वारा सरगम गीत पर कथक नृत्य की प्रस्तुति।
- ⇨ इंडियन रागा सिंगापुर के तत्वाधान में भारतीय ललित कला समाज के सहयोग से सरगम गीत पर प्रस्तुति।

ठुमरी - ठुमरी एक शृंगार रस-प्रधान मुख्यतः कैशिकी वृत्ति शैली है जिसमें कथक नृत्य अपनी अभिव्यक्ति व भावव्यंजक गुणों के कारण प्रस्तुत शैली के अन्तर्गत आता है। ठुमरी एक प्रचलित गेय-शैली है जो प्राचीन काल से ही कथक नृत्य के साथ प्रयुक्त की जाती रही है तथा अन्य गायन-शैलियों के स्थान पर ठुमरी-गायन का सर्वाधिक प्रयोग कथक नृत्य में दृष्टिगोचर होता है। 19वीं शताब्दी में लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में ठुमरी गायन का आरम्भ हुआ तथा कथक में ठुमरी के प्रचार-प्रसार का श्रेय पूर्णरूप से नवाब वाजिद अली शाह को जाता है। वाजिद अली के साथ-साथ ही कथक की ठुमरियों में असंख्य कवियों ने अपनी प्रवीणता को स्थापित किया किन्तु ठुमरी के इस क्षेत्र में लखनऊ घराने के महाराज बिन्दादीन का अविश्वसनीय योगदान रहा है।

ठुमरी भावों से परिपूर्ण रचना है तथा नृत्यकार इसे कोमलता व सुन्दरता के साथ भाव-भंगिमाओं के द्वारा प्रकट करता है। ठुमरी के दो प्रकार माने गये हैं - प्रथम, 'बोल-बाँट' की ठुमरी जिसमें लय की प्रधानता रहती है

तथा इसे बन्दिश की ठुमरी भी कहा जाता है। इसमें विविध वाद्यों के साथ नृत्य मुख्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है। द्वितीय, 'बोल-बनाव' की ठुमरी जिसमे भावाभिव्यक्ति की प्रमुखता रहती है। ठुमरी के शब्दों का अर्थ अभिव्यक्त करना ही कथक नृत्य का प्रमुख गुण माना जाता है। अंग तथा पद-संचालन का प्रयोग तब होता है जब 'तबले के बोलों' व 'लग्गी' का प्रयोग किया जाता है।

भाषा की दृष्टि से ठुमरी की रचनाएं अधिकतर ब्रज, हिन्दी, अवधी इत्यादि भाषाओं में प्राप्त होती है तथा ये प्रायः भैरवी, पीलू, देश, तिलक कामोद, झिंझोटी, खमाज़, पहाड़ी आदि रागों में गाई जाती हैं। वर्तमान में अनेक ठुमरियों पर कथक समूह नृत्य की प्रस्तुतियाँ प्रचलित हो रही हैं तथा प्राचीन कलाकारों द्वारा भिन्न-भिन्न रागों में रचित ठुमरियों का प्रदर्शन देश व विदेशों में प्रस्तुत किया जा रहा है तथा ठुमरी शैली में कथक समूह नृत्य की कुछ प्रस्तुतियों का उल्लेख इस प्रकार है :-

- ⇨ 'गोरी सलोनी तोरे नैना' - यास्मिन सिंह व समूह द्वारा प्रस्तुतिकरण।
- ⇨ 'लपट झपक मग रोकत श्याम देखो' - सिमरन गोदवानी व समूह द्वारा प्रस्तुतिकरण।

दादरा - दादरा शैली लोक संगीत से प्रभावित एक गायन-शैली है। नृत्य की दृष्टि से दादरा में झूमने व झूलने के भावों को दर्शाया जाता है। दादरा शैली के गायन पर कथक समूह नृत्य की मंचीय प्रदर्शनों का विवरण इस प्रकार है :-

- ⇨ दादरा - शिल्पी डान्स अकादमी द्वारा प्रस्तुति 'कैसी मधुर शाम बंसिया बजाई'

ग़ज़ल - ग़ज़ल एक सुप्रसिद्ध काव्य विधा है जिसको मुख्य रूप से उर्दू भाषा में गाया जाता है। कथक समूह नृत्यों में ग़ज़लों पर भावाभिव्यक्ति की जाती है तथा इस क्षेत्र में सुविख्यात नृत्यांगना श्रीमती उमा शर्मा ने असंख्य कार्यक्रमों में ग़ज़ल-गायन विधा पर भाव प्रदर्शित किए हैं। इसी प्रकार से अन्य विभिन्न कलाकारों ने भी ग़ज़लों पर मंचीय प्रस्तुतियाँ दी हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है :-

- ⇨ 'शाम-ए-ग़ज़ल' - नृत्यांजलि ट्रेडीशनल कथक इंस्टीट्यूट, सुशांता घोष व समूह द्वारा प्रस्तुति।
- ⇨ 'ग़ज़ल महफ़िल' - 'इंडियन रागा' द्वारा प्रस्तुतियां :-

1. जगजीत सिंह - होठों से छूलो तुम
2. हरि हरन - काश ऐसा कोई मंज़र होता
3. ग़ुलाम अली - चुपके चुपके रात दिन

- ⇨ 'यादगार-ए-ग़ालिब' - उमा शर्मा व समूह द्वारा प्रस्तुति।
- ⇨ 'क्यों चुराते हो देख कर आँखें' - रानी ख़ानुम द्वारा नृत्य-संरचना व आमोद डान्स सेंटर, दिल्ली द्वारा प्रस्तुति।
- ⇨ 'अंदाज-ए-रक़्स' - रानी ख़ानुम द्वारा प्रस्तुति।

सूफी - सूफ़ी गायन-शैली आध्यात्मिकता से परिपूर्ण होती है। सूफ़ी मत एक रूप है जिसका उद्देष्य नैतिक और रहस्यमय दर्शन की प्राप्ति करना है। सूफ़ियाना क़लाम में कथक समूह नृत्य की कुछ प्रस्तुतियों का उल्लेख इस प्रकार है :-

- ⇨ 'तेरे इश्क़ नचया करके थईया थईया' - रानी ख़ानुम द्वारा नृत्य-संरचना व आमोद डान्स सेंटर, दिल्ली द्वारा प्रस्तुति।
- ⇨ 'बिस्मिल्लाह' - किंकनी संस्कृत संस्था द्वारा प्रस्तुतिकरण।
- ⇨ 'सूफ़ी-कथक' - इंडियन रागा द्वारा प्रस्तुतिकरण व सोनाली लूम्बा द्वारा नृत्य-संरचना।

⇨ जहाँ-ए-खुसरो, जयपुर, आस्था दीक्षित व समूह द्वारा प्रस्तुतिकरण।

होरी, कजरी व चैती - ठुमरी, दादरा इत्यादि गेय विधाओं के अतिरिक्त कथक नृत्य में लोक-संगीत से उद्दीपित विविध गायन-शैलियों का भी अत्यधिक प्रयोग देखने योग्य है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के लखनऊ तथा बनारस क्षेत्र में अनगिनत ऋतुगीत व त्यौहार सम्बन्धी गीत प्रकार पल्लिवत हुए जिनमें चैती, फागुन, कजरी, होरी, सावनी आदि गायन-शैलियाँ उल्लेखनीय हैं। होरी गीतों का कथक समूह नृत्य में अधिक प्रयोग दृष्टिगत होता है। होरी का मूल विषय राधा-कृष्ण सम्बन्धी विविध स्वरूपों में ब्रज में होरी खेलने का विविरण किया जाता है जिसके अन्तर्गत राधा-कृष्ण छेड़छाड़, पिचकारी चलाना, एक दूसरे पर रंग लगाना इत्यादि। होरी के समान ही चैत मास में गायी जाने वाली 'चैती' एक प्रकार का वियोग श्रृंगारिक गीत है। यह ठुमरी के समान है तथा कहरवा ताल में चैती का गायन होता है। अन्य ऋतु गीतों में 'कजरी' वर्षा ऋतु में गायी जाती है तथा इसके काव्य में भी विरह भावों का दर्शन होता है।

वर्तमान में प्रस्तुत ऋतु गीतों पर अगणित कथक समूह नृत्यों का प्रस्तुतिकरण प्रचुर मात्रा में बढ़ गया है तथा नर्तकियाँ अत्यन्त खूबसूरती के साहचर्य से विभिन्न मुद्राओं व नृत्य-संरचनाओं का मंचीय प्रदर्शन करती हैं। होरी, चैती तथा कजरी में नृत्य की प्रस्तुतियाँ इस प्रकार हैं :-

⇨ 'होरी' कथक इनफ़ाइनाइट - गुरु शमा भाटे द्वारा नृत्य-संरचना व समूह द्वारा मंचीकरण।

⇨ 'होरी' - डॉ. रोहिनी भाटे द्वारा नृत्य-संरचना व आरोहिनी समूह द्वारा प्रस्तुतिकरण।

⇨ 'कजरी' - डॉ. रोहिनी भाटे द्वारा नृत्य संरचना व आरोहिनी समूह द्वारा प्रस्तुतिकरण।

⇨ 'चैती' - प्राजक्ता राज द्वारा नृत्य-संरचना।

भजन - भजन के अंतर्गत ईश्वर या किसी देवता के गुणों का वर्णन किया जाता है। वर्तमान में विभिन्न भजनों पर कथक समूह नृत्य प्रस्तुत किया जा रहा है, उदाहरणार्थ :-

⇨ 'नमामि भक्त वत्सलम कृपालु शिर को मलम' - राम भजन ऐश्वर्या श्रीवास्तव व समूह द्वारा प्रस्तुति।

⇨ 'वरन कछवी श्याम सुन्दर' - 'लेडीज़ ग्रुप ऑफ़ कथक' द्वारा प्रस्तुति।

⇨ 'वृन्दावन कुंज भवन नाचत गिरधारी' - 'आकृति कत्थक केन्द्र' द्वारा प्रस्तुतिकरण व मंगला और राघव राज भट द्वारा नृत्य संरचना।

कथक-बैले - कथक-बैले सदृश समूह शैली अपने आप में एक ऐसी रचनात्मकता का प्रस्फुटन है जिसमें द्विसांस्कृतिक मिश्रण, कथा-संयोजन व संचालन, राग-प्रधान सांगीतिक रचनाएँ, उत्कृष्ट अंग व पद-संचालन तथा सुरुचिपूर्ण श्रृंगार व वेशभूषा सम्मोहन की भाँति प्रभाव छोड़ती है। कथक-बैले में प्रस्तुत कुछ प्रस्तुतियाँ इस प्रकार हैं :-

⇨ 'ऋतु-चक्र' - कथक - बैले प्राजक्ता अत्रे द्वारा प्रस्तुति।

⇨ 'आज की द्रोपदी' - सुरभि सिंह द्वारा रचित प्रस्तुति।

⇨ 'गांधी द लिबरेटर' - धीरेन्द्र तिवारी समूह द्वारा प्रस्तुति।

त्रिवट - भारतीय गायन-शैलियों में त्रिवट एक प्रकार का निबद्ध गीत है जिसमें तीन अंगों पखावज के बोल, सरगम तथा कवित्त का मिश्रण होता है। इन तीनों अंगों के समावेश से बंदिश की रचना की जाती है जिसे नृत्यांगनाएँ पृथक-पृथक हस्तकों द्वारा नृत्य प्रदर्शित करती

हैं। कथक में नृत्य-पक्ष की शैली का विस्तार करने के लिए त्रिवट अत्यधिक उचित कृति है। नृत्य में आरम्भ से ही पखावज व तबले के बोलों को विभिन्न रागों के स्वर में निबद्ध कर प्रस्तुत किया जाता है। त्रिवट शैली में रचित कथक समूह नृत्य की प्रस्तुतियाँ इस प्रकार हैं:-

- ⇨ 'त्रिवट' - गुरु राजेन्द्र चतुर्वेदी द्वारा रचित प्रस्तुति।
- ⇨ 'त्रिवट' - अरूपा डान्स अकादमी द्वारा प्रस्तुति।

चतुरंग - चतुरंग अर्थात् चार अंगों का सम्मिश्रण जिसमें चार प्रकार के गीतों का सहगमन होता है जिसके संयोग से निर्मित बन्दिश को चतुरंग कहते हैं। ये चार अंग गीत के बोल, तराने के बोल, सरगम व पखावज के बोल हैं। चतुरंग के प्रथम भाग में गीत बंदिश की तरह गाया जाता है, उसके पश्चात् तराना, तदोपरान्त् सरगम तथा अंत पखावज व तबले के बोलों से किया जाता है। कथक समूह नृत्य में चतुरंग भाव तथा ताल दोनों पक्षों को उत्तम अवसर प्रदान करता है। चतुरंग शैली में प्रस्तुत कथक समूह नृत्य की प्रस्तुतियाँ इस प्रकार हैं :-

- ⇨ 'चतुरंग की चाल' - शमा भाटे व नाद रूप द्वारा प्रस्तुति।
- ⇨ 'चतुरंग' - मृत्यालय कथक द्वारा प्रस्तुति।
- ⇨ 'चतुरंग' - द्विपयन दास द्वारा रचित प्रस्तुति।
- ⇨ 'कथक चतुरंग' - म्अपद टवर द्वारा रचित प्रस्तुति।

तराना - ठुमरी, दादरा आदि गायन-शैलियों के समान ही तराना भी भारतीय संगीत की एक सुप्रसिद्ध व लोकप्रिय गायन-शैली है। तराने में मुख्यतः निरर्थक अथवा अर्थहीन शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे - ओदानी, तदानी, तदारे, दानी, दीम, देरे, ताना इत्यादि। कथक नृत्यकारों ने तराने में पखावज के बोलों के प्रयोग की दृष्टि से ही नृत्य करना प्रारम्भ किया जिसमें 'तक, थुन, किट, तक, धड़ान, धा तिरकिट तक इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता है। तराना में भावाभिव्यक्ति की शून्यता रहती है तथा लयकारी की प्रमुखता व पद-संचालन का लयात्मक प्रयोग होता है। आजकल तराना शैली कथक नृत्य में अत्यंत प्रचार में है तथा कथक कलाकारों द्वारा मंचित तराना शैली पर समूह नृत्य की प्रस्तुतियाँ कुछ इस प्रकार हैं :-

- ⇨ 'तराना' - शिवम आर्ट डान्स द्वारा प्रस्तुति।
- ⇨ 'तराना' - प्राजक्ता अत्रे द्वारा रचित एवं मंचीकरण।
- ⇨ 'तीनताल तराना' - सुजाता बैनर्जी डान्स सैन्टर द्वारा मंचीकरण।
- ⇨ 'तराना' - धीरेन्द्र तिवारी व शम्भू द्वारा मंचीकरण।

यूजन - यूजन शैली भारत के कई शास्त्रीय और लोक-नृत्यों की समृद्ध बनावट को जोड़ता है। इस क्षेत्र में असंख्य नवीन प्रयोग किये जा रहे हैं, जो इस प्रकार हैं -

- ⇨ Amaiza Indian Classical Dance Fusion - कथक-भरतनाट्यम-ओड़िसी नृत्यों की प्रस्तुति।
- ⇨ Shape Of You & कथक - यूजन, कथक रौकर्स द्वारा प्रस्तुति।
- ⇨ Collaboration with Chen Zimbalista and Jerusalem Symphony Orchestra presented in Israel 'Rhythm Vortex'

निष्कर्ष - उपरोक्त विवरण के आधार पर निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि कथक नृत्य भारतीय संगीत की एक प्राचीन एवं पारम्परिक नृत्य-शैली है। यद्यपि यह इसका प्रारंभिक रूप एकल व युगल प्रस्तुति का रहा है किन्तु आधुनिक काल तक आते-आते इसमें

सामूहिक नृत्य का भी समावेश हो गया। कथक नृत्य की सामूहिक शैली में बड़े-बड़े दिग्गज कलाकारों ने अद्‌भुत संरचना व मंचीय प्रस्तुति से अपना अतुलनीय योगदान दिया है। कथक समूह नृत्य वर्तमान में एक ऐसी नृत्य-विधा बन चुकी है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मंच-प्रदर्शन किये व सराहे जा रहे हैं।

कथक समूह-नृत्य में सुप्रसिद्ध पाश्चात्य नृत्य-शैली 'बैले' का भी सम्मिश्रण होने लगा है जिसकी वजह से इसके स्वरूप में नवीन आयाम जुड़ गये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कथक समूह नृत्य-शैली आधुनिक काल में राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है तथा इसकी संरचना व मंचीकरण में उच्च स्वर के कलाकारों के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

पुस्तकें :-

1. दाधीच, डॉ पुरू, (1981), कथक नृत्य शिक्षा - भाग 1 एवं 2 - बिन्दु प्रकाशन, इन्दौर।
2. गर्ग, लक्ष्मी नारायण (1981) कथक नृत्य, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. त्रिवेदी, डॉ आम्रपाली (2016), कथक नृत्य शैली में प्रयुक्त गायन की विभिन्न विधाएँ, अनुभव पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
4. टॉक, डॉ माया (2006), ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कथक नृत्य, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली

शोध-प्रबन्ध :-

नाम शीर्षक विश्वविद्यालय वर्ष

- माधुरी शर्मा—"कथक नृत्य पर पश्चिमी देशों की नृत्य शैलियों का प्रभाव"—वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, 2015

शोध-पत्र :-

- 'कथक नृत्य में सृजनात्मकता' - श्रीमती मिकी वर्मा; संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस - टवस 74. No. 7- 12 Aug. 2008
- 'भारत की शास्त्रीय एकल एवं समूह नृत्य परम्परा-एक विचार' - राजश्री शाह; संगीत कला विहार, महाराष्ट्र - Vol 64. No. 1- 6, March 2011

बनारस घराने के कीर्तिमान गायक पद्मभूषण स्वर्गीय पंडित राजन मिश्र जी की सांगीतिक जीवन यात्रा

ज्योति यादव

सारांश

काशी या बनारस सभी ललित कलाओं से परिपूर्ण एक सांस्कृतिक नगरी के रूप में संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। इस धरती पर अनेकों मनीषियों, योगियों, संगीतज्ञों, साहित्यकारों व विद्वतजनों का भरण पोषण होता रहा है। यहाँ पर अनेक ग्रंथों शास्त्रों व कलाओं की रचना व वृद्धि होती रही है। यहाँ की पावन भूमि पर धर्म, साहित्य, कला, संगीत कण-कण में विद्मान है। यहाँ का संगीत विश्व भर में अपनी एक अलग पहचान रखता है और जनमानस को ईश्वरत्व की अनुभूति कराता है, जिस कारण काशी का बनारस घराना संगीत जगत में अपनी एक अलग पहचान रखता है। बनारस घराने की प्रतिष्ठित विभूतियों में से एक पंडित बड़े रामदास मिश्र जी की गायन परंपरा से संबंधित उनके शिष्य पं. राजन मिश्र जी का नाम ख्याल गायन के क्षेत्र में बड़े ही आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने न केवल देश में अपितु विदेशों में भी बनारस घराने की गायन परंपरा का प्रचार प्रसार किया है उनके सांगीतिक योगदान के लिए उन्हें 'पद्मभूषण' जैसे सम्मान से सम्मानित किया गया है उन्होंने अपने संगीत से संगीत श्रोताओं को सदैव लाभान्वित किया है ऐसे कुशल कलाकार की सांगीतिक यात्रा के विषय में जानना व्यक्ति विशेष के लिए आवश्यक है।

मुख्य शब्द : *काशी, घराना, विशिष्टताएँ, गायनाचार्य, रचनाएँ, गायन परम्परा, सांगीतिक योगदान, संगीतज्ञ।*

400 वर्षों से चली आ रही बनारस घराने की संगीत परंपरा में संगीत की सभी विधाएं समाहित रही। गायन, वादन व नृत्य इन तीनों कलाओं में बनारस घराने के कलाकारों ने सदैव अपना संपूर्ण योगदान दिया और इस घराने को भी पोषित किया। बनारस घराने में तबला वादन, सितार वादन, सारंगी वादन, नृत्य एवं गायन परंपरा का विकास प्रायः होता चला आ रहा है। काशी में शास्त्रीय संगीत के गायन परंपरा के विषय में बात करें तो ऐसे कई विभूति हैं, जिन्होंने इस परंपरा को सदैव विकसित किया है, किंतु 16 वीं शताब्दी के प्रारंभ में राधा वल्लभ सम्प्रदाय के गायक पंडित दिलाराम मिश्र जी ने इसे एक अलग प्रतिष्ठा दिलाई। पं. दिला राम मिश्र जी स्वामी हरिदास जी के संगीत गुरु श्री 108 ललित हित हरिवंश स्वामी जी के शिष्य थे। इन्होंने ही बनारस में गायन घराने की नींव डाली थी और बनारस में पियरी समुदाय

शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(घराने) को प्रतिस्थापित किया था। इनके बाद पंडित चिंतामणि मिश्र, श्री जगमन मिश्र, श्री ठाकुर दयाल मिश्र, श्री प्रसिद्ध मनोहर मिश्र जैसे प्रकांड विद्वानों ने इनकी वंश परंपरा को आगे बढ़ाया।[1]

पियरी समुदाय के बाद बनारस में अन्य कई समुदाय बन गए जिसे कलाकारों ने अपनी अलग-अलग विशेषताओ और अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही वंश परंपरा के अनुसार बनाया, जिसके कारण बनारस घराने में कुल दस समुदाय गायन परम्परा के बन गए जो कि अलग अलग स्थानों पर स्थित है। जैसे - पियरी, रामापुरा, कबीरचौरा, तेलियाना, चेतगंज, शिवाला इत्यादि। इन समुदायों का नाम प्रायः इनके संस्थापक के नाम पर एवं स्थान के नाम पर रखा गया। जैसे-

1. पंडित दिलाराम मिश्र जी का समुदाय।
2. पंडित शिवदास प्रयाग मिश्र जी का समुदाय।
3. पंडित जगदीप मिश्र जी का समुदाय।
4. पंडित जयकरण मिश्र जी का समुदाय (पंडित बड़े रामदास मिश्र)।
5. पंडित दरगाही मिश्र जी का समुदाय।
6. पंडित मथुरादास जी का समुदाय।
7. तेलियाना समुदाय।
8. धन्नू जी सवरू जी का समुदाय।
9. ठाकुर प्रसाद मिश्र जी का समुदाय।
10. बख्तावर मिश्र जी का समुदाय।[2]

इन सभी समुदायो की कुछ अलग अलग विशेषताएं रही जैसे कहीं टप्पा अंग प्रधान रहा, कहीं ठुमरी, कहीं ध्रुपद धमार तो कहीं ख्याल गायन की प्रमुखता रही। इस तरह से इनका गायन, वादन एक दूसरे से भिन्न रहा और यह अलग-अलग समुदायों में बट कर ये अपना अलग-अलग घराना बसा चूके थे। जिस समय 'पंडित जयकरण मिश्र' जी के सुयोग्य शिष्य 'पंडित बड़े रामदास मिश्र' जी अपनी प्रस्तुतियां दे रहे थे, तब उनकी गायन परंपरा को सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित रह गए क्योंकि जिन विशिष्टताओं को लोगों ने अलग अलग समुदायो में बांट दिया था और उसे घराने का नाम दिया था, पंडित बड़े रामदास जी ने उसे एक साथ कर आत्मसात किया और उसकी एक अनूठी प्रस्तुति दी। ऐसी विलक्षण प्रतिभा को देखकर लोगों ने उनसे शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा जताई और अपने घरानों को भूल एकजुट होकर चारों पट की गायकी को सीखने के लिए तत्पर हो गए जिससे सभी घराने एक हो गए। ऐसे ही महान गायनाचार्य पंडित बड़े रामदास मिश्र जी की शिष्य परंपरा के अनेक सुप्रतिष्ठित शिष्यों में से पंडित राजन मिश्र जी की सांगीतिक यात्रा का विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

अपनी गायकी का लोहा मनवाने वाले बनारस घरानें के धुरंधर युगल गायको की जोड़ी में से एक पं. राजन साजन मिश्र जी की जोड़ी संगीत जगत में अत्यन्त लोकप्रिय रही। बनारस घराने के प्रतिनिधि गायक के रूप में अपनी गायन परंपरा को विश्व के कोने कोने तक पहुंचाने वाले जन मानस के हृदय को छूने वाले पद्मभूषण पंडित राजन मिश्र जी संगीत जगत के अनमोल रत्नों में से थे। न केवल भारतवर्ष में अपितु अनेकों विदेशी यात्रा के दौरान आपने बनारस घराने की ख्याल परंपरा को प्रसारित किया और संगीत जगत में अपना सांगीतिक योगदान दिया। अपनी वंश परंपरा के साथ साथ काशी के गौरव को भी आपने सुलभता से जन जन तक पहुंचाया और अपनी गायकी का परचम संपूर्ण संगीत जगत में फहराया।

पंडित राजन मिश्र जी ख्याल गायन के क्षेत्र में बनारस के सुविख्यात गायकों में से थे।

इनका जन्म पंडित बड़े रामदास मिश्र जी के सुयोग्य शिष्य पंडित हनुमान प्रसाद मिश्र जी के संगीत प्रतिष्ठित परिवार में 27 नवंबर 1951 को कबीर चौरा मोहल्ले में आपके निवास स्थान पर हुआ आपके पिता पंडित हनुमान प्रसाद मिश्र जी उच्च कोटि के सारंगी वादक व विद्वान थे।[3] आप की वंश परंपरा में सारंगी वादन हमेशा से चला आया था जिसमे पंडित रामबक्श जी, श्री गणेश मिश्र जी, उसके पश्चात उनके पुत्र पंडित सुरसहाय मिश्र जी एवं उनके दो पुत्र पंडित हनुमान मिश्र जी और पंडित गोपाल मिश्र जी हुए, और इसके पश्चात् पंडित हनुमान मिस्र जी के दो पुत्र पंडित राजन मिश्र (ज्येष्ठ) एवं साजन मिश्र (कनिष्ठ) हुए। जैसे कि आप की वंश परंपरा सारंगी वादन की रही किंतु आपका मन बचपन से ही गायन के क्षेत्र में लगा रहा। गायन के प्रति आपका रुझान देखकर आपके पिता पंडित हनुमान मिश्र जी ने आपको संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा दी। गायन के प्रति आपके रुझान को देखते हुए आपके पिता जी ने यह निश्चय किया की वह अपने पुत्रों को अपने गुरु पंडित बड़े रामदास मिश्र जी के पास उनका आशीर्वाद दिलाने व उनसे संगीत शिक्षा दिलाने ले जाएंगे। पंडित हनुमान प्रसाद मिश्र जी जब अपने गुरु के समक्ष गए तब उन्होंने अपने पुत्रों को उनके सांनिध्य में संगीत शिक्षा प्रदान कराने हेतु निवेदन किया। हालांकि पंडित बड़े रामदास जी उस समय वृद्ध हो चूके थे किंतु फिर भी उन्होंने उन बालकों को गंडा बांधकर अपना शिष्य स्वीकार किया और उन्हें संगीत की शिक्षा प्रदान करनी आरंभ कर दी। 10 से 11 वर्ष की अल्पायु में ही आपके पिता आपको मंदिरों में गायन की प्रस्तुति हेतु ले जाया करते थे, और साथ ही साथ बड़े बड़े संगीत कार्यक्रम में भी विद्वतजनों को सुनने हेतु ले जाते थे।

राजन मिश्र जी प्रतिदिन नियमित रूप से संगीत की साधना किया करते थे, किंतु आपके गुरु पंडित बड़े रामदास जी कि वृद्धावस्था में आपका संगीत शिक्षण आरंभ हुआ था इसलिए ज्यादा समय के लिए आपको उनका मार्गदर्शन प्राप्त नहीं हो सका। गुरु की मृत्यु के पश्चात आपने अपने पिता पंडित हनुमान मिश्र और अपने चाचा पंडित गोपाल मिश्र जी से संगीत के आगे की शिक्षा प्राप्त की। न केवल सांगीतिक शिक्षण अपितु विद्यालयी शिक्षण में भी आपने 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' से समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की थी। राजन मिश्र जी सदैव अपने अनुज के साथ बैठ कर घंटों संगीत साधना किया करते थे और जब कभी भी संगीत समारोह में आपकी प्रस्तुति होती थी तो आप युगल प्रस्तुति ही देते थे। बनारस घराने मे युगल गायन परम्परा भी काफी पहले से प्रचलन में रही है। जिस प्रकार से बनारस घराने के मिश्र बंधुओं की जोड़ी जैसे प्रसिद्ध-मनोहर जी की जोड़ी, शिवा-पशुपति की जोड़ी रामकृष्ण-भवानी सेवक मिश्र की जोड़ी, अमरनाथ और पशुपतिनाथ मिश्र जी की जोड़ी संगीत प्रेमियों के मन मस्तिष्क में बसी थी, वैसी ही युगल गायको की जोड़ी आप दोनों भाइयो ने भी बनाई और जगह जगह पर अनेकों संगीत प्रस्तुतियां भी दीं धीरे धीरे आप दोनों की जोड़ी युगल गए के रूप में मशहूर होने लगी। उसके बाद आपने अपने चाचाजी से संगीत की शिक्षा प्राप्त की किंतु बनारस घराने की प्रतिष्ठित ठुमरी गायिका विदुषी श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी जी के प्रिय सारंगी संगतकार होने के कारण जब सिद्धेश्वरी देवी जी अरे दिल्ली में ठुमरी सिखाने हेतु एक विद्यालय में गई तब उन्होंने आपके चाचा गोपाल मिश्र जी को दिल्ली बुला लिया। आपके एकमात्र गुरु

होने के कारण अब आपकी संगीत शिक्षा में अवरोध उत्पन्न होने लगा इसलिए अपने चाचा जी से आज्ञा प्राप्त कर पंडित राजन मिश्र जी अपने भाई के साथ दिल्ली जा बसे और वहीं पर अपने चाचा जी के सांनिध्य में संगीत की शिक्षा को निरंतर विकसित करते रहें।[4] धीरे धीरे वहाँ के अनेकों कार्यक्रम में आप युगल युगल प्रस्तुतियां देने लगे और जन मानस को आपकी गायकी भाने लगी जिस कारण आप लोगों के बीच प्रतिष्ठित होने लगे।

पंडित राजन मिश्र जी लंबे कद के गोरे व सुडौल शरीर के व्यक्ति थे आपके मुख पर सदैव एक विशेष कांति झलकती रहती थी। आप अत्यंत ही मृदुभाषी, निराभिमानी, उदार, हँसमुख व विनम्र स्वभाव के थे। सदैव सबके साथ मित्रवत व्यवहार रखते थे। वो छोटों के साथ स्नेह रखने वाले अपने प्रियजनों में अत्यंत आर्दश व अपने भाई के प्रति गुरुतुल्य थे। राजन मिश्र जी के साथ घंटों रियाज करके आपके भाई ने आप से बहुत कुछ सीखा। पंडित राजन मिश्र जी सदैव अपने गुरु पंडित बड़े रामदास मिश्र जी द्वारा रचित रचनाओं को गाया करते थे, और उसे प्रसारित करते थे। अपनी गुरुभक्ति के उदाहरण स्वरूप आपने कुछ ऐसी ही रचना है कि जिसमें अपने गुरु का नाम रखकर आपने उन्हें उन रचनाओं को समर्पित कर दिया। इसके अतिरिक्त भी आपने अनेक रचनाएँ की।

आपके गायन के विषय में अगर बात करे तो आप खुले कंठ व सुमधुर आवाज के धनी, लय ताल के ज्ञाता, कुशल रचनाकार, संगीत शास्त्र में पारंगत, थे। आपकी गायकी ध्रुपद धमार अंग की भांति गमक व लयकारी युक्त, ख़्याल अंग की भांति राँगोचित आलाप व क्लिष्ट तानों से युक्त तथा ठुमरी की भाँति शब्दोचित बोलबनाव से रागों का विस्तार करते हुए बनारस घरानें की चारों पट की गायकी को पारदर्शित करता था।[5] आप गमक की तान, जबड़े की तान, सरगम तान मेरु खंड की तान व लयकारी युक्त तानों का प्रयोग रागो के अनुकूल किया करते थे। बंदिशों को कहने व सजाने का आपका अंदाज अद्वितीय था। आपकी इसी अद्‌भुत प्रस्तुति से प्रसन्न होकर अन्य कई घरानों के गायकों व गुरुजनों ने अपने घराने की कई रचनाएँ आपको इसलिए सौंप दी क्योंकि उन्हें लगा की आप उन बन्दिशों के शब्दो के साथ उचित न्याय कर पाएंगे। पं. राजन मिश्र जी जैसा अन्य कलाकार संगीत जगत में देखने को मिलना असंभव है। बादल के गरजने पर पंडित राजन मिश्र जी के कंठ से गमक युक्त गर्जन जैसी आवाज प्रस्फुटित होती थी। मनमोहक प्रस्तुति, सुंदर आभा और बंदिश के बोलों के अर्थ अनुसार भाव, बोलबनाव युक्त गायकी, लय पर समान अधिकार आपको अन्य कलाकारों से भिन्न करता था। आपने अनेकों बन्दिशों की रचना की जोकि आपकी सांगीतिक विद्वता को प्रदर्शित करती थी। जैसे प्रातः कालीन राग भटियार में आपकी एक रचना है :

स्थाई : *''आयो प्रभात सब मिल गावो,*
गावों बजाओ हरि को रिझावो।
अन्तरा : *पंछी पखेरूआ करत किलोरी,*
डरियन डरियन डरियन पर,
रामदास निरखत बगिया,
अतहि सुख पायो सब मिल
गाओ''।।6

यह रचना पंडित राजन मिश्र जी ने अपने गुरु के नाम पर की है। प्रातः कालीन राग भटियार में तीनताल में इस रचना को निबद्ध करके राजन मिश्र जी ने चलचित्र जगत के एक शास्त्रीय संगीत की फिल्म 'सुर संगम' में

इसके स्थाई को गाया है।

चलचित्र जगत के बुद्धिजीवी, संगीत प्रेमी, दक्षिण भारत के ख्याति प्राप्त निर्माता के. विश्वनाथ जी के कानों में जब पंडित राजन मिश्र जी के युगल गायन कि यश कीर्ति पहुंची तो उन्होंने दक्षिण भारतीय भाषा में निर्मित मूल चित्र 'शंकराभरणम' को हिंदी भाषा में 'सुर संगम' के नाम से बनाने का निश्चय किया और चित्र के मुख्यपात्र पुरुष कंठ के पार्श्व गायन के लिए विश्वनाथ जी ने पंडित राजन साजन मिश्र जी का चयन किया। इस चित्र मे लक्ष्मीकांत प्यारेलाल जी ने संगीत दिया।[7] भटियार राग की बंदिश के अतिरिक्त और भी कई भजन व गीत इस चित्र में पंडित राजन मिश्र जी द्वारा गाए गए हैं जिसे उन्होंने फिल्म के अतिरिक्त मंच पर भी प्रस्तुत किया और श्रोताओं के मन को संगीत के अथाह सागर में डूबने पर विवश किया।

सुर संगम के अन्य गीतों में राग भैरवी में निबद्ध एक रचना जो राजन मिश्र जी को अत्यधिक प्रिय थी वो है :

''धन्य भाग सेवा का अवसर पाया
चरण कमल की धूल बना मैं
मोक्ष द्वार तक आया''।।

इसके अतिरिक्त

''साध रे मन सुर को साध रे।
तान है सूरज किरण, आलाप नीलम का गगन,
अब मुझे अंकुर धारा पर, बांध ऐसा राग रे।।''

ऐसे कई गीत गाए है। इसके अतिरिक्त उनके स्वयं के रचनाओं में राग बैरागी में निबंध या एक रचना है–

स्थाई- ''माँ शारदे जगत जननी,
सूरन की कृपा मोपे यश दे वर दे।
अन्तरा- निशिदिन ध्यान धरत हूँ,
नादब्रह्म से झोली मेरी भर दें''।।

तथा

स्थाई- शिव शंकर शंभू भोलेनाथ,
कामेश्वरनाथ विश्वनाथ।
अन्तरा- कालेश्वर, विश्वेश्वर मणिमहेश्वर
त्रिपुरारी,
अंग भभूत रमाए,
गले रूण्ड माल सोहे।।8

इन दोनों ही रचनाओं में पंडित राजन मिश्र जी ने ईश्वर की स्तुति करते हुए उनकी महिमा का बखान किया है और उनसे अपने लिए स्वरों का वरदान मांगा है। इन रचनाओं को देखने के बाद हम यह कह सकते हैं कि अपने गुरु गायनाचार्य पंडित बड़े रामदास मिश्र जी की भाँति ही पंडित राजन मिश्र जी की रचनाएं भी भक्तिपरक व ईश्वर को प्रसन्न करने वाली होती थी। इन सभी रचनाओं में इनके साहित्य के अनुसार ही भावो, रसों, तालों व स्वरों का उपयोग किया गया है।

पं. राजन मिश्र जी ने अनेक प्रतिष्ठित संगीत समारोहो, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अपनी अनेकानेक प्रस्तुतियां दी है। सर्वप्रथम 1949 ईस्वी में राजन मिश्र जी ने बनारस के संकट मोचन हनुमान मंदिर के संगीत समारोह में अपनी प्रथम प्रस्तुति दी थी। समारोह के अंतिम दिवस के दिन पंडित रविशंकर मिश्र जी का जन्म दिवस था, और वे उसी मंदिर में दर्शन हेतु प्रस्तुत हुए थे, जब उन्होंने राजन साजन मिश्र जी का युगल गायन सुना तो वे वहीं बैठ गए और उन्हें उनकी प्रस्तुति अत्यधिक प्रभावशाली लगी उसके बाद उन्होंने अनेकों कार्यक्रमो में राजन मिश्र जी की युगल गायन की प्रस्तुतियो के लिए मंच दिलाना आरंभ कर दिए और इस तरह से पं. राजन जी के कार्यक्रम का सिलसिला

लगातार बढ़ता ही गया। आकाशवाणी दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में आपने अपने अनुज के साथ कई अविस्मरणीय प्रस्तुतियां देकर अपनी वंश परंपरा के गौरव को चरमोत्कर्ष तक पहुंचाया। आपने भारत भवन भोपाल के अड़तीसवें (38) स्थापना दिवस पर वहाँ के सांगीतिक समारोह में 13 फरवरी 2020 अपनी प्रस्तुति दी थी। उदयपुर में महाराजा राणा कुम्भा संगीत समारोह, सप्तक, संकट मोचन संगीत समारोह, संगीत नाटक अकादमी द्वारा आयोजित किए गए संगीत समारोह, सवाई गंधर्व महोत्सव, भीमसेन जोशी महोत्सव, जैसे अनेकों प्रतिष्ठित मंचों पर आपने अपनी युगल गायन की प्रस्तुतियां दी। अनेक कार्यशालाओ, व संगीत संगोष्ठियों में भी सांगीतिक योगदान दिया। जिसका लाभ युवाओं छात्रों व संगीत रसिको ने उठाया।[9]

गायन के दौरान आपका आपके अनुज के साथ जो आपसी समझ होता था वह अत्यंत ही रोचक था। आपके अनुज पंडित साजन मिश्र जी का कहना था कि कभी भी आप मंच प्रस्तुति के दौरान यह तय करके नहीं बैठते थे कि क्या गाना है। राजन जी को अपने अनुज पर विश्वास था कि वे उनके साथ अपना पूरा सहयोग दे पाएंगे और वे कहते थे कि साजन तुम पुकार लगाना और समां बांध देना। राजन मिश्रा जी अपने अनुज से अत्यंत प्रेम करते थे, जो कि आपके प्रदर्शन में भी सदैव दिखाई पड़ता था। आप दोनों का आपसी तालमेल, संतुलन व सहयोग श्रोताओं पर भी अपना विशेष प्रभाव डालता था। पंडित राजन मिश्र जी ने मंच पर कभी भी ठुमरी की प्रस्तुति नहीं दी इसका एक कारण यह था कि बनारस घराने के कलाकारों के प्रति श्रोताओं के मन में यह धारणा बन गई थी कि बनारस के लोग केवल ठुमरी, दादरा के लिए ही विख्यात है, किंतु अपने गुरुजनों से ग्रहण की गयी ख्याल शैली को वर्षों तक सीखने के बाद और उन्हें जानने के बाद की उनकी गायकी कितनी अमीर है और लोगों पर इसका क्या गलत प्रभाव पड़ा है इस धारणा को दूर करने के लिए उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं मंच पर कभी भी ठुमरी, दादरा की प्रस्तुति नहीं दूंगा, सदैव ख्याल को ही सर्वोच्च रखूँगा। पंडित राजन मिश्र जी ने ख्याल, टप्पा एवं भजन की अनेको लुभावनी प्रस्तुतियां देकर श्रोताओं को घंटों तक संगीत के रसमाधुर्य का रसास्वादन कराते हुए अपने विलक्षण, विवेकपूर्ण, बुद्धिमत्ता व मंच चतुरता के गुणों से सदैव अवगत कराया है।

पंडित राजन मिश्र जी को भारत में हर जगह पर संगीत प्रस्तुति देने का सुअवसर सदैव प्राप्त हुआ जिस कारण उनके कुशल गायन की कीर्ति विदेशों में भी फैलने लगी और उन्हें अपने देश से बाहर कई विदेशी मंचों पर अपने संगीत प्रस्तुति देने का अवसर प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम 1778 ईस्वी में आपने विदेश में अपना प्रथम कार्यक्रम श्रीलंका में दिया था, जिससे आपकी लोकप्रियता में काफी वृद्धि हुई थी। उसके बाद आपने कई अन्य देशों जैसे- नेपाल, अमेरिका, रूस, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, यू.के., स्विट्जरलैंड, नीदरलैंड मैं आयोजित अनेकों कार्यक्रम में अपनी सफल युगल गायन की प्रस्तुतियां दी।[10] अगर देखा जाए तो सबसे अधिक विदेशी कार्यक्रम पंडित राजन मिश्र जी ने अमेरिका में की जिसकी संख्या लगभग 23 थी। पंडित राजन मिश्र जी का सबसे अधिक लोकप्रिय कार्यक्रम 'भैरव से भैरवी तक' नाम का 'एक दिवसीय कार्यक्रम' रहा जिसमें प्रातः काल के राग भैरव से कार्यक्रम का आरंभ होता था और रात्रि काल के अंतिम प्रहर के रागों के पश्चात् राग भैरवी से इसका समापन होता था। इस कार्यक्रम को पंडित राजन

मिश्र जी ने अनेकों जगहों पर विदेशों मे भी प्रस्तुत किया था। जिसकी लोकप्रियता सर्वाधिक रही।

राजन मिश्र जी ने कई अलग अलग प्रकार के साक्षात्कारों के माध्यम से भी बनारस घराने के विषय में और उसकी गायन परंपरा के विषय में कई सारी महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है। उनके कई साक्षात्कार में उन्होंने अपने गुरु के बन्दिशों पर भी चर्चा की है, और बनारस घराने के गुणीजनों के भी विषय में चर्चा की है जोकि अत्यधिक रोचक व ज्ञानवर्धक है।

पंडित राजन मिश्र जी के सांगीतिक योगदान को देखते हुए उन्हें भारत सरकार द्वारा अनेकों पुरस्कारों व उपाधियों से अलंकृत किया गया। जिनमे संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, गन्धर्व राष्ट्रीय पुरस्कार व साथ ही साथ 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' से 'डॉक्टरेट' की उपाधि जैसे सम्मान प्राप्त हुए। सन् 1971 ईसवी में प्रधानमंत्री जी द्वारा 'संस्कृत अवॉर्ड', 1994 से 95 ईस्वी में 'गंधर्व सम्मान' से भी आपको सम्मानित किया गया। इसके पश्चात् सन् 2007 को 'भारत सरकार' द्वारा कला के क्षेत्र में आपके अद्वितीय कार्य को देखते हुए आपको 'पद्मभूषण' के सम्मान से नवाजा गया।[11]

पंडित राजन मिश्र जी की लगभग 20 से अधिक मात्रा में 'म्यूजिक ऐल्बम्स' संगीत प्रेमियों के लिए उपलब्ध हैं। 'यू ट्यूब' के कई चैनल पर आपके अनेको सांगीतिक कार्यक्रम के वीडियो क्लिप्स उपलब्ध है, जिसे सुनकर छात्रों में गायकी की समझ आप जैसा गाने का उत्साह निरंतर प्रवाहित होता रहता है और संगीत प्रेमियो को घर बैठे किसी भी समय अपने इच्छानुसार रागों का रसास्वादन करने का अवसर मिल जाता है। अपनी वंश परंपरा का आजीवन निर्वाह करने हेतु आपने 'देहरादून' में एक 'गुरुकुल' की भी स्थापना की थी जिसका नाम 'विराम' हैं।[12] इस गुरुकुल को खोलने के पीछे आपका उद्देश्य यह था कि आजकल की जो युवा पीढ़ी है वह गायन में केवल तानों को साधने में ही अपना पूरा ध्यान देती हैं जब की गायन में तान की प्रधानता इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि रागों का स्वरूप व शब्दों का सौन्दर्य। इसीलिए उन्होने गुरूकुल खोला ताकि विद्यार्थियो को संगीत की सम्पूर्णता से अवगत कराया जा सके।

पं. राजन मिश्र जी ने एक संस्था भी खोली जो कि श्रसिपाश् अर्थात 'राजन साजन परिवार' के नाम से जानी जाती है और भी एक संस्था आपके पिता पं. हनुमान मिश्र जी द्वारा खोली गयी थी जिसका नाम 'गृतिमा' था। संगीत के प्रचार प्रसार हेतु इन संस्थाओं का निर्माण किया गया था।[13] जो आज भी अपने उद्देश्य को पूर्ण करती आ रही है। पं. राजन मिश्र जी संगीत प्रेमियों को संगीत की शिक्षा देते और पंडित बड़े रामदास जी के शिक्षा और रचनाओं का प्रचार प्रसार करते थे, जिससे बनारस घराने की वंश परंपरा सदैव जीवंत बनी रहे।

पंडित राजन मिश्र जी को पहलवानी व क्रिकेट का बहुत शौक था। अपने युवाकाल में वे अक्सर कसरत करने जाया करते थे और उन्होंने राष्ट्रीय स्तर तक क्रिकेट भी खेला है। पहलवानी और क्रिकेट के अतिरिक्त उन्हें घूमना अत्यधिक प्रिय था। प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य रहना उन्हें अत्यधिक सुख प्रदान करता था। ऊँचे पर्वत, झरने, नदियाँ, जीव-जंतु इत्यादि से उन्हें बड़ा लगाव था इसलिए वे अक्सर घूमने फिरने के लिए प्राकृतिक जगहों पर ही जाना पसंद करते थे।[14]

सांगीतिक जीवन के साथ साथ आपका वैवाहिक जीवन भी अत्यंत सुखमय रहा। आपकी

पत्नी बनारस घराने के पंडित दामोदर मिश्र जी की सुपुत्री श्रीमती बीना देवी जी है और आपके दो पुत्र रितेश और रजनीश मिश्र जी और एक सुपुत्री अंजू जी हैं। इन्होंने अपनी संगीत की शिक्षा बाल्यकाल से ही अपने पिता राजन मिश्र व चाचा साजन मिश्र जी के मार्ग निर्देशन में आरंभ कर दी। वर्तमान समय में रितेश व रजनीश मिश्र जी भी अपने पिता व चाचा की तरह युगल गायन की प्रस्तुति दे रहे है और अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिए प्रयासरत है।

पंडित राजन मिश्र जी ने अपने संपूर्ण जीवन में केवल संगीत की साधना की और उसे जन जन तक सुलभता से प्राप्त कराया। उनके द्वारा गाए गए अनेकों भजन है, जोकि जनमानस के जुबां पर रटे हुए हैं और यू ट्यूब चौनल पर आसानी से उपलब्ध है। आपके गाये गए भजनों में—

''चलो मन वृन्दावन की ओर,
प्रेम का रस जहाँ छलके है,
कृष्ण नाम से भोर''।

'विनय पत्रिका' में 'गोस्वामी तुलसीदास जी' की एक रचना उनके प्रिय भजनों मे से एक है जिसमें श्री राम के वन जाने के बाद भरत अपनी माँ से अपनी व्यथा कहते है-

''हे जननी मै ना जिऊ बिन राम,
राम लखन सिय बन को गवन किन्हो,
पिता गये सूर धाम।''

इसके अतिरिक्त

''अब कृपा करो श्री राम, राम दुःख तारो,
इस भव बंधन के दुःख से हमे उबारो।''[15]

ऐसे अनेकों भजन है जिसके प्रस्तुति से आपने श्रोताओ को भाव विभोर किया है।

इसी प्रकार की अनेकानेक मनमोहक, ज्ञानवर्धक व रोचक प्रस्तुतियों को देकर आपने अपना सांगीतिक सहयोग संपूर्ण संगीत जगत को दिया, परन्तु 2020 में भारत में फैली एक जानलेवा महामारी ने संगीत जगत को कई आघात पहुंचाएँ जिसके चलते कई विद्वान कलाकारों को संगीत जगत ने खो दिया, उन्हीं में से एक विद्वान संगीतज्ञ पंडित राजन मिश्र जी भी थे। 25 अप्रैल 2021 को कोविड-19 के प्रकोप का भाजन पंडित राजन मिश्र जी को भी बनना पड़ा। आपको हृदयघात संबंधी समस्या के चलते दिल्ली के अस्पताल सेंट स्टीफंस में ले जाया गया, परन्तु महामारी का प्रकोप उस समय इतना अधिक था कि अस्पतालों के चक्कर काटने पर भी आपको वेंटिलेटर की सुविधा उपलब्ध न हो सकी। कोविड के चलते फेफड़ों में जकड़न इतनी थी कि स्वास लेना अत्यधिक दूभर हो गया था जिस कारण हृदय गति अवरूद्ध होने लगी और आपको दूसरी बार हृदयाघात हुआ, और आप अपने परिजनों, संगीत प्रेमियों को रोता हुआ छोड़ कर इस मायारूपी संसार से सदैव के लिये अलविदा कहकर चले गये। साजन मिश्र जी ने अपने एक प्रेस साक्षात्कार में बताया कि जब राजन मिश्र जी के फेफड़ों में जकड़न हुई तो वह गाने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए उन्हें अपने पास बुलाकर अपना प्रिय भजन 'हे गोविंद, हे गोपाल, राखो शरण अब तो जीवन हारे' गाने के लिए कहने लगे। साजन जी ने उनके इस निवेदन को स्वीकार करते हुए उन्हें भी अपने साथ गुनगुनाने के लिए कहा तब दोनों भाइयों ने मिलकर अंतिम बार साथ में मिलकर इस भजन हो गाया, किन्तु फेफड़ों में जकड़न के कारण राजन मिश्र जी गा न सके यह देखकर साजन मिश्र जी अत्यधिक भाव विभोर हो गए परंतु परिजनों की आस न टूटे इसलिए उन्होंने अपने आपको सम्भाला, किंतु जब अस्पताल से खबर आई कि अब राजन मिश्र जी नहीं रहे, तब साजन मिश्र जी का

ढांढस टूट गया और वे फफक कर रोने लगे और बोले कि 'अब तो सच में जीवन हारे' इस मार्मिक दृश्य को देखकर सभी परिजन स्वयं को रोकने में असमर्थ रहे और उन सभी की आँखों से अश्रुओं की झड़ी फूट पडी। 16 इस हृदय विदारक दुर्घटना के बाद दोनों भाइयों की युगल जोड़ी बिखर गई इस जोड़ी के टूटने से संगीत जगत को असहनीय पीड़ा वह क्षति पहुंची है, जिसकी भरपायी असम्भव है, क्योंकि पंडित बड़े रामदास मिश्र जी की शिष्य परंपरा में पंडित राजन साजन मिश्र जी की जोड़ी ही उनके गंडा बंधन शिष्यों में से अंतिम सुविख्यात जोड़ी थी, जिन्हें पंडित बड़े रामदास मिश्र जी की कृपा प्रसाद स्वरूप मिली थी। इसके बाद अब वह कड़ी भी धीरे धीरे समाप्ति की ओर अग्रसर हो चला है। पंडित साजन मिश्र जी अपने पुत्र स्वरांश मिश्र के साथ संगीत सेवा में अभी भी कार्यरत हैं और पंडित राजन मिश्र जी के दोनों पुत्र रितेश व रजनीश भी युगल गायक के रूप में अपने पिता की छवि को उनकी शिक्षा को जीवित रखने हेतु प्रयत्नशील है। उनके दोनों पुत्रों का प्रयास है कि जो कड़ी बनारस घराने को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पंडित राजन मिश्र जी ने बनाई थी वह आजीवन बिना टूटे वैसे ही चलती रहे। पंडित राजन साजन मिश्र जी के युगल गायन की अगर बात करें तो प्रतीत होगा कि वे दो आवाज जरूर थे किंतु उनकी आत्मा पूर्णतया एक ही थी।

'पद्मभूषण' राजन मिश्र जी के सांगीतिक योगदान को संपूर्ण विश्व, संगीत जगत व संगीत प्रेमी सदैव अपने हृदय में संजोये रखेगा। उनके ना होने पर भी उनकी आवज का जादू उनके संगीत की ताशीर हमेशा लोगो के मानस पटल पर अपनी एक अमिट छाप रखे रहेगा। पं. राजन मिश्र जी जैसा विद्वान संगीतज्ञ न हुआ है न हो पायेगा। संगीत जगत सदैव उन्हें स्मरण करता रहेगा।

निष्कर्ष

पं. राजन मिश्र जी का सांगीतिक व्यक्तित्व विविध गुणों से परिपूर्ण था। आपका नाम आज उत्कृष्ट कलाकारो में बडे ही आदर व सम्मान के आता है।

शास्त्रीय संगीत से उनका आत्मिक जुडाव बाल्यकाल से ही रहा और उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत की साधना में समर्पित कर दिया। उनकी आवाज दमदार गायकी व मनमोहक प्रस्तुतियों से ईश्वरत्व झलकता था। उनका गायन आज के युवा वर्ग के लिए एक उदाहरण है। उनकी सांगीतिक यात्रा और जीवन वृत्तान्त से अगर युवा वर्ग प्रेरणा ले तो उनका भविष्य अवश्य ही उज्वल होगा। राजन जी का सांगीतिक योगदान संगीत जगत के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण था और संगीत जगत सदैव उन्हें उनके कार्यों के लिए स्मरण करता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूचीरू.

- मिश्र, कामेश्वर नाथ, पृष्ठ संख्या. 128.129, काशी की संगीत परंपरा यसंगीत जगत को काशी का योगदानद्ध, भारत बुक सेंटर, लखनऊ।
- जौहरी, डॉ रेणु, पृष्ठ संख्या 69-70, भारतीय संगीत जगत में वाराणसी का योगदान, क्लासिकल पब्लिसिंग कंपनी, नई दिल्ली।
- गर्ग, डॉ. लक्ष्मी नारायण, पृष्ठ संख्या-1005, भारत के संगीतकार, संगीत कार्यालय, हाथरस।
- विकिपीडिया साइट।
- गूगल साइट।
- यू ट्यूब चौनल।
- साक्षात्कार।

सूफी संगीत में आध्यात्म एवं सूफी संत कलाकार

डॉ. आकांक्षा पाल

सारांश

सूफी सन्त कलाकारों ने अपने आदर्शों, सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार हेतु संगीत जैसी ललित कला को अपना माध्यम बनाया क्योंकि संगीत ही मात्र एक ऐसा साधन है जो परस्पर किसी समुदाय को निकट लाने व प्रेम सौहार्द की भावना को एक दूसरे से बांधे रख सकता है। इसी कारण सूफी संत कलाकारों ने तत्कालीन संगीत के कई तत्त्वों को आत्मसात् करके एक नवीन 'सूफ़ीयाना संगीत' का आविर्भाव किया। इन सूफियों के द्वारा प्रयुक्त संगीत को 'समा'' कहा गया जिसका अर्थ है-पढ़ना। इनका मत था कि जब ये समा करते तो सामूहिक रूप से ईश्वर के नामों का जाप किया करते थे तो उससे उन्हें एक प्रकार के आनन्द की अनुभूति हुआ करती थी और इसी आनन्द की पराकाष्ठा पर पहुँचकर परमात्मा को प्राप्त कर लिया करते थे।

अतः इन्हीं विचारों के साथ मेरे इस शोध प्रपत्र का पल्लवन हुआ है जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन मेरे मुख्य शोध प्रपत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

बीज शब्द- *सूफी संगीत, आध्यात्म, सूफी संत कलाकार, परमात्मा, आनन्दानुभूति, परम्परा।*

संगीत किसी भी देश सम्प्रदाय विशेष का चाहे क्यों न हो उसका एकमात्र उद्देश्य आत्मा का आनन्द मात्र ही होता है। यह आनन्द लौकिक से पारलौकिक में परिणत हो जाता है। संगीत जैसी ललित कला को आत्मदर्शन के सर्वोत्तम साधन को संसार के हर प्रकार के धर्मो ने स्वीकार किया है। इस संसार के अनेको सूफी, संत-कलाकारों ने संगीत के माध्यम से भक्ति रस का पान किया है इसके साथ ही साथ परमात्मा को भी प्राप्त किया है।

सूफी संगीत को रूहानी संगीत कहा गया है जिसमें, ईश्वरीय अनुराग एवं रहस्यवादी रूप को, विम्बों की भरमार तथा गुरू के प्रति शिक्षार्थियों का गहरा प्रेम होता है। इसके माध्यम से खुदा की इबादत की जाती है, जो सूफियों की भक्तिभावना का द्योतक होता है।

सूफी मत के स्वरूप के विषय में ऐसा कहा जाता है कि-'Tasawwuf said Juuaya, is this that God should make the die from theyself and should make the live in him.'1

सूफी शब्द अरबी के सफा से आया है जिसका अर्थ है-पवित्रता। सूफी शब्द की उत्पत्ति कब और कहां से हुई इस पर विभिन्न विद्वानों में मतभेद है, कुछ का मानना है कि यह शब्द यूनानी भाषा के 'सोफिस्ट' से बना है तो कुछ इसको तसव्वुफ से जोड़ते है जिसका विशुद्ध आध्यात्मिक आशय है-अपने प्रिय के प्रति निःस्वार्थ समर्पण। यह प्रिय सांसारिक नहीं वरन् वह ईश्वर है जो चराचर का स्वामी है। यह इस्लाम का एक रहस्यवादी पंथ है एवं इसी के

अतिथि प्रवक्ता (गायन), संगीत विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कालेज, प्रयागराज, मो.-8795668325, म्उंपस रू ंदींचंस01/हउंपसण्बवउ

अनुयायी सूफी संत हुआ करते है।

भारत में निजामुद्दीन औलिया ने ईश्वर भक्ति के दो रूपों का उल्लेख किया है-एक लाजमी तो दूसरा मुताह्रि। इसमें लाजमी के अन्तर्गत खुदा की इबादत उपवास एवं हज आदि को शामिल किया गया है तो वहीं मुलाह्रि के तहत दीन दुखियों की सेवा को सम्मिलित किया गया है। जिस प्रकार मध्यकाल में हिन्दुओं में भक्ति आन्दोलन प्रारम्भ हुए उसी प्रकार इस्लाम में प्रेम, अहिंसा, गुरू प्रेम, भक्ति भावना की प्रबलता के आधार पर सूफीवाद का जन्म हुआ।

सूफी शब्द का उद्भव तीन शब्दों से माना गया है-

सफा अर्थात् पवित्र
सूफ अर्थात् ऊन
सोफिया अर्थात् ज्ञान

कुछ विद्वतजनो का ऐसा मत है जो संत ऊनी वस्त्र धारण करके अपने मत का प्रचार किया करते थे वे ही सूफी कहलाते थे। परन्तु सूफी वे नहीं है जो मात्र ऊनी वस्त्र धारण करके अपने-अपने मतों का प्रचार-प्रसार किया करते थे अपितु वे सूफी कहलाए जिनका हृदय सच्चा व पवित्र हुआ करता था, वे ईश्वर पर विश्वास रखते थे। अतः पवित्रता ही 'सूफीवाद का वैचारिक गुण रहा है। इस प्रकार भारत में संत व सूफी परम्परा का अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है जहाँ हर काल में संत व सूफी संतों ने अपने-अपने ढंग से तप, ज्ञान, पैगाम आदि के माध्यम से सामान्यजनों को इंसानियत व भाईचारे में बांधने का प्रयास किया गया।

'अबुल फज़ल' ने अपनी पुस्तक आइने-अकबरी में चौदह सम्प्रदायों या सिलसिलों का उल्लेख किया है। इनमें से भारत में सूफी मुख्यतः चार शाखाओं/सम्प्रदायों में विभक्त हुए जिनमें से चिश्ती, सुहरावर्दी, कादिरी तथा नक्शबन्दी प्रमुख है। इन चारों सूफी सम्प्रदायों का विस्तार लगभग 1200ई. से 1500ई. के मध्य हुआ।

चिश्ती सम्प्रदाय सर्वाधिक प्रसिद्ध व लोकप्रिय हुआ। भारत में चिश्ती सम्प्रदाय की स्थापना उस्मान हरूनी के शिष्य ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने की थी। इन्होंने अजमेर को चिश्ती सम्प्रदाय का केन्द्र बनाया। इस सिलसिले का विस्तार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, उड़ीसा एवं दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों तक हुआ। इस शाखा के प्रमुख अन्य संत-कुतुबुद्दीन बख्तयार काकी, हमीउद्दीन नागौरी, फरीउद्दीन मसऊद गंजेशाकर (बाबा फरीद), निजामुद्दीन औलिया (महबू ए ईलाही) अलाउद्दीन अली अहमद साबिर, नसरूद्दीन महमूद (चिराग ए दिल्ली), अब्दुल कद्दूस गंगोही, सैय्यद मुहम्मद गेसूदराज (वंदा नवाज), शेख सलीम चिश्ती, शेख निजामुद्दीन फारूकी, तथा कलीमुल्ला जाहरवादी प्रमुख है।

सुहरावर्दी सिलसिला के प्रमुख संत बहाउद्दीन जकारिया (शेख उल इस्लाम) मध्यकालीन भारत के सर्वाधिक धनवान, सूफी संतों में से हुआ करते थे। सुहरावर्दी सन्त सम्पन्नता का जीवन व्यतीत किया करते थे। वे दिल्ली के सुल्तानों व अमीर व्यक्तियों से निसंकोच दान प्राप्त किया करते थे। सुहरावर्दी सन्त लम्बे उपवासों एवं भूखे रहकर शरीर शुद्धि में यकीन न रखते हुए अपने समय की राजनीति में भी भाग लिया करते थे। इनकी खानकाह वृहद हुआ करती थी यह खानकाहे धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु हुआ करती थी। जिसमें रहने वालों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे ईश्वर प्रार्थना में लीन रहे और साथ ही पवित्र जीवन व्यतीत करें।

कादरी सम्प्रदाय के प्रर्वतक बगदाद के शेख

अब्दुल कादिर जिलानी (1077-1166 ई) थे। भारत वर्ष में इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार मुख्दुम मुहम्मद जिलानी एवं शाह नियामुतुल्ला ने किया था। 1482ई. सिन्धी को इस सम्प्रदाय का प्रचार केन्द्र सैय्यद बन्दगी मुहम्मद ने बनाया। इसके पश्चात् इस सम्प्रदाय का विस्तार कश्मीर, पंजाब, बिहार आदि राज्यों में भी हुआ। कादरी सम्प्रदाय के अनुयायी संगीत के विरोधी हुआ करते थे।

नक्शबन्दियाँ सम्प्रदाय के प्रवर्तक तुर्किस्तान के ख्वाजा वहाअलदीन नक्शबन्द हुआ करते थे। भारत में 16वीं शताब्दी में इस सिलसिले को ख्वाजा मुहम्मद शाकी गिल्लाह वैरंग के द्वारा लाया गया। इस सम्प्रदाय के सन्तों ने धार्मिक आडम्बरों का विरोध किया एवं साथ ही सादा जीवन व्यतीत करने का उपदेश भी प्रदान किया।

डॉ. के.एस. रंगास्वामी के मतानुसार-

'In Sufism all duality is melted into Unity in the fires of Introspection. Beauty leads to love and love to bliss. The sufis search for Absolute Beauty, Absolute love and Absolute Bliss.'2

इस प्रकार सूफी परमपरा से जुड़े सन्त कलाकारों ने साधनागत सांगीतिक परम्परा का निर्वाह करते हुए देश, समाज, धर्म की महत्वपूर्ण सेवा की इतना ही नहीं इन सूफी फकीरों ने भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार ईरानी संगीत पद्धति को अपनाकर जनभाषा के माध्यम से किया। इनकी ज्यादातर रचनाएँ फारसी साहित्य से प्रभावित होने के कारण उनकी कविताओं में साक़ी, माशूक, जुल्फ, रूख, खुम आदि शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता रहा है।

डॉ. ताराचन्द्र के मतानुसार-'सूफीवाद प्रगाढ़ भक्ति का धर्म है, प्रेम इसका भाव है, कविता, संगीत एवं नृत्य इसकी आराधना है तथा परमात्मा में विलीन हो जाना इसका आदर्श है।'[3]

सूफी संतों ने अपने आध्यात्मिक 'रहस्यवाद' (Mysticism) को फैलाया ये आत्मिक विकास की पूर्णता की (Spiritual Perfection) शिक्षा दिया करते थे। इनकी इस शिक्षा की सात अवस्थाएं हुआ करती थी जो निम्नवत् है-

1. इबादत - ईश्वर की प्रार्थना
2. इश्क - ईश प्रेम
3. तर्क - भौतिक इच्छाओं, आकांक्षाओं का त्याग
4. महरफत - ईश ज्ञान
5. वज़्द - ईशध्यान का आनन्द
6. वस्ल - ईश्वर से मिलन
7. फ़िना- फिल्लाह-परमतत्व में विलीन होना अथवा लवलीन होना।[4]

सूफियों में साधना की चार अवस्थाएं मानी है-यथा 'शरीयत, तरीकत, हकीकत एवं मारिफत'[5] इसके उपरान्त गुरू के उपदेश के माध्यम से संसार की मिथ्या होने का ज्ञान होने पर जागरण की स्थिति कहते है। अतः शुद्धिकरण हेतु सूफी साधना में कई प्रकार के नियम भी बतलाए गए है जिनमें तौबा, खौफ, तवक्कुल, फकर, सब्र, रज़ा, रिज़ा, शुप्त आदि स्थितियों का उल्लेख प्राप्त होता है। चौथी स्थिति प्रकाशानुभाव की होती है जिसमें साधक को साध्य की अनुभूति होती है और सत्ता से परिपूर्ण एकात्म स्थापित करने हेतु साधक को सांसारिक विघ्नों से एक बार पुनः संघर्ष करना पड़ता है। इस प्रकार साधक पूर्ण ऐक्य की स्थिति में साध्य से पूर्ण एकात्मता स्थापित करता है।

सूफी दार्शनिकों के मतानुसार-'सौन्दर्य के द्वारा प्रेम, प्रेम से मिलन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। वे इसे 'विसाल' की संज्ञा से अभिहित करते है।'[6]

इस प्रकार देखा जाए तो सूफी परम्परा मूलतः प्रेम दर्शन पर आधारित हुआ करती थी। प्रेम ही इस परम्परा का मूल सिद्धान्त रहा है। इस परम्परा में प्रेम को 'इश्क' संज्ञा से अभिहित करते हुए इश्क के दो प्रकार बतलाए गए है- इश्क़े मिज़ाजी (सांसारिक प्रेम) एवं इश्क़े हकीकी (ईश्वरीय प्रेम) सांसारिक या लौकिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम तक पहुँचने का सूफी परम्परा अनुमोदन करती है।'[7] प्रेम का मूल है श्रृंगार रस एवं श्रृंगार रस की अभिव्यंजना हेतु संगीत कला से सशक्त माध्यम और कोई हो ही नहीं सकता इस कारण सूफी परम्परा के संत कलाकारों और फकीरों ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार हेतु संगीत को अपनाया। परिणामस्वरूप भारत देश में सूफी साहित्य एवं संगीत अपने युग की चेतना एवं जनजीवन की संस्कृति का अमूल्य कोश बना है।

सन्दर्भ सूची

1. दीक्षित, डॉ. रश्मि, मध्यकाल के संगीतज्ञों व कवियों का हिन्दुस्तानी संगीत व काव्य में योगदान, इलाहाबाद-अनुभव प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ संख्या-222
2. शर्मा, डॉ. सुनीता', भारतीय संगीत का इतिहास, दिल्ली-संजय प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1996, पृष्ठ संख्या-105
3. तिवारी, रामपूजन, सूफीमत साधना और साहित्य, वाराणसी-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, प्रथम संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-96
4. वर्मा, प्रो. आर.डी. एवं वर्मा, डॉ. राजीव, भारतीय संगीत और अमीर, खुसरों, दिल्ली-अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ संख्या-78
5. कुमार, डॉ. अशोक, भारतीय संगीत का इतिहास, दिल्ली-के.के. पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण-2014, पृष्ठ संख्या-443
6. मिश्रा, डॉ. ज्योति, सूफ़ीमत और सूफ़ी संगीत : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक निरन्तरता, प्रकाशन-होरिजन बुक्स, प्रथम संस्करण-2018, पृष्ठ संख्या-78
7. सचदेव, रेनू, धार्मिक परम्परायें एवं हिन्दुस्तानी संगीत, नई दिल्ली-राधा पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण-1999, पृष्ठ संख्या-109

पं. अप्पा साहब जलगांवकर. जीवनी एवं हारमोनियम वादन शैली

डॉ. श्यामा कुमार भारती

जीवन-परिचय

संगीत जगत में पंडित अप्पा साहब जलगांवकर जी का नाम कौन नहीं जानता। देश के सुप्रसिद्ध हारमोनियम वादकों में आपका प्रमुख स्थान है। आपका पूरा नाम 'सखाराम प्रभाकर जलगांवकर' है लेकिन आप 'अप्पाजी' के नाम से संगीत जगत में प्रसिद्ध हुए।

आपका जन्म 1 जनवरी सन् 1922 ई. को जलना (जिला) के जलगांव नामक गांव में हुआ। आपके पिता का साया आपके सिर से तभी हट गया जब आप केवल 1 वर्ष के थे और प्रभाकर बुआ नामक दूसरे परिवार द्वारा आप को गोद ले लिया गया। कक्षा पांचवी तक अध्ययन करने के पश्चात आपके पिताजी ने (जिन्होंने गोद लिया था) आगे की पढ़ाई के लिए सहमति नहीं दी क्योंकि जलना का वह स्कूल उर्दू माध्यम का था और वे नहीं चाहते थे कि आप उर्दू माध्यम से पढ़ाई करें इसलिए आपको स्कूल की शिक्षा छोड़कर किसी कला के क्षेत्र में जाने को प्रेरित किया।

संगीत-शिक्षा–अप्पा जी ने पंडित बालकृष्ण बुआ चिकलीकर जी से ध्रुपद-धमार की गायकी सीखना प्रारंभ किया किंतु गायकी को आप आगे नहीं ले जा सके और आपका झुकाव हारमोनियम की तरफ हुआ। आपने हारमोनियम के अतिरिक्त क्लेरिनेट तथा वायलिन की भी शिक्षा ली तथा गायन की शिक्षा उस्ताद शब्बू खान से ली। अप्पाजी के पिताजी कीर्तनकार थे। अप्पाजी स्वयं कीर्तन गाते थे तथा अपने पिताजी के साथ हारमोनियम संगत करते थे। कीर्तन में गला खराब हो जाने के कारण आपने गाना छोड़ दिया और हारमोनियम बजाने लगे। उस्ताद शब्बू खाँ के साथ 3 वर्ष तक कीर्तन में संगत की। अप्पाजी को वे राग नहीं आते थे जिस राग में शब्बू खाँ कीर्तन गाते थे लेकिन अप्पा साहब उन सभी गानों को बजा देते थे। यह उनकी अद्भुत प्रतिभा थी। उ. शब्बू खाँ से वे बहुत से राग तथा हारमोनियम संगत करना सीखे थे।

अप्पाजी वायलिन भी सीखे थे। इसके पीछे एक बहुत ही आश्चर्यजनक बात है। वे रोहिणी भाटे नामक कत्थक नर्तकी के साथ लगभग 20.25 वर्षों तक लहरा बजाते रहे। एक बार रोहिणी भाटे जी का कार्यक्रम दिल्ली में राष्ट्रपति भवन में आयोजित किया गया। उस समय आकाशवाणी द्वारा हारमोनियम वादन पर रोक लगा दिया गया था। संगत कलाकारों का नाम देते समय अप्पा जी को हारमोनियम पर लहरा देने की बात आई लेकिन व्यवस्थापक द्वारा मना कर दिया गया कि हारमोनियम पर रोक लगा दी गई है। रोहिणी जी ने बोला कि अप्पाजी के बिना कार्यक्रम करना मुश्किल है और कार्यक्रम

प्राथमिक शिक्षक (संगीत) केंद्रीय विद्यालय बावलीए बागपत, उत्तर प्रदेश

अभी 2 महीने बाद होना था। उस 2 महीने में अप्पाजी ने वायलिन पर लहरा बजाना सीख लिया और कार्यक्रम में वायलिन पर ही लहरा बजाया। यह उनकी अद्‌भुत प्रतिभा का ही परिचय था। उन्होंने हारमोनियम वादन के लिए किसी से तालीम नहीं ली थी। बालकृष्ण बुआ चिकलीकर, शब्बू खान साहब तथा अन्य कई कलाकारों के साथ अनवरत संगत करते-करते उन्हें संगीत (गायन) की पूरी बारीकियां मालूम हो गई थीं। इसलिए उनका हारमोनियम गाता था। स्वरों की नाजुक स्पर्श और प्रवाह दोनों ही उनके हारमोनियम की विशेषता थी।

एक बार की बात है जलना में पुणे से एक महिला गायिका कीर्तन गाने आईं जिनके साथ अप्पाजी को ही हारमोनियम संगत करना था। वह कार्यक्रम बहुत ही अच्छा हुआ। उस महिला गायिका ने अप्पाजी से प्रभावित होकर कुछ दिनों के लिए संगीत यात्रा पर जाने को कहा और पूछा कि इस कार्यक्रम के लिए क्या लेंगे। तो उन्होंने सहमति प्रकट करते हुए कहा कि कार्यक्रम खत्म होने के पश्चात मुझे पुणे में 3 महीने तक रहने और खाने की व्यवस्था कर दीजिएगा। उस समय पुणे में रहने के लिए 1 महीने का खर्च 10.12 रूपये था। वह बोले यदि 3 महीने में वहां व्यवस्थित हो गया तो रुक जाऊंगा अन्यथा वापस जलना आ जाऊंगा। इस प्रकार वह कार्यक्रम हुआ और उसके बाद अप्पाजी ने पुणे में रहना प्रारंभ कर दिया। 4 महीने रहने के बाद में वे पुणे में व्यस्त कलाकार हो गए।

संगीत सेवा एवं सम्मान–अप्पा जी ने देश के प्रमुख संगीत सम्मेलनों में हारमोनियम वादन की प्रस्तुति दी, जिनमें गंधर्व महाविद्यालय दिल्ली द्वारा आयोजित विष्णु दिगंबर जयंती संगीत समारोह, सवाई गंधर्व सम्मेलन तथा श्री संकट मोचन संगीत समारोह आदि प्रमुख हैं। अप्पाजी जितने ऊंचे स्तर के कलाकार थे उनका व्यक्तित्व भी उतना ही प्रभावशाली था। आपने देश के लगभग सभी प्रतिष्ठित और महान कलाकारों के साथ हारमोनियम संगति की है। आपने पंडित भीमसेन जोशी जी के साथ लगभग 20 वर्षों तक हारमोनियम संगति की। रोशनआरा, उस्ताद बड़े गुलाम अली खांए पंडित जसराज, किशोरी अमोनकर, गंगूबाई हंगल, पंडित कुमार गंधर्व, उ. अमिर खां तथा परवीन सुल्ताना आदि कई बड़े कलाकारों के साथ हारमोनियम संगति कर इस वाद्य को आगे बढ़ाने का कार्य किया। आपने गायन के साथ-साथ कई प्रसिद्ध तबला वादकों के साथ भी हारमोनियम संगति की। जिनमें उ. अहमद जान थिरकवा, उ. हबीबुद्दीन खांए पंडित किशन महाराज, उस्ताद अल्लारक्खा खां, उस्ताद निजामुद्दीन खां, पं. सामता प्रसाद मिश्र तथा उस्ताद जाकिर हुसैन जी आदि प्रमुख हैं।

आपने विदेशों में भी हारमोनियम की सफल प्रस्तुतियां दी। जिनमें यूएस, जर्मनी, कनाडा, फ्रांस, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश आदि प्रमुख हैं। आप एक उच्च कोटि के कलाकार के साथ. साथ अच्छे गुरु भी थे।

आपको विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। जो इस प्रकार हैं–

1. स्वरलय रत्न पुरस्कार–गान वर्धन
2. सर्व विभूषण रसमंच–कोल्हापुर
3. आईटीसी संगीत रिसर्च अकादमी अवार्ड- सन् 1999
4. संगीत नाटक अकादमी अवार्ड- सन् 2000

आपने हारमोनियम को उच्च स्थान दिलाने में काफी योगदान दिया। आप संगीत की सेवा करते-करते 16 सितंबर सन् 2009 ई. को संसार से विदा हो गए। आपका नाम संगीत जगत में

हमेशा याद रखा जाएगा।

अप्पा जी के हारमोनियम की संरचना एवं ट्यूनिंग

भारतीय शास्त्रीय संगीत में हारमोनियम की विभिन्न वादन शैलियां प्रचलित हैं। सभी हारमोनियम वादक के वादन की अपनी अलग-अलग विशेषताएं हैं। वादन के साथ-साथ हारमोनियम वाद्य की संरचना एवं ट्यूनिंग की बात करें तो इस विषय पर भी सबके अपने अलग-अलग विचार हैं, और सभी के हारमोनियम की बनावट, ट्यूनिंग व रीड्स के प्रयोग में भी अंतर है। हारमोनियम की संरचना एवं ट्युनिंग भिन्न होने से भी वादन में भिन्नता स्पष्ट होती है। हारमोनियम की संरचना की बात करें तो विभिन्न प्रकार के हारमोनियम बनाए जाते हैं। जैसे सादा हारमोनियम, फोल्डिंग, स्केल चेंजर, कोलकाता मॉडल, मुंबई पेटी, चेंजेबल रीड, डबल बेलो, 7 बेलो तथा श्रुति हारमोनियम आदि।

हारमोनियम ट्यूनिंग के विभिन्न प्रकार हैं, जैसे जनरल ट्यूनिंग (जिसे इक्वली टेंपर्ड या समसाधृत स्वर सप्तक कहते हैं), गंधार ट्यूनिंग या स्पेशल ट्यूनिंग एवं श्रुति हारमोनियम। जनरल ट्यूनिंग में स्वर की स्थिति भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होने वाले स्वरों से भिन्न होती है। कुछ स्वर अपने स्थान से चढ़े होते हैं और कुछ उतरे। यानी तानपुरे के साथ सभी स्वर मिल नहीं पाते इसलिए इसे जनरल ट्यूनिंग या इक्वली टेंपर्ड ट्युनिंग कहते हैं। इस प्रकार के ट्यून्ड हारमोनियम को किसी भी स्वर से बजाया जा सकता है। ज्यादातर इसी प्रकार के ट्यूनिंग वाले हारमोनियम प्रयोग किए जाते हैं। लेकिन गंधार ट्युनिंग हारमोनियम कलाकारों द्वारा किया गया एक सफल व सराहनीय प्रयोग है। इस प्रकार का ट्युनिंग हारमोनियम जगत में परिवर्तन ला दिया। वर्तमान में ज्यादातर अच्छे व वरिष्ठ हारमोनियम वादक इस विशेष प्रकार के ट्यूनिंग वाले हारमोनियम का प्रयोग कर रहे हैं। जिसके स्वर तानपुरे व रागदारी संगीत के स्वरों के बिल्कुल करीब होते हैं। आज के समय में लगभग सभी अच्छे गायक व हारमोनियम वादक इसी प्रकार के ट्यूनिंग वाले हारमोनियम का प्रयोग करते हैं, जिससे उनके संगीत प्रस्तुति का श्रोताओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में ट्युनिंग के बारे में बात करें तो सबसे पहले हारमोनियम को जनरल ट्यूनिंग में ट्यून किया जाता है फिर किसी भी एक स्वर को सा मानकर ट्युन किया जाता है। जैसे काली एक या Sharp को यदि सा माना जाए तो उसका शुद्ध गंधार एवं धैवत बहुत ही ज्यादा चढ़ा होता है। इन चढ़े हुए स्वरों के रीड्स को घिसकर उतारना पड़ता है। इतना देर तक घीसना पड़ता है कि हारमोनियम के षड्ज के साथ इन स्वरों का अच्छा संवाद हो जाए। ठीक इसी प्रकार अन्य चढ़े हुए स्वरों को उतारकर व उतरे हुए स्वरों को चढ़ाकर स्वरों को बहुत ही अच्छे से संवाद कराया जाता है। यानी सा के साथ अन्य स्वरों को क्रमशः एक साथ दबाने पर अच्छे से संवाद सुनाई दे। ऐसा करने से उस पर बजने वाले सभी स्वर तानपुरे के साथ अच्छे से संवाद करने लगते हैं। इस प्रकार के ट्यून्ड हारमोनियम को केवल काली एक या Sharp वाले पट्टी से ही बजाया जा सकता है, जिससे सभी स्वरों को मिलाया गया होता है। इस प्रकार हारमोनियम वादक को प्रत्येक स्वर का अलग-अलग हारमोनियम रखना पड़ता है तथा जरूरत के अनुसार अलग-अलग स्वरों से गाने वाले कलाकारों के साथ उनके स्वर का हारमोनियम बजाया जाता है। जैसे कोई कलाकार काली दो या डी शार्प से गाने वाला होता है तो उसके

साथ काली दो से ट्यून्ड हारमोनियम बजाया जाता है। कई हारमोनियम रखने में और ले जाने में मुश्किल तो होता है किंतु हारमोनियम के सुनने का आनंद ही अलग होता है। इसे ही गांधार ट्युनिंग या स्पेशल ट्यूनिंग कहा जाता है। हालांकि ट्युनिंग का विषय बहुत ही विस्तृत है। यहां पर इस ट्यूनिंग का केवल संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। हारमोनियम संरचना के अंतर्गत रीड्स भी आते हैं। रीड के बारे में संक्षिप्त में चर्चा करें तो इनमें खरज, नर व मादा जिनको क्रमशः बॉस, मेल एवं फीमेल (फ्लुट) कहते हैं। ये तीन प्रकार के रीड्स होते हैं। बास एवं मेल का प्रयोग प्रायः पुरुष गायक के लिए उपयुक्त होता है। नर-नर या मेल-मेल रीड वाले हारमोनियम का प्रयोग महिला गायिका या एकल वादन के लिए होता है क्योंकि ज्यादातर हारमोनियम वादक सोलो (एकल) वादन के लिए नर.नर हारमोनियम का ही प्रयोग करते हैं। फ्लुट या मादा रीड का प्रयोग स्केल चेंजर या तीन सेट रीड वाले हारमोनियम में बास एवं मेल रीड के साथ किया जाता है। इसके अतिरिक्त अलग-अलग कंपनियां अलग.अलग नामों से रीड बनाती हैं। जिनमें पुराने समय के जर्मन एवं पेरिस अच्छी रीड माने जाते हैं। इसके अलावा पालीटाना, एन एसए वी एस एवं मोहनलाल रीड काफी प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार अच्छे रीडए अच्छी लकड़ी एवं विशेष ट्यूनिंग से बने हारमोनियम मे एक अलग ही आकर्षण होता है एवं इसके स्वर श्रोताओं को कर्णप्रिय होते हैं।

यदि अप्पा साहब जलगांवकर जी के हारमोनियम संरचना की बात करें तो वे मुंबई पेटी ही बजाते थे। अप्पा जी नर-नर रीड वाले हारमोनियम प्रयोग करते थे। क्योंकि इसमें Continuity ज्यादा रहती थी जो अप्पा साहब के वादन की विशेषता थी। उनके पास अचरेकर जी द्वारा बनाई हुई हारमोनियम थी। वे पहले वादक थे जो उस हारमोनियम का प्रयोग करते थे। उस हारमोनियम की विशेषता यह थी कि उसमें सभी सुर के उतरे हुए गंधार मिल जाते थे जो काफी सुरीला होता था।

अप्पा साहब की शैली से जुड़े डॉ. विनय कुमार मिश्र जी हारमोनियम की संरचना एवं ट्युनिंग के बारे में बताते हैं कि अप्पा जी ने हमेशा नर-नर हारमोनियम बजाया। यहां तक की संगत के लिए भी नर-नर ही रखते थे। जब Demand होती थी तब खरज.नर का प्रयोग करते थे। केवल पंडित भीमसेन जी एवं बसंतराव जी ऐसे लोगों के लिए खरज.नर प्रयोग करते थे।

नर.नर हारमोनियम का सुर काफी साफ सुथरा सुनाई पड़ता है। जबकि खरज-नर में बेसुरापन छिप जाता है। वही स्थिति गायकों के साथ भी है। खरज-नर के साथ गाते हैं और यदि कहीं बेसुरा होते हैं तो उनके बेसुरापन को वह हारमोनियम छिपा देता है बल्कि नर-नर हारमोनियम के साथ गाना ज्यादा मुश्किल होता है। क्योंकि पतला sound होने से सब कुछ बहुत स्पष्ट सुनाई देता है। ट्यूनिंग की बात करें तो अप्पा साहब केवल गंधार और धैवत ही ट्युन करते थे। बाकी स्वरों को ट्युन किया हुआ नहीं देखा।

अप्पा जी के शिष्य सुरेश फड़तरे जी इस विषय पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि हारमोनियम कैसा होना चाहिए और उसकी रचना कैसी होनी चाहिए इस पर मेरे गुरु जी ने बहुत सोचा। पंडित अप्पा साहब जी ने जो गांधार ट्युनिंग को महत्व दिया उसमें दो तीन बातें हैं। यदि हम सोलो बजाते हैं तो कैसा हारमोनियम होना चाहिए। अगर हम काली दो से बजाते हैं

तो उसी सुर को सा मानकर सभी सुर उससे मिलाते हैं। उस ट्यूनिंग में Perfection होना चाहिए। चाहे कोई भी रीड हम प्रयोग करें सोलो के लिए नर-नर रीड होना चाहिए। नर-नर रीड सोलो के लिए अच्छा होता है। उसका Sound मधुर होता है। खरज-नर रीड संगत के लिए अच्छा होता है। जहां तक रीड की बात करें तो कुक्कड़ और पेरिस काफी अच्छा होता है। पेरिस रीड का हारमोनियम बजाने में कान को अच्छा लगता है। जर्मन रीड जो बोलते हैं तो हम सोलो के लिए प्रयोग नहीं करते क्योंकि उसमें जोर-जोर से आवाज आती है मीठा नहीं बजता। पेरिस और कुक्कड़ रीड का ट्युनिंग काफी समय तक टिकता है।

अप्पा जी सोलो वादन काली दो से करते थे। जबकि कुछ अन्य शैली के वादक जैसे पंडित मधुकर पेडनेकर, पद्मश्री तुलसीदास बोरकरए पंडित रामभाऊ बीजापुरे, श्री सुधीर नायक एवं श्री रविंद्र कातोटी आदि कलाकार सोलो के लिए सफेद 4 पट्टी यथ्ो बंसमद्ध का प्रयोग करते हैं। पंडित अरविंद थत्ते एवं उनकी परंपरा के वादक काली दो से सोलो बजाते हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो हारमोनियम की संरचना एवं ट्यूनिंग अलग होने से वादन में भी परिवर्तन दिखता है।

अप्पा साहब की हारमोनियम वादन शैली की विशेषताएं

हारमोनियम एक पाश्चात्य वाद्य है। इसका आविष्कार पेरिस (फ्रांस) मे सन् 1842 ई. में एलेक्जेंडर डिबेन द्वारा किया गया। बाद में भारत में आने के बाद इस वाद्य का प्रचार-प्रसार एवं प्रयोग अधिक होने लगा। यह एक आधुनिक वाद्य है एवं वर्तमान समय में इसका निर्माण एवं प्रयोग बहुतायत मात्र में हो रहा है। हारमोनियम के क्षेत्र में बहुत से ऐसे हारमोनियम वादक हैं जिन्होंने इस वाद्य को शास्त्रीय संगीत में उच्च स्थान दिलाने के लिए अथक परिश्रम किया और उनका यह परिश्रम सफल भी रहा। भारतीय शास्त्रीय संगीत में कुछ ऐसे हारमोनियम वादक हुए जिन्होंने अपनी एक अलग वादन शैली विकसित की और उनकी परंपरा को उनके शिष्यगण कई पीढ़ियों तक आगे ले जाते रहे। उनके हारमोनियम वादन में अलग-अलग विशेषताएं है। उन्हीं विशेषताओं एवं शैली मे भिन्नता के कारण उनकी एक अलग शैली बन गई। स्वर, राग, ताल, आलाप, तान, बहलावा, गमक, खटका, मुर्की, कण, स्वर सौंदर्य तथा भावपूर्ण प्रस्तुति आदि में भिन्नता के कारण उनके वादन शैली में भिन्नता आती है। जब किसी एक शैली के इन नवीन विचारों एवं विशेषताओं को ठिक वैसे ही तीन-चार पीढ़ियों तक आगे ले जाया जाता है तो एक घराने या शैली का निर्माण होता है। ऐसे कई हारमोनियम वादक हुए जिन्होंने अपनी अलग शैली स्थापित की। उनमे पंडित अप्पा साहब जलगांवकर जी का नाम प्रमुख है।

पंडित अप्पा साहब जलगांवकर जी का नाम लेते ही हारमोनियम वाद्य सामने आ जाता है। गायकी अंग, स्वरों में निरंतरता, सुरीलापन ये कुछ खास विशेषताएं हैं जिनके कारण उनकी शैली की पहचान होती है। स्वरों की निरंतरता कायम रखने वाले तथा आँसयुक्त वादन ये अप्पाजी का एक अलग गुणधर्म था। अपने जीवन के पूर्वार्ध में वे विलक्षण तैयारी के साथ बजाते थे। उनके जैसा वादन में विविधता मिलना मुश्किल ही है। अपने वाद्य के प्रति होने वाली निष्ठा, ईमानदारी, हृदय से वादन करना ऐसा उनका दर्शन श्रोताओं को होता था। जिस प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्होंने अपने को गढाघ

थाए संघर्ष किया था, यह आदर्श अन्य कलाकारों को देखना चाहिए। छोटे-बड़े सभी से वे इतना मन मिलाकर रहते थे और कार्यक्रम के पहले ग्रीन रूम में भी बहुत ही उत्साही एवं हँसमुख वातावरण रखते थे।

पंडित अप्पा साहब जलगांवकर जी की वादन शैली का एक अलग ही रंग है। छोटे से लेकर बड़े कलाकारों के साथ मंच पर पूरे आत्मभाव के साथ संगत करने वाले अप्पा साहब ने हारमोनियम वादन को एक नया रूप दे दिया। आपकी शैली को 'अप्पा साहब शैली' के नाम से जाना जाता है।

आपके वादन के संबंध में प्रसिद्ध गायक संजीव अभ्यंकर जी कहते हैं कि चिरकाल तक स्मरण रहे ऐसा रसपूर्ण वादन अप्पा जी ने सही मायने में किया। वे किसी भी महफिल में रंग भर देते थे। उन्हें प्रत्येक घराने की वैशिष्ट्य की जानकारी थी तथा उसी के अनुसार कलाकारों के हिसाब से अलग-अलग रूप में अपने वादन को ढाल लेते थे। संगीत जगत में ध्रुवतारा ऐसा उनको कह सकते हैं। अप्पा जी के हारमोनियम वादन के बारे में प्रसिद्ध हारमोनियम वादक पंडित प्रमोद मराठी बताते हैं कि अप्पाजी क्या नहीं बजा सकते थे। चाहे शास्त्रीय संगीत हो उतनी ही गंभीरता से, ठुमरी, दादरा गजल उसी क्षमता से, नाट्यसंगीत उतने ही प्रेम से तथा लहरा और लावणी भी उतनी ही तैयारी के साथ बजाते थे। पंडित भीमसेन जोशी, पंडिता रोहिड़ी भाटे तथा उ. अल्लारक्खा खां सभी के साथ संगति में अप्पाजी हर जगह अपना रंग भरते ही थे और वह रंग भी कौन सा जो रंग मुख्य कलाकार का चल रहा है वही रंग। महफिल में साधारण से साधारण मात्राओं के हिसाब के साथ सुंदर पद्धति से तिहाई लेकर सम पर आना और श्रोताओं की तरफ से तालियों से दाद मिलना तय था।

अप्पाजी के बारे में पंडिता आरती अंकलेकर जी के विचार इस प्रकार हैं। अप्पाजी की साथ संगत अपने आप में परिपूर्ण थी। एक जैसी संगति उनके वादन से अनुभव होता था। मूल कलाकार के साथ कला के आविष्कार के लिए जो जरूरी वातावरण चाहिए उसको बनाने वाले वे एकमात्र वरिष्ठ कलाकार थे।

श्री उपेंद्र सहस्त्रबुद्धे जी जो कि अप्पा साहब के शिष्य हैं अपने वादन शैली की विशेषताओं के बारे में बताते हैं कि अप्पा साहब की हारमोनियम शैली यह है की उनकी हारमोनियम बजती नहीं थी बल्कि गाती थी। अप्पा साहब जी की जो सबसे बड़ी खासियत है वह है Continuity (स्वरों में निरंतरता), बजाते समय हमेशा पिछले सुर की आंस लेकर अगला सुर बजाते हैं यह अप्पा साहब की परंपरा की विशेषता है। कहीं भी स्वर टूट ही नहीं सकता ऐसा विचार रखते हैं। उस समय के ज्यादातर हारमोनियम वादक पहले ऑर्गन बजाते थे। जिसके कारण उनके हाथ रखने का अंदाज अलग होता था। उन लोगों को नाट्य संगीत बजाने की आदत थी तो उनमें Continuity कम होती थी। बाद में वही ऑर्गन वादक हारमोनियम बजाने लगे और हारमोनियम में ऑर्गन जैसा हाथ रखते थे। इसलिए सुर का वह जुड़ाव उनके वादन में उतना नहीं मिल पाता था जितना कि अप्पा साहब में। अप्पा जी कभी भी नोटेशन नहीं बजाए वे गाना बजाते थे।

इस शैली के बारे में डॉ. विनय कुमार मिश्र जी के विचार इस प्रकार हैं अप्पाजी की वादन शैली गायकी थी। वह खासतौर से भीमसेन जी की गायकी बजाते थे। भीमसेन जी के साथ कई वर्षों तक संगत करने के कारण उनकी गायकी, आलाप व तान उनके हाथों में आ

गया था। विलंबित ख्याल एवं द्रुत ख्याल की बंदिश वैसे ही बजाते थे जैसा कि गायकी में होता था। वे ज्यादातर विलंबित एकताल या तीनताल बजाते थे। इस प्रकार उनकी वादन शैली पूरी गायकी पर आधारित थी। बाद में झाले का जो काम करते थे उसमें वायलिन को ज्यादा Follow करते थे। वे झाले में सा सा नी सा, सारे नी सा, सा सा सा साए नी सा सा सा ज्यादा बजाते थे। रागों के बारे में विनय जी चर्चा करते हैं कि उन्होंने सोलो बहुत बजाया है, जिसमें ज्यादातर Basic राग ही बजाए हैं। जैसे राग यमन, अहीर भैरव, तोड़ी, मालकौंश तथा पूरिया कल्याण आदि। किराना की गायकी उनको काफी पसंद था। उसकी हर बात को वे सोलो (एकल) हारमोनियम में बजाते थे। वे बजाते समय हाथ नहीं उठाते थे उनके बजाने में Continuity बहुत रहती थी। छंद का काम भी अच्छा करते थे। गमक का काम स्वरों में निरंतरता के साथ बिना हाथ उठाए बजाते थे। जैसे मम गम मग रेसा गमक के साथ बजाना होता था तो म स्वर को दबाए हुए ग को स्पर्श करते थे। उनकी Continuity को लगभग सभी लोगों ने अपनाया।

अगर देखा जाए तो स्वरों में निरंतरता अप्पा जी की सबसे खास विशेषता थी जो गायक के लिए काफी सहयोग प्रदान करता है और पूरे समय एक जैसा सुरीलापन बना रहता है। उनकी इस शैली को उपेंद्र सहस्त्रबुद्धे, सुरेश फड़तरे, मुकुंद पेटकर एवं डॉ. विनय कुमार मिश्र आगे ले जा रहे हैं।

श्री उपेंद्र सहस्त्रबुद्धे जी के शिष्यों में हरीश करनम, दत्तराज फर्णीकर एवं अदिति ठाकुर, डॉ. विनय कुमार मिश्र के शिष्यों में क्षितिज सिंह एवं मनीष सिंह, श्री सुरेश फड़तरे के शिष्यों में साहिल पुंडरीक, शांतनु कान्हरे, अपेक्षा गोडबोले तथा रिया मूले हैं जो अप्पा जी की वादन शैली का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं तथा इसे आगे बढ़ा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Brockschmidt, Satyaki Kraig, The Harmonium Handbook, New age books, New Delhi 2004 Page-13
2. Kasliwal, Prof. Suneera, Classical musical instruments, Rupa & Co- New Delhi 2001 Page. 256
3. मिश्र, विनय कुमार, हारमोनियम : विविध आयाम, आकांक्षा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2015
4. डॉ. अरविंद डी. थत्ते जी के विचार, सकाल वृत्तसेवा (समाचार पत्र) पुणे दिनांक 16.9. 2009
5. सकाल वृत्तसेवा (समाचार पत्र मराठी भाषा, हिंदी अनुवादक- पंडित विनोद लेले प्रसिद्ध तबला वादक- दिल्ली) पुणे 16.9.2009

साक्षात्कार (हारमोनियम वादक)

डॉ. विनय कुमार मिश्र– दिल्ली
श्री सुरेश फड़तरे– पुणे
श्री उपेंद्र सहस्त्रबुद्धे– पुणे
श्री दशरथ बेंगुड़े, हारमोनियम निर्माणकर्ता मुंबई

टप्पा गायकी : एक अवलोकन

डॉ॰ मधुमिता भट्टाचार्य

सारांश :

टप्पा गायन शैली उत्तर भारतीय संगीत की पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों में हुआ और विकास अवध के दरबार में ठुमरी के साथ हुआ। इस शैली के जन्मदाता मियाँ शोरी माने जाते हैं। लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला के समय में सुप्रसिद्ध गायक मियाँ गुलाम रसूल के सुपुत्र मियाँ गुलाम नबी टप्पे के आविष्कारक हैं। मियाँ शोरी लखनऊ से पंजाब चले गये और वहाँ के लोकगीतों से अत्यंत प्रभावित हुये। इन लोकगीतों को उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत में एक स्वतंत्र शैली का रूप दिया जो टप्पा के नाम से प्रचलित हुई। उन्होंने अपने अनेक शिष्यों को टप्पा गायन शैली सिखाया। अनेक रागों में टप्पा की रचनायें किया। टप्पा के गीतों के शब्द अधिकतर पंजाबी भाषा के होते हैं। फारसी, हिन्दी तथा उर्दू में भी कुछ बंदिशें प्राप्त होती हैं। इनके गीतों में अधिकतर श्रृँगार रस मिलता है। इसकी प्रकृति चंचल होती है। टप्पा में स्थायी और अन्तरा दो भाग होते हैं। इस गायन शैली में दानेदार तानें मुर्की, खटका, जमजमा आदि प्रयोग किये जाते हैं। टप्पा में स्वरों पर विश्रान्ति नहीं होती है। इसके गायन के लिये गला विशेष रूप से तैयार किया जाता है। यह अत्यंत कठिन गायन शैली है।

कुंजी शब्दः- *टप्पा, गायन, पंजाबी भाषा, लोक गीत*

उद्देश्यः- टप्पा गायन शैली वर्तमान समय में अप्रचलित गायन शैली है। अत्यंत श्रमसाध्य गायन शैली होने के कारण इसका गायन अत्यंत कठिन है। मेरा उद्देश्य इस गायन शैली को सभी संगीत प्रेमियों के समक्ष लाना है जिससे यह गायन शैली पुनः प्रचलित हो सके।

प्रस्तावनाः- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की एक और अत्यन्त कठिन गायन शैली है टप्पा। "टप्पा का शाब्दिक अर्थ है टापना यानि उछलना, कूदना। कैप्टन विलयर्ड के अनुसार टप्पा पंजाब के ऊँट हाँकने वाले गाया करते थे। पंजाब में ऊँट हाँकने वाले व्यापारी जो लोकगीत गाया करते थे उसी के आधार पर टप्पा शैली का विकास हुआ।"[1]

"टप्पा गायन का आविष्कार तथा प्रचार उत्तरी हिन्दुस्तान में सबसे पहले अठारहवीं शताब्दी में हुआ। लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला के समय में (सन् 1776 - 1797) लखनऊ के सुप्रसिद्ध गायक मियाँ गुलाम रसूल के सुपुत्र मियाँ गुलाम नबी टप्पे के आविष्कारक हैं। वे शोरी मियाँ के नाम से जाने जाते हैं।"[2] कहा जाता है कि शोरी मियाँ के पिता उनके ख़याल गायन में उनकी अरुचि देखकर बहुत चिन्तित थे। उन्हें घर से बाहर निकाल दिया था। गुलाम नबी (मियाँ शोरी) लखनऊ से पंजाब चले गये और वहाँ के लोकगीतों से बहुत प्रभावित हुये।

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005, मोबाइलः 8840237697, ईमेलः madhumitavns09@gmail.com

इन लोकगीतों को उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत में एक स्वतंत्र शैली का रुप दिया जो 'टप्पा' के नाम से जाना जाने लगा। वापस लखनऊ जाकर इस शैली को सिखाया और उसका प्रचार किया। स्वयं शोरी मियाँ ने टप्पा की रचना की और गाया भी था।

टप्पा शब्द भी इस गायन विधा के समान ही विशुद्ध पंजाबी है। इसका शाब्दिक अर्थ है कूदना या उछलना। टप्पा शब्द का सम्बन्ध तप्पा से जोड़ते हुये एक विद्वान का कहना है कि सिंध के बीच के भू-भाग को समेटता हुआ उत्तर की ओर शेरशाह, शेरकोट, पायसेर, मुजफ्फरगढ़ के रेगिस्तान की ओर स्थित है, तप्पा कहा जाता है।"[3]

कुछ विद्वानों के अनुसार 'तप्पा' पंजाब का वह क्षेत्र है जो मरूभूमि है। इस क्षेत्र में बलौंची और अफगानी ऊँटों पर सवार होकर लम्बी-लम्बी कतारों में व्यापार के लिये रात दिन सफर किया करते थे। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये ऊँट हाँकने वाले अतीत के पंजाब की प्रेम गाथाओं यथा हीर-राँझा, मिर्ज़ा-साहिबा, सोहनी-महिवाल आदि का गायन करते हुये यात्रा के श्रम को दूर करने के लिये गायन किया करते थे।

"कैप्टन विलर्ड के अनुसार - टप्पा पूर्वकालिक पंजाब के ऊँट हाँकने वालों द्वारा बहुत ही रुखी शैली में गाया जाता था और शोरी मियाँ के द्वारा ही यह सम्प्रति गाये जाने वाले ललित सुरुचिपूर्ण साँचे में ढाला गया। टप्पा में दो तुकें होती हैं और ये साधारणतया पंजाब में बोली जाने वाली भाषा अथवा पंजाबी मिश्रित हिंदी की बोलियों में गाये जाते हैं जिसमें वे हीर-राँझा के प्रेम का विवरण सुनाते हैं जो दोनों परस्पर प्रणय और विरह के लिये समान रुप से प्रसिद्ध हैं और ये गीत उनके जीवन की कतिपय परिस्थितियों की ओर संकेत करते हैं।"[4]

फारसी भाषा की शब्दावली में भी तिप्पा शब्द प्रयुक्त होता है जिसका उच्चारण तप्पा भी किया जाता है। इस शब्द के अर्थ बुलंदी अर्थात् ऊँचाई और ऊँची जगह होते हैं। टप्पे की चलन अधिकतर टीप स्वरों में ही होती है और पंजाबी अंचल के सभी लोकगीत प्रायः टीप स्वरों में ही होते हैं। विद्वानों के अनुसार यह पंजाबी अंचल के मुल्तान भू-भाग में ऊँट हाँकने वालों के किसी लोकगीत के आधार पर अस्तित्व में लाया गया। निर्जन स्थान में प्रातः अथवा सायंकाल के सन्नाटे में गाये जाने वाला यह गीत निश्चय ही ऊँची आवाज़ में गाया जाता रहा होगा।

श्री गोविंदराव राजुरकर के अनुसार पंजाब में ऊँट हाँकने वाले टप्पा नामक लोकगीत गाते थे। अन्य विद्वान श्री गोस्वामी जी के अनुसार टप्पा शब्द टप (लघु) धातु से निकला है। यह पंजाब के ऊँट हाँकने वालों के द्वारा गायी जाने वाली धुनों से प्राप्त किया है। सीधी सपाट तानों का बहुत कम प्रयोग होता है। इसकी जगह टेढ़ी द्रुत गति की तानें, जमजमा युक्त तानें, एक स्वर से दूसरे स्वर पर झूमती, उछलती तानें प्रयोग की जाती हैं। आलाप का काम नहीं दिखाया जाता है। टप्पा में छोटी-छोटी दानेदार ताने, बोलतानें, मुर्की, खटका, जमजमा से सुशोभित होती हैं। टप्पा में स्वरों पर विश्रान्ति नहीं होती। कठिन स्वर समुदायों की तानें लेकर सम पर आना, टप्पा की विशेषता है। इसकी विशेष तालें हैं-पंजाबी, अद्धा, सितारखानी, पश्तो इत्यादि। इसकी पाठ्य सामग्री प्रायः पंजाबी भाषा में है। इसे नवाब आसफुद्दौला के दरबारी गायक शोरी मियाँ (सन् 1810 ई) द्वारा परिपूर्ण किया गया और बंगाल में यह अत्यधिक विकसित हुआ।

यदि ऊँट हाँकने वालों के गायन को

उपशास्त्रीय टप्पा का मूलाधार मानते हैं तो यहाँ एक अन्य तथ्य पर विचार करना समीचीन होगा कि प्राचीन समय में सिंध प्रदेश में अधिकतर व्यापार ऊँटों के द्वारा ही किया जाता था।

"एक अन्य विद्वान ने 'करहले' शब्द का विवेचन करते हुये बताया है कि प्राचीन समय में देशान्तरों में व्यापार की सामग्री लादने की प्रथा थी। सिंधी भाषा के करहीं (ऊँट) शब्द से ही करहले की व्युत्पत्ति हुई और यह शब्द ऊँट वालों के गायन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि 'करहला' सिन्धी भाषा का शब्द था और सम्पर्क के कारण इसका प्रचलन मुल्तान में भी हुआ। यह शब्द लोक साहित्य के क्षेत्र में सिख सम्प्रदाय के चौथे गुरु श्री रामदास जी से काफी समय पूर्व अस्तित्व में आया होगा अन्यथा आपकी वाणी में उसका प्रयोग न होता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दोनों ही परिस्थितियों में टप्पा एवं करहला एक ही वर्ग विशेष द्वारा गाये जाने के कारण इन दोनों की गायन विधि संभवतः एक दूसरे से भिन्न न रही होगी और कालान्तर में शोरी मियाँ ने इसी गायन विधा से प्रभावित होकर इसे उपशास्त्रीय रुप प्रदान किया।"[5]

"अन्य विद्वानों के अनुसार प्राचीन समय में सिंध प्रदेश में अधिकतर व्यापार ऊँटों के द्वारा ही किया जाता था। सिंधी भाषा में ऊँट के लिये 'करहो' शब्द प्रयुक्त होता है।"[6] एक अन्य विद्वान ने करहले शब्द का विवेचन करते हुये कहा जाता है कि प्राचीन समय में देशान्तरों में व्यापार की सामग्री ऊँटों पर लाद कर ले जाते थे। सिंधी भाषा के करहाँ (ऊँट) शब्द से ही 'करहले' की व्युत्पत्ति हुई। अतः यह कहा जाता सकता है कि टप्पा एवं करहला एक ही वर्ग विशेष द्वारा गाये जाने के कारण इन दोनों की गायन विधि संभवतः एक दूसरे से भिन्न न रही होगी और कालान्तर में शोरी मियाँ ने इसी गायन से प्रभावित होकर इसे उपशास्त्रीय रुप प्रदान किया होगा।

"पं॰ विष्णु नारायण भातखंडे के अनुसार टप्पा के गायन की रीति प्राचीन बेगस्वरा गीति से निकली होगी।"[7] 13वीं शताब्दी में शारंगदेव द्वारा रचित ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में इन पाँच प्रकार की गीतियों का उल्लेख मिलता है।

गीतयः पंच शुद्धाद्या भिन्ना गौड़ी च वेसरा।
साधारणीति शुद्धास्थादवक् ललितः स्वरा।।

इस सन्दर्भ में वेसरा गीति की परिभाषा करते हुये शारंगदेव लिखते हैं-

वेगवद्भिः स्वरैवर्ण च तुष्के ऽत्यरिक्तितः।
वेगस्वरा रागगीतिवेंसरा चोत्यते बुधैः।।

आरोही, अवरोही, स्थायी एवं संचारी वर्णों में अत्यन्त शक्तिपूर्वक वेगवान स्वरों से रागों को गाना वेसरा (वेगस्वरा) गीति है।

ग्राम रागों के सम्बन्ध में इन पाँचों गीतियों का उल्लेख कर तीस रागों को उनके मध्य विभाजित किया गया है। वेसरा की व्याख्या निम्नवत् की गई है-

स्वराः सरन्ति यूदेगान्तस्माद् वेसरकाः स्म ताः।

अर्थात् जिन रागों में स्वरों का वेगपूर्वक संचार होता है वह वेसर कहलाते हैं। वेसर के अन्तर्गत जिन आठ रागों 33 के नाम दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं-

1. षड्जग्रामीय - 1-टक्क
   2-वेसरषाडव 3-सौवीर
2. मध्यमग्रामीय - 4-वोट्ट
   5-मालवकौशिक 6-मालव पंचम
3. द्विग्राम सम्बद्ध - 7-टक्क कौशिक
   8-हिन्दोल

रागों से अनुस्यूत होने के कारण हम इस

निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वेगस्वरा गीति का प्रयोग केवल इन आठ रागों तक ही सीमित था।

13वीं शताब्दी में रचित ग्रंथ संगीत रत्नाकर में वलणत होने के कारण हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि संभवतः यह गीति दक्षिण भारत में व्यवहृत थी क्योंकि उत्तर भारत में 15वीं शताब्दी में जब ध्रुवपद का बोलबाला था तो निश्चय ही इस विधा का प्रादुर्भाव 13वीं शताब्दी में हो चुका होगा। कहा जा सकता है कि कोई भी शैली विशेष अचानक जन्म नहीं लेती और एक दो दशकों में विकसित हो कर लोकप्रिय नहीं हो जाती और न ही वह किसी एक व्यक्ति विशेष की कृति होती है। परम्परागत चली आ रही शैली ही रूचि के अनुसार धीरे-धीरे नया रूप धारण करती हुई एक नई शैली के रूप में विकसित होती है। मध्यकालीन ग्रंथों में ध्रुवपद का उल्लेख मिलता है, परंतु टप्पा नाम से कोई भी गायन शैली का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। संभवतः टप्पा निश्चय ही बहुत काल पश्चात् की विकसित शैली है और विद्वानों के मतानुसार यह शैली 18वीं शताब्दी में शोरी मियाँ द्वारा प्रचार में आई। भातखंडे जी ने शोरी मियाँ को जन्मदाता न कहकर टप्पा शैली को प्रचलित करने वाला ही कहा है।

भातखंडे जी के अनुसार टप्पे का गायन सभ्य समाज में शोरी मियाँ ने प्रचलित किया। शोरी मियाँ का युग 18वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है, अतः टप्पा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अन्तिम चरण की देन है। शोरी मियाँ पंजाब निवासी थे और टप्पा का उद्गम पंजाब ही है। इसका प्रचार लखनऊ, ग्वालियर तथा भारत के कई स्थानों में हुआ।

टप्पा चंचल प्रक ति की गायन शैली है। टप्पे का कुशल गायन गमक, तान, खटका, फटका आदि की सुंदरता और तीव्र गति में सफाई के साथ गाने में निहित है। टप्पा में एक स्थायी और एक अन्तरा होता है। ठुमरी में तानें नाजुक, म दुल, स्फटिक माला के समान गुंथी हुई होती है। परंतु टप्पे की तानें पारे के दानों की भाँति बिखरी हुई प्रतीत होती है। सीधी-सपाट तानों का बहुत कम प्रयोग होता है। इसके स्थान पर टेढ़ी द्रुत गति की तानें अत्यंत मुश्किल जमजमा युक्त तानें एक स्वर से दूसरे स्वर पर झूमती उछलती तानें प्रयोग की जाती हैं। टप्पा में स्वरों पर विशेष विश्रान्ति नहीं होती। अत्यंत कठिन स्वर समुदायों की तानें लेकर सम पर आना टप्पा की विशेषता है। टप्पा गायन के लिये गला विशेष रीति से तैयार करना पड़ता है। इसके लिये विशेष साधना की जरूरत होती है। इसमें रसोत्पत्ति अथवा भावाभिव्यक्ति की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना बोलतानों के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने की ओर। टप्पे का कुशलतापूर्वक गायन तान, खटका, टप्पे की तानें पारे के दानों की भाँति बिखरी हुई होतीं हैं। अति द्रुत गति का गायन होने के कारण यह गायकी श्रमसाध्य है। टप्पा प्रायः राग खमाज, काफी, भैरवी, मांड, सिन्दूरा आदि मिश्र रागों में गाया जाता है। इस गायकी में पंजाबी ताल का प्रयोग होता है। पंजाबी ताल के सोलह मात्राओं के एक आवर्तन में स्थायी और दूसरे आवर्तन में अन्तरे का गायन इस शैली की विशेषता है। टप्पा गीतों के शब्द अधिकतर पंजाबी भाषा में होते हैं। फारसी, हिंदी तथा उर्दू में भी कुछ बंदिशें मिलती हैं। सीधी सपाट तानों का बहुत कम प्रयोग होता है। इसकी जगह टेढ़ी, द्रुत गति की तानें, जमजमा युक्त तानें, एक स्वर से दूसरे स्वर पर झूमती उछलती तानें प्रयोग की जाती हैं। आलाप का काम नहीं दिखाया जाता है। टप्पा में

छोटी-छोटी दानेदार तानें, बोलतानें, मुकह्न, खटका, जमजमा से सुशोभित होतीं हैं। टप्पा में स्वरों पर विश्रान्ति नहीं होती। कठिन स्वर समुदायों की तानें लेकर सम पर आना टप्पा की विशेषता है। इसकी विशेष तालें हैं-पंजाबी, अद्धा, सितारखानी, पश्तो आदि

"शोरी मियाँ के शिष्यों में मियाँ गम्मू और ताराचंद्र प्रसिद्ध हुये। मियाँ गम्मू के सुपुत्र शादी खाँ जो कि बनारस के राजा उदितनारायण सिंह के यहाँ राजगायक थे। टप्पा अंग से गाये जाने वाले ख्यालों को 'टप्प ख्याल' कहते हैं। ग्वालियर घराने के हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, निसार हुसैन खाँ ने ये शैली अपने शिष्यों को सिखलाई जिनमें श्री शंकरराव पंडित, श्री गनपतराव पंडित, श्री एकनाथ पंडित आदि उल्लेखनीय हैं। पश्चात् में श्री कृष्णराव पंडित, श्री लक्ष्मण कृष्णराव पंडित, श्री बाला साहेब पूँछवाले, श्री एकनाथ सरोलकर, श्री शरतचन्द्र अरोलकर ने इस गायकी को संरक्षण दिया। इलाहाबाद के पंडित भोलानाथ भ्र तथा गया के पंडित रामू जी तथा बंगाल में श्री निधु बाबू ने इसे विशेष प्रचलित किया। बनारस में बड़े रामदास जी इस गायकी के उत्कृष्ट गायक थे।

बनारस घराने में पुरुष कलाकारों के अतिरिक्त महिला गायिकायें भी इस विधा के गायन में दक्ष थीं जिनमें सिद्धेश्वरी देवी, रसूलन बाई, गिरिजा देवी, सविता देवी के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त सुमति मुटाटकर, शन्नो खुराना इत्यादि के नाम प्रसिद्ध हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. भारतीय संगीत सरिता - प. 136, डॉ. रमा सराफ, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली 8186700404 (ISBN) 2003
2. वही - प 136
3. पंजाब की संगीत परम्परा - प 56
4. वही - प 56
5. वही - प 58
6. हिन्दुस्तानी गायन शैलियों में निहित पदों का साहित्यिक अवलोकन - पृ 186, डॉ. सुमन, नैतिक प्रकाशन, राजेन्द्र नगर, गाज़ियाबाद, 2013
7. भारतीय संगीत सरिता - प. 136 डॉ. रमा सराफ, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली 8186700404 (ISBN) 2003

संस्थागत शिक्षा पद्धति में संगीत शिक्षण को प्रभावशाली बनाने हेतु सहायक सामग्री की उपयोगिता

Dr. Anjalee Narayan

Abstract

संगीत स्वयं एक शिक्षा पद्यति है जिसके माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने पर उनके चहुंमुखी विकास में वृद्धि होती है। संगीत के इन्हीं चमत्कारी गुणों को देखते हुए, विद्यार्थियों की शिक्षा पद्यति के प्रत्येक स्तर पर, विद्वान व दार्शनिक, अन्य विषयों के साथ, संगीत शिक्षा की संस्तुति भी समय समय पर करते रहे हैं। यथाक्रम, समय के साथ-साथ, संगीत शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा स्तर से स्नातकोत्तर, शोध-कार्य व अनुसंधान के स्तर तक विकसित होकर, संस्थागत शिक्षा पद्यति में स्वतंत्र रूप में समावेश कर चुकी है।

तथापि, अन्य विषयों के भाँति, संगीत शिक्षा का सामूहिक शिक्षण पद्यति अनुसार निष्पादन उसकी परिमितता है जिसके फलस्वरूप उसका गुणात्मक विकास नहीं हो पा रहा है। इसलिये, वर्तमान युग की वैज्ञानिक उपलब्धियों के उपयुक्त उपयोग से, संगीत की कक्षा शिक्षण को, प्रभावपूर्ण बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास अपेक्षित हैं।

विषय कथन : *"संस्थागत शिक्षा पद्धति में संगीत शिक्षण को प्रभावशाली बनाने हेतु सहायक सामग्री की उपयोगिता"*

उद्देश्य : *संगीत की वर्तमान संस्थागत सामूहिक शिक्षण प्रणाली का संक्षेप में अध्ययन और उनकी परिमितितायें व उनके समस्या समाधान हेतु सहायक सामग्री का अध्ययन कर उनकी उपयोगिता ज्ञात करना।*

प्राक्कल्पना : *(सकारात्मक) - संगीत शिक्षण में सहायक सामग्री के प्रयोग से गुणात्मक वृद्धि में कोई प्रभाव पड़ेगा।*

शोध प्राविधि : *व्याख्या, विवरण और वर्णन प्राविधि*

निष्कर्ष : *संगीत की सामूहिक शिक्षण पद्यति में गुणात्मक वृद्धि के लिए वैज्ञानिक साधनों की उपयुक्त सहायक सामग्री को चयनित करना, जिनके प्रयोग से विषय को रोचक, सरल व बोधगम्य बना कर भविष्य में अपेक्षित परिणाम प्राप्त किया जा सके।*

संकेत-शब्द : 1. संस्थागत 2. शिक्षा 3. पद्यति 4. संगीत शिक्षण 5. सहायक सामग्री

मानव सभ्यता के विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा वह सम्बल है जिसके आधार पर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का सर्वांगीण विकास निर्भर करता है। शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण उन्नति का महत्त्वपूर्ण साधन है, उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व के विकास का सोपान है। शिक्षा बालक की अन्तर्निहित शक्तियों को उभारकर उन्हें पूणरूपेण विकसित करती है।

शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शक्' धातु से बना है जिसका अर्थ है- शिक्षा प्रदान करना, मार्गदर्शन करना, निर्देश देना तथा आज्ञा देना आदि। शिक्षा शब्द अंग्रेजी भाषा के Education

Assistant Professor, Manipal University Jaipur, anjalee.narayan@jaipur.manipal.edu

का हिन्दी रूपान्तरण है।

"शिक्षा वह प्रक्रिया है जो विद्यार्थियों के अन्तर्निहित गुणों या शक्तियों का प्रगटीकरण करके उसका विकास करते हुए उसे प्रशिक्षित करती है।"

भारतीय विचारधारा के अनुसार **"शिक्ष्यते उपदिश्यते यत्र सा शिक्षा"**

अर्थात् जिस माध्यम अथवा पद्धति के द्वारा विशिष्ट प्रकार का ज्ञान अथवा उपदेश दिया जाता है, उसे शिक्षा कहते हैं।

महात्मा गाँधी कथित - ''शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जो बालक और मनुष्य के शरीर, मन व आत्मा के सर्वोत्त.ष्ट एवं सर्वांगीण विकास करे।''1

Main Paper

शिक्षा मनुष्य के एक ओर ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं भावनात्मक पक्ष का सन्तुलित विकास करती है तो दूसरी ओर उसको समाज के लिए उपयोगी भी बनाती है। प्रत्येक शैक्षणिक संरचना समाज की आवश्यकताओं तथा विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास को देखते हुए शिक्षा के हर स्तर पर ज्ञानार्जन हेतु कुछ लक्ष्य निर्धारित करती है एवं उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पठनीय विषयों का निर्धारण करती है जैसे - गणित, विज्ञान, साहित्यिक विषय एवं ललित कलायें आदि।

ललित कलाओं की विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है जिसे सभी शिक्षाविदों ने अनुभव किया है। ललित कलाओं की शिक्षा के अन्तर्गत संगीत शिक्षा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। क्योंकि संगीत शिक्षा के द्वारा संस्कृति, रचनात्मकता, एकाग्रता एवं परस्पर सहयोग की भावना विकसित होती है। संगीत कला प्राचीन काल से ही मानव की सहचरी रही है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही संगीत किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। जिसके स्पष्ट संकेत हमें प्राचीन कालीन भारतीय इतिहास के साक्ष्यों से प्राप्त होते है।

संगीत कला केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं है वरन् बौद्धिक, संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का भी पोषक है। यह ज्ञान की सर्वोच्च शाखाओं में से एक है। अतः संगीत मानव जीवन को समृद्ध बनाती है तथा जीवन को नया अर्थ प्रदान करती है।

प्लेटो के अनुसार - "Music is a moral law, it gives a soul to the universes wings to the mind, fight to the imagination charm to sadness gaity and life to everything.2

अतः कोई भी शिक्षा संगीत के बिना अपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है।

वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीक युग में विज्ञान आदि विषय मनुष्य के बौद्धिक विकास में तो सहायक सिद्ध हो रहे है परन्तु मानव व्यक्तित्व के आध्यात्मिक, दार्शनिक सौन्दर्यात्मक एवं नैतिक पक्षों को विकसित करने हेतु संगीत कला एक सशक्त माध्यम है।

मदन लाल व्यास जी कहते हैं- "संगीत एक शिक्षा पद्धति है, जिससे ज्ञान का अनुभव मिलता है, हमारी चेतना उद्दीप्त होती है। अर्थात् संगीत स्वयं में एक शिक्षा पद्धति है और यदि इस शिक्षा पद्धति के माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करें तो उनके चहुँमुखी विकास में वृद्धि होती है। विश्व विख्यात महान दार्शनिक 'प्लेटो' ने संगीत का विद्यार्थियों के शिक्षण में महत्त्व को बताते हुए लिखा है कि एक सफल शिक्षक कैं संगीतज्ञ भी होना आवश्यक है, क्योंकि अन्य सभी विषयों से बढ़कर संगीत ऐसा माध्यम है जो न केवल मानसिकता को प्रशिक्षित करता है, वरन् मनोभावों को भी प्रशिाति करता है

उन्हें विशुद्ध स्वरूप प्रदान करता है।"

संगीत के इन्हीं चमत्कारी गुणों को देखते हुए विभिन्न विद्वान व दार्शनिक विद्यार्थियों को शिक्षा के हर स्तर पर अन्य विषयों के साथ ही संगीत शिक्षा की संस्तुति समय-समय पर करते रहे हैं। भारतीय परिवेश में इसकी शिक्षा प्रणाली पर दृष्टि डालें तो इसकी शिक्षा के मुख्य दो आधार दिखते हैं- प्राचीन गुरुकुल प्रणाली जो धीरे-धीरे घरानों के दायरे में बँधकर दी जाती रही है। घराना पद्धति जिसे संगीत शिक्षा के लिए उत्तम पद्धति के रूप में आज भी उपयुक्त माना जाता रहा है परन्तु जिस प्रकार एक ही स्थान पर रूके जल में दुर्गन्ध व दोष उत्पन्न होने लगते हैं उसी भाँति संगीत शिक्षा की इस उत्तम प्रणाली में भी कुछ विषमताएँ, दोष दृष्टिगोचर होने लगे फलतः बुद्धिजीवियों नें इस बात पर बल देना प्रारम्भ किया कि संगीत को इस संकुचित दायरे से निकालकर इस गरिमापूर्ण अति आवश्यक, उत्तम कला की शिक्षा सर्वसुलभ हो जनहित हेतु प्रयोग में लाई जा सके। फलतः संगीत शिक्षा के क्षेत्र में एक और पद्धति का सूत्रपात विद्यालयीन शिक्षा के रूप में हुआ। संगीत के क्षेत्र में विद्यालयीन शिक्षा व्यवस्था का श्री गणेश तो सन् 1886 से ही प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु ये प्रयास संगीत विद्यालयों तक ही सीमित था।

सरकार एवं शिक्षाविदों के प्रयास से सन् 1929 में अन्य विषयों के साथ पाठ्यक्रम के अन्तर्गत संगीत को महत्व प्राप्त हुआ तथा इसी वर्ष प्राइमरी व माध्यमिक विद्यालयों में संगीत शिक्षा सम्मिलित कर ली गई। चौथी व पाँचवी कक्षाओं में संगीत को ऐच्छिक विषय के रूप में सम्मिलित किया गया।[3]

सन् 1948-49 ई. में जत्थार समिति का गठन हुआ। सन् 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन) का गठन किया गया जिसमें आयोग ने माध्यमिक विद्यालयों में भी अन्य विषयों के साथ संगीत विषय को सम्मिलित करने का सुझाव दिया। फलतः उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग ने संगीत को उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा में पूरी तरह पाठ्यक्रम में ले लिया।[4]

इस प्रकार सरकार व शिक्षाविदों के प्रयास से इस कला को एक विषय के रूप में माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान मिला तदुपरान्त संगीत विषय उच्चतर माध्यमिक, स्नातक व स्नातकोत्तर कक्षाओं में भी पढ़ाया जाने लगा। किन्तु संगीत शिक्षा की जो शिक्षण व्यवस्था लागू की गई उनके बन्धन में बँध यह कला पूर्ण विकास के मार्ग में अग्रसर होने में अक्षम हो रही है क्योंकि विद्यालयीन शिक्षा व्यवस्था की अपनी समस्याएँ, बन्धन व आवश्यकताएँ, नियमावली है जिनसे इच्छित फल प्राप्ति हो पाना दुरुह कार्य सिद्ध हो रहा है। क्योंकि संगीत एक क्रियात्मक कला है, अन्य विषयों के समान इसे लिखकर या पढ़ाकर कार्य पूर्ण नहीं हो सकता है बल्कि इसे विद्यार्थी को कंठ से निसृत करना पड़ता है, हाथों से आकार देना पड़ता है व अंग संचालन व भाव-भंगिमाओं से रंग भरना होता है। इस हेतु संगीत शिक्षा व्यवस्था में गुरु का समीप होना अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि शिक्षा प्राप्ति की सही दिशा तभी निर्धारित हो सकती है जब ज्ञान प्राप्ति के साथ ही उसके निरीक्षण-परीक्षण, त्रुटि निवारण के साथ ही पृष्ठ पोषण भी प्राप्त होता रहे। परन्तु विद्यालयीन शिक्षा पद्धति के सीमित दायरे, सीमित समय व सामूहिक शिक्षा प्रणाली में सम्भव नहीं है और समस्या यह है कि संगीत की प्रभाव पूर्ण सामूहिक शिक्षण पद्धति के परिष्कार व विकास के लिए विद्वतजन उदासीन हैं।

अतः हमें पुनः इस शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिपात करने, पुनः निरीक्षण व परीक्षण कर ठोस हल निकालने की आवश्यकता है।

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है जिसमें विज्ञान के नित नवीन आविष्कारों ने ज्ञान की अनेक शाखाओं के साथ ही प्रगति हेतु अनेक साधन सुलभ कर दिये हैं। विज्ञान के इन नित हो रहे आविष्कारों की सहायता से विद्यालयीन शिक्षण व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन लाया जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न सहायक साधनों को सहायक सामग्री के रूप में परिभाषित किया जाता है। इन साधनों का प्रयोग कर संगीत शिक्षा पद्धति में भी सहायता की जा सकती है और धनात्मक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

सहायक सामग्री :

शिक्षा में सहायक सामग्री से आशय उन पदार्थों, वस्तुओं और सामग्री से है जो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सरल, रोचक तथा प्रभावशाली बनाते हैं तथा छात्रों की श्रव्य एवं दृश्य इन्द्रियों को प्रभावित करते हुए शिक्षक को शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग प्रदान करते हैं।[5]

एलविन स्ट्रॉंग के अनुसार- "सहायक सामग्री के अन्तर्गत वे सभी साधन आते हैं जिनकी सहायता से छात्रों की पाठ में रूचि पैदा होती है तथा वे पाठ को सरलता पूर्वक समझते हुए अधिगम के उद्देश्यों को प्राप्त करते है।"

इसी प्रकार के विचार विद्वान कार्टर ए. गुड ने भी व्यक्त किये है कि "कोई भी ऐसी सामग्री जिसके माध्यम से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को उद्दीप्त किया जा सके अथवा श्रवणेन्द्रिय संवेदनाओं के द्वारा आगे बढ़ाया जा सके सहायक सामग्री कहलाती हैं।[6]

संगीत एक जटिल, शास्त्रीय एवं तकनीकी विषय हैं। संगीत से सम्बन्धित विषय वस्तु जहाँ कहीं भी छात्रों को जटिल प्रतीत होती है, वहाँ पर अध्यापक को किसी अन्य उपकरण की सहायता से विषय वस्तु को सरल करना पड़ता है। पाठ के विकास तथा स्पष्टीकरण हेतु अध्यापक जिन विविध उपकरणों व वस्तुओं का प्रयोग करता है उन्हें हम संगीत से सम्बन्धित सहायक सामग्री कह सकते हैं।

संगीत सहायक सामग्री का वर्गीकरण

सहायक सामग्री

1. दृश्यात्मक	2. श्रव्यात्मक	3. दृश्य एवं श्रव्यात्मक
1. चित्र	2. रेडियो	1. दूरदर्शन
2. मानचित्र	3. ग्रामोफोन	2. सिनेमा
3. चार्ट	4. टेप-रिकार्डर	3. संगीतसम्मेलन
4. डायग्राम	5. प्रोजेक्टर एपिडायस्कोप	4. कम्प्यूटर
5. मॉडल	6. लहरा व तबलापेटी	5. इण्टरनेट
6. वास्तविकपदार्थ		
7. पुस्तक		
8. स्क्रेपबुक		

1.दृश्यात्मक सामग्री

कक्षा में छात्रायें जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त करती हे उसका आधार संवेदी अनुभव होते हैं। शिक्षण में दृष्टि से सम्बन्धित सहायक सामग्री बहुत महत्वपूर्ण होती है। यह ध्वनि रहित सामग्री है परन्तु संगीत शिक्षण में इसका प्रयोग कर शिक्षण को सुगम बनाया जा सकता है। प्रमुख दृश्यात्मक

सामग्रियों में निम्नलिखित सामग्रियों को संगीत शिक्षण हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है :-

(i) चित्र-इस श्रेणी में फोटोग्राफ या छुपे हुए चित्र आते हैं। संगीत में ये चित्र प्रायः संगीतज्ञों, स्वर यन्त्रों या वाद्यों, वादन की विभिन्न स्थितियों, नृत्य की विभिन्न मुद्राओं एव ंअंग-संचालन से सम्बन्धित होते हैं। इनसे विद्यार्थियों को संगीत की बहुत सी विशेषताओं का ज्ञान होता है।

(ii) मानचित्र-संगीत के सैद्धान्तिक पक्ष का अध्ययन करने में भी कभी-कभी नक्शें की सहायता ली जाती हैं। इनके द्वारा छात्रों को महान संगीतज्ञों के जन्मस्थान, संगीत सम्मेलनों के स्थान, घराना से सम्बन्धित विभिन्न स्थानों की जानकारी दी जा सकती है।

(iii) चार्ट-चित्रों की भाँति चार्ट प्रायः कागज पर ही बनाये जाते हैं। इनमें प्रायः बड़े डायग्राम, तारीखों सम्बन्धी सूची बड़े ग्राफ इत्यादि होते हैं। संगीत में वाद्यों के चार्ट, नोटेशन चार्ट, सप्तक चार्ट, घराना, शिष्य-परम्परा, कलाकारों के चार्ट आदि ऐसे अनेक चार्ट का प्रयोग प्रशिक्षण में किया जाता है।

(iv) डायग्राम- यह चार्ट का ही एक रूप है। डायग्राम विषय वस्तु की सरल, संक्षिप्त तथा चित्रमय अभिव्यक्ति को कहते हैं। डायग्राम पाठ के विकास के लिए सहायक सिद्ध होते हैं।

(vi) वास्तविकपदार्थ- कक्षा में सहायक सामग्री के रूप में वास्तविक पदार्थ लाने से यह लाभ है कि यह पदार्थ को जानने का सीधा रास्ता है। यह विद्यार्थियों में रुचि बढ़ाने में सहायक होते हैं।

(vii) पुस्तकें-संगीत शिक्षा की एक महत्वपूर्ण सहायक सामग्री व स्रोत पाठ्य पुस्तकें भी हैं। संगीत यद्यपि क्रियात्मक कला है तथापि संगीत के सैज्ञान्तिक व क्रियात्मक दोनों ही पक्ष लिपिबद्ध रूप में पुस्तकों में ही संरक्षित होते हैं। अतः पुस्तकें संगीत विषय को जानने में सहायक सामग्री के रूप में बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

(viii) स्क्रेपबुक-इन पुस्तिकाओं में प्रिय व रुचिकर गीतों का संग्रह, विविध वाद्यों के चित्र, आदि संग्रहित करते हैं।

2. श्रव्यात्मक सामग्री

श्रव्यात्मक सामग्री ध्वनि पर आधारित सहायक सामग्री है। शिक्षण संस्थाओं के बंधे हुये समय में बहुत कुछ सिखाने के लिये इनका प्रयोग हितकारी सिद्ध हो रहा है क्योंकि इनकी सहायता से संगीत शिक्षण प्रणाली बहुत ही प्रभावपूर्ण बनाई जा सकती है:-

(i) रेडियो व ट्रांजिस्टर -ये दोनों ही एक ही प्रकार के यन्त्र हैं जिनमे हम ध्वनि को सुन सकते हैं। इन माध्यमों में वर्तमान समय में शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, फिल्म संगीत, वाद्य संगीत, नाट्य आदि विभिन्न विधाओं के कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं जिनको कक्षा में सुनवाया जा सकता है।

(ii) ग्रामोफोन-ग्रामोफोन भी प्रमुख श्रव्यात्मक सामग्री में से एक साधन है, इनमें रिकॉर्ड संगीत की विभिन्न विधाओं को भी कक्षा शिक्षण में उपयोग में लाया जा सकता है।

(iii) टेपरिकॉर्डर-यह ग्रामोफोन का ही विकसित रूप है। विद्यार्थी इसमें अधिक रुचि लेते हैं। छात्र इससे स्व-शिक्षा व अभ्यास हेतु सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

(iv) वाकमैन-यह उपकरण कैसेट रिकॉर्डर का एक छोटा मॉडल होता है। इसमें कैसेट चलाने के अतिरिक्त ध्वन्यांकन करने तथा रेडियो व एफ.एम. चैनल सुनने की सुविधा होती है।

(v) एम. पी. 3 प्लेयर-यह एक छोटा उपकरण होता है जिसमें ध्वन्यांकन, श्रव्य सामग्री आदि संग्रहित करने की सुविधा होती है। ध्वन्यांकन के अतिरिक्त अन्य कोई भी सामग्री कम्प्यूटर के माध्यम से डाली जा सकती है।

(vi) इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा, लहरा या तबलापेटी-यह इलेक्ट्रॉनिक उपकरण कक्षा में संगतकर्ता की अनुपस्थिति में लहरा अथवा तबला ठेका देने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। इनकी विशेषताओं को देखते हुए संगीत कक्षा शिक्षण में इनका प्रयोग बहुतायत से लिया जा रहा है।

3. दृश्य एवं श्रव्यात्मक सामग्री

इनमें वे उपकरण आते हैं जो देखे व सुने जा सकते हैं। विषय के स्पष्टीकरण के दृष्टिकोण से यह सबसे उपयोगी हैं। इनमें निम्न उपकरण लिये जा सकते हैं :-

(i) टेलीविजन या चलचित्र- टेलीवविजन पर विद्यार्थियों के लिये विषय से सम्बन्धित कई कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। विशेषकर शास्त्रीय संगीत, नृत्य, वादन, लोकनृत्य गीत आदि के कार्यक्रम देखने व सुनने को मिलते हैं।

(ii) प्रोजेक्टर व एपीडायस्कोप- ये दोनों वस्तुएँ संगीत शिक्षा के महत्त्वपूर्ण आधुनिकतम किन्तु मंहगें साधन हैं। संगीत अध्यापक इनके द्वारा छोटी-2 स्लाइड जो कि विषय वस्तु से सम्बन्धित होती है, उनको दिखा सकते हैं।

(iii) एम.पी. 4 प्लेयर- इस उपकरण में एम. पी.3 में निहित सारी सुविधाओं के अतिरिक्त दृश्य सामग्री का संकलन भी किया जा सकता है।

(iv) आईपैड-दृश्य एवं श्रव्य सामग्री वाले उपकरणों में यह सर्वाधिक क्षमता एवं गुणवत्ता वाला उपकरण होता है। एम. पी.3 व एम.पी.4 में दिये गये सभी विकल्प वृहद्द रूप में इनमें उपलब्ध होते हैं।

(v) कम्प्यूटर व लैपटॉप- एक ऐसा इलेक्ट्रॉनिक यन्त्र है जो प्रयोगकर्ता द्वारा दी गई सूचना को ग्रहण करता है, तत्पश्चात् यह उन सूचनाओं पर निर्देशानुसार कार्य करके तीव्र गति से पूर्णतः शुद्ध परिणाम प्रदान करता है। कम्प्यूटर अनुदेशनात्मक कार्यक्रम को प्रस्तुत करने का अत्यन्त प्रभावशाली यंत्र है। कम्प्यूटर विद्यार्थियों के प्रारम्भिक ज्ञान के आधार पर अधिगम सामग्री का चयन करता है। यह इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर की सहायता से सूचनायें प्रदान करता है। कम्प्यूटर सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक की सहायता करता है।

(vi) इण्टरनेट- इण्टरनेट वस्तुतः कम्प्यूटरीकृत नेटवर्किंग सेवा है जिसको सूचना के संसार के आधुनिकतम तीव्रतम माध्यम के रूप में जाना जाता है।

(vii) संगीत सम्मेलन- संगीत सम्मेलन संगीत शिक्षण की एक महत्वपूर्ण स्रोत व पाठ्य सहगामी क्रिया है। संगीत शिक्षण मे अनौपचारिक रूप से इनका उपयोग सहायक सामग्री के रूप में किया जा सकता है। यह छात्रों को संगीत का विशद् ज्ञान प्रदान करने में सहायक सिद्ध होते

हैं।

उपर्युक्त वर्णित समस्त सामग्रियों व उपकरणों से विद्वतजन भली-भाँति परिचित ही हैं अस्तु विषय-वस्तु को अत्यधिक विस्तार से बचाते हुए इनके लाभ पर ध्यान केन्द्रित किया जाना ही उचित प्रतीत होता है।

संगीत की तीनों ही विधाओं (गायन, वादन व नृत्य) के शिक्षण में समस्याएँ दृष्टिगोचर हो रही है जिनमें इन सहायक सामग्रियों का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु संगीत विधा के अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था में इन सामग्रियों का उपयोग कर किस प्रकार लाभ किया जा सकता है, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है :-

1. वैज्ञानिक उपकरणों की उपलब्धता से गायन, वादन व नृत्य, तीनों ही विधाओं के अभ्यास और साधना हेतु अनेक सुविधाओं का प्रयोग कर लाभान्वित हुआ जा सकता है जैसे लहरा पेटी, स्वर पेटी, मैट्रोनम, सैलफोन, टेप रिकॉर्डर आदि।

2. शिक्षण संस्थाओं में बँधे हुए समय में बहुत कुछ सिखाने के लिए भी नवीन उपकरण सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जैसे, समय सीमा को देखते हुए शिक्षक जो कला प्रदर्शन कर के दिखाये उन्हें रिकॉर्ड करके पुनः खाली समय में देखा व सुना जा सकता है।

3. इन उपकरणों की सहायता से शिक्षक द्वारा सिखायी गई बन्दिशों को आसानी से याद किया जा सकता है। इससे भूलने की गुन्जायश नहीं रहती है व त्रुटियों का घर बैठे निवारण हो सकता है।

4. शिक्षक जब संगीत की विभिन्न विधाओं में प्रयुक्त शैलियों की तकनीकी जानकारी सामूहिक रूप से कक्षा में देते हैं तो समय सीमा को देखते हुए विस्तार से समझाने में समय बीत जाता है व कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ छूट जाती हैं, ऐसे में सहायक सामग्री (टेप रिकॉर्डर, सैलफोन) द्वारा मदद मिल सकती है।

5. विद्यालयीन प्रणाली में शिक्षक केवल संगीत विषय का ही होकर नहीं रह पाता है, उसे मजबूरी या ये कहे कि अनेक प्रशासनिक गतिविधियों, काग़जी कार्यवाहियों में भी व्यस्त हो कक्षा छोड़नी पड़ती है, ऐसी स्थिति में उनकी अनुपस्थिति में ये उपकरण सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

6. संगीत की विभिन्न घरानों की प्रदर्शन शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन करवाते समय यह आवश्यक नहीं है कि शिक्षक स्वयं सभी की जानकारी उतने विस्तार से दे पाये। ऐसे समय पर कलाकारों के पूर्व रिकॉर्ड किये संगीत को कक्षा में सुनवाकर लाभ प्रदान किया जा सकता है।

7. संगीत जगत के विद्वान एवं संगीतज्ञ सदैव से उचित अभ्यास को महत्त्व देते आये हैं जबकि वर्तमान शिक्षण प्रणाली में सीखने वाले विद्यार्थियों को उचित अभ्यास तो दूर उचित रूप से सीखने के लिए भी पूर्ण समय नहीं मिल पाता है। इस कमी के निवारण में भी ये उपकरण सहायक सिद्ध हो सकते है।

8. संगीत में व्यक्तिगत रूप से सीखना अत्यन्त आवश्यक बिन्दु है, परन्तु सामूहिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षक एक-एक विद्यार्थी पर उचित व पूर्ण ध्यान नहीं दे पाता है। इस समस्या का समाधान भी विद्यार्थी सहायक सामग्रियों से प्राप्त कर सकते है। वे अपने शिक्षक की रिकॉडिंग घर बैठे देख व सुनकर अपनी त्रुटियों को दुरुस्त कर सकते है।

9. सहायक सामग्रियों के माध्यम से विविध विचारों को एक साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। स्वर एवं वर्णों का शुद्ध निकास, विभिन्न घरानों में गाई व बजाई जाने वाली बंदिशों की

तकनीकी भिन्नता आदि की उचित व तुलनात्मक जानकारी कक्षा में ही शिक्षक कलाकार की रिकॉर्डिंग सुनवाकर दे सकता है।

10. मंच प्रदर्शन की कला का ज्ञान भी शिक्षक स्वयं कक्षा में प्रस्तुत करेते ही हैं, साथ ही वास्तविक रूप से मंच का ज्ञान कक्षा में ही इन्टरनैट की सहायता से दिया जा सकता है।

संगीत में एक कहावत है देख्या परीख्या व सीख्या, यानि संगीत की शिक्षा जितनी प्रत्यक्ष रूप से गुरु से सीख कर पायी जाती है, उतनी ही देखने, सुनने व गुनन-मनन करने से बढ़ती है। अतः विद्यालयीन शिक्षण व्यवस्था में विद्यार्थियों को संगीत सम्मेलन आदि में ले जाने की यदि असमर्थता आ रही हो तो ऐसी स्थिति में भी उन्हें कक्षा में ही कलाकारों द्वारा दी गई मंच प्रस्तुति के कार्यक्रमों को कम्प्यूटर, लैपटॉप या सैलफोन पर इन्टरनैट की सहायता से दिखाये जा सकते है व उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कराया जा सकता है।

अतः आज के युग में विज्ञान की इतनी उपलब्धियाँ है कि उनकी सहायता से कक्षा शिक्षण की प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

विद्यालयीन संगीत शिक्षण प्रणाली को अधिक न्यायसंगत बनाने के लिए नवीन एवं प्रगतिशील प्रयोग का प्रयास करना चाहिए। यह ज्ञानवर्धन के लिए अति प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हो सकते है। अतः विद्यालयीन शिक्षण को रूचिकर बनाने, गुणवत्ता बढ़ाने में इनके प्रयोग से सहायता हो सकती है व स्तर की उन्नतिशीलता व एकरूपता स्थापित हो सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. समकालीन भारत एवं शिक्षा - यादव डॉ. हलधर, गुप्ता डॉ. अरुणा, गुप्ता डॉ. वंदना - ठाकुर पब्लिशर्स, लखनऊ, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-94
2. भारतीय संगीत की परंपरा, वंशानुक्रम एवं वातावरण - गोस्वामी डॉ. हरी किशन - कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-6
3. Experiments in Music Teaching - Kumari V. Prem - Radha Publications, New Delhi, First Edition, Pages 8.
4. Experiments in Music Teaching - Kumari V. Prem - Radha Publications, New Delhi, First Edition, Pages 10.
5. संगीत शिक्षण, शाह डॉ. शोभना - श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ-168
6. शिक्षा के आधार, अग्रवाल जे. सी., गुप्ता एस. - शिप्रा पब्लिकेशंस, शकरपुर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-201

लोकगीतों के विविध आयाम : लोकधर्मी कवि श्री रामस्वरुप लाल 'मंगल' जी की गेय रचनाओं के सन्दर्भ में एक व्यक्तिक अध्ययन

मनोहर कृष्ण श्रीवास्तव, डॉ. संगीता पंडित

लोक क्या है? इस शब्द की उत्पत्ति कैसे और कब हुई है? इस विषय में बताना अत्यन्त मुश्किल है। लोक शब्द आलोक से विकसित है। जो प्रकाश देने या प्रकाशित करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अवधी भाषा में 'लौकत' शब्द देखने के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 'लोक' शब्द लोक धातु से बना है। जिसका भाव है 'देखना'। लोक हमें दिखाता है और हम लोक को आत्मीयता के साथ देखते हैं तो लोक साहित्य की रचना होती है। जो लोक धार्मिकता को प्रदर्शित करती है। ऋग्वेद में एक मन्ष है- 'देहि लोकम्' यहाँ जन के भी अर्थ में अनेक स्थानों पर लोक शब्द प्रयुक्त हुआ है।

सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार, 'लोक' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'लोक' दर्शने धातु में 'धञ्' प्रत्यय से हुई है। जिसका अर्थ है देखना। लोक शब्द का अर्थ संसार से होता है।

राम नाम कलि अभिमत दाता
हित परलोक लोक पितु माता।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ
लोकहुँ वेद न आन उपाऊ।।

साथ ही लोक शब्द का प्रयोग सामान्य जनता के अर्थ में ऋग्वेद में जगह-जगह पाया जाता है। लोक साहित्य या लोकगीत श्रुति के माध्यम से परम्परा द्वारा लोक में प्रसारित है और जब तक लोग हैं इसका नैरन्तर्य अक्षुण्य बना रहेगा।

जीव और स्थान के अर्थ में भी गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है-

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई।।

भनिति वाणी या अभिव्यक्ति अर्थात् लोकधर्मी साहित्य नहीं हैं जो सुरसरि के समान सबका हित करें। लोक साहित्य सदियों से परम्पराओं में गंगा भाँति है। जिसमें निरन्तर समय के परिवर्तन के साथ-साथ आवश्यकतानुसार कुछ जुड़ता रहा है और जो अनावश्यक होता है वह छूट जाता है, क्योंकि संस्कृति सदैव प्रवाहित होती है, जो छूटता है, वह भी धरोहर के रूप में सुरक्षित रहता है। किन्तु शाश्वत जीवन मूल्य परिवर्तित नहीं होते हैं, उन्हें लोकगीतों की गंगा दूर-दूर तक पहुँचाती रहती है।

लोकधर्मी साहित्य वह है जिसमें लोक जीवन के अनुभव, विचार, समस्याएँ, सुख-दुःख और इन सबके समाधान, लोक मानव द्वारा सहज,

*शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005
**प्रोफेसर-गायन विभाग, संगीत मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

सुगम और मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त होते हों। जन मानस के जीवन के विभिन्न परिस्थितियों की अभिव्यक्ति जब गीतों के माध्यम से होती है तो उसे लोकगीतों की संज्ञा दी जाती है, जिसका एक व्यापक क्षेष है, इनमें संस्कार गीत, श्रमगीत, जाति सम्बन्धी गीत, ऋतु गीत, इत्यादि सम्मिलित हैं।

हमारे लोक संगीत साहित्य की परम्परा सर्वदा से ही समृद्ध रही है। ऐसे बहुत से साहित्यकार हुए हैं जिनका नाम संगीत साहित्य के अम्बर में एक ध्रुव तारे की तरह स्थापित हो चुका है। दूसरे शब्दों में उन्हें वो ऊँचाई मिल चुकी है वो नाम मिल चुका है जिसकी ख्याति पूरे लोक जगत के कोने-कोने में पहुँच चुकी है। लोक संगीत से जुड़ा-प्रत्येक व्यक्ति उनके नाम से परिचित हैं। हमारे भारतीय लोक साहित्य एवं संगीत जगत में बहुत से ऐसे महान गीतकार हुए हैं जिनकी रचनाओं से हमारे लोक संगीत का साहित्य समृद्ध हुआ है। इन महान गीतकारों में से एक नाम श्री रामस्वरूप लाल 'मंगल' जी का भी आता है। आप अपनी रचनाएँ 'मंगल' (उपनाम) के नाम से करते थें। इनका ये उपनाम (मंगल) लोक जगत में इतना प्रसिद्ध हुआ कि लोग इन्हें 'मंगल' जी या 'मंगल मुन्शी' के ही नाम से जानते हैं। मुन्शी जी वैसे ही सुकवि एवम् रचनाकार थे। उनकी रचनाओं में वे सभी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं जो एक स्थापित बहुत ऊँचे रचनाकार में होती है।

मुन्शी जी की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि वह मंच, माला, माइक से बहुत दूर रहना चाहते थे। अपनी रचना को सदैव आत्मजा मानते रहे। हजारों शिष्यों के बावजूद मुन्शी जी ने किसी से अपनी रचना का एक पैसा नहीं लिया। उनकी रचनाओं को उतनी प्रसिद्धि नहीं मिली, जितनी उन्हें मिलनी चाहिए थी, उनकी रचनाओं से प्रेरित होकर लोग महानकवि हो चुके हैं। उन्हें पूरा समाज, एक सुकवि के साथ-साथ संत स्वरूप भी मानता रहा है।

मंगल मुन्शी जी ने अपनी काव्यगत रचना शैली के माध्यम से भोजपुरी लोकगीतों की लोकधर्मिता को एक नया आयाम दिया है। इसी वजह से आपकी पहचान पूरे पूर्वांचल में 'भोजपुरी सम्राट' की है। मंगल मुंशी जी ने भोजपुरी एवं खड़ी हिन्दी के गीतों की ऐसी परिपाटी विकसित की जिसकी सुगन्ध आज भी सभी को रोमांचित कर रही है।

आपकी साहित्यिक प्रतिभा को जानकर 'अमेरिकन बायोग्राफीकल इन्स्टीट्यूट' ने इन्हें 'मैन अ०फ दी ईयर' के सम्मान के लिए नामांकित किया, इन्हें पष भी भेजा परन्तु महात्मा गाँधी के परम अनुयायी इस सुकवि ने यह सम्मान ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। मंगल मुन्शी की साहित्यिक साधना बाल्यकाल से ही शुरू हो गई जो कि अन्तिम श्वांस तक चली। आपके द्वारा रचित भजन, देशभक्ति लोकगीत, जैसे कजरी दादरा खेमटा, चैती होली फाग बारहमासा, सोहर, लाचारी, कव्वाली इत्यादि अन्य गीतों को आकाशवाणी, दूरदर्शन व अन्य टी. वी. चैनलों व अन्य कार्यक्रमों में गायक कलाकारों के द्वारा सुना जा रहा है और सुनाया भी जाता है। मुन्शी जी को हिन्दी भोजपुरी, उर्दू, अरबी इत्यादि सभी भाषाओं का समग्र रूप से ज्ञान था। उनकी रचनाओं में इन सभी भाषाओं का प्रयोग दिखायी देता है।

रामस्वरूप लाल 'मंगल' जी का संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त

ऋषि परम्परा के अनुयायी एवं संत स्वरुप श्री राम स्वरुप लाल 'मंगल' जी अपने लोक अंचल के सुप्रसिद्ध कवि थे। उनकी रचनाएँ, लोक

काव्य साहित्य के पटल पर सर्वदा अंकित रहेगी। मंगल मुंशी जी के व्यक्तित्व को एक कवि रुप में जाना जाता है, परन्तु मुंशी जी एक कवि माष नहीं थे वे एक बहुत भारतीय चिन्तक एवं विचारक थे और भारतीय संस्कृति के बहुत बड़े पुरोधा थे। उनकी रचनाएं भारतीय संस्कृति और देश भक्ति की भावनाओं से ओत प्रोत रहती थी। मीरजापुर जनपद के शस्य श्यामला भुइली परगना के 'भाईपुर कला' ग्राम में परम रामभक्त श्री अवध बिहारी लाल श्रीवास्तव के घर पूज्यामाता भागीरथी के गर्भ से एक बाल 6 जनवरी सन् 1925 को उत्पन्न हुआ। ये बचपन से ही सामयिक गीत, भक्ति गीत प्रमुख रूप से राष्ट्रीय गीतों को लिखने लगे थे। लोक संस्कृति के प्रति अटूट निष्ठा के साथ मंगल जी की सभी रचनाएँ लोक मंगल को होती थीं। लोकगीत का माधुर्य मर्मस्पर्शिता आमजन की संवेदना का सौष्ठव इन्हें समकालीन अन्य गीतकारों से अलग करता है।

विद्यार्थी जीवन में मंगल मुन्शी जी गुरु सेवक, कुशाग्र विद्यार्थी एवं सहयोगियों में अत्यन्त सम्मानित रहे। भाईपुर कला धार्मिक लोगों का ग्राम है। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है जहाँ सम्भ्रान्त लोगों द्वारा रामचरित मानस प्रायः हुआ करता था, आज भी होता है। मंगल मुन्शी जी वहाँ जरूर जाते थे जो सुनते थे अक्षरशः याद हो जाता था, पिता जी को सुनाते थे।

रामचरित मानस की एक चौपाई-

मंगल भवन अमंगल हारी
द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी।।

अवध बिहारी लाल के सुपुष को अर्थात् मंगल मुन्शी जी को इस चौपाई से बड़ी आत्मीयता हो गई। एकाएक उन्होंने अपनी रचनाओं में उपनाम 'मंगल' रख दिया।

मंगल मुन्शीजी की रचना महज शौक ही नहीं थी, यह पूजा बन गई थी जो एक नया-नया रूप लेकर प्रस्फुटित होती रही! वो प्रतिदिन 10-20 रचनाएँ करके लोगों में वितरित करते रहें। उर्दू की रचनाएँ भी इनकी सक्रिय रहीं आज तक कोई उर्दू का शायर ये मानने को तैयार नहीं है कि मुन्शी जी केवल हिन्दी के कवि थे, वह यही कहता है कि मंगल मुन्शी जी उर्दू अरबी के बहुत बड़े शायर थे, उनका अध्ययन काफी तेज था, उर्दू की शिक्षा भी उन्होंने हासिल की थी।

लोक भजन, कजरी एवं राष्ट्रगीतों की रचना मुन्शी जी की रचनाओं का प्रमुख विषय रहा। वे आर्थिक लाभ या रायल्टी के लिए रचनाएँ कभी नहीं लिखे। लोकगीत गायक (आकाशवाणी/दूरदर्शन) या विद्यालयी उत्सव या विभिन्न समारोहों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लोग जब निवेदन करते थे तत्काल अपने कागज अपनी स्याही से लिखकर वही उन्हें दे देते थे। उनका व्यापक संग्रह किसी एक स्थान पर उपलब्ध नहीं है।

मुन्शी मंगललाल जी साधुक्कड़ी एवं मधुकरी दर्शन में विश्वास रखने वाले महाकवि थे।नियति को टालना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। जीवनभर कविता, ग़ज़ल, भक्ति परक रचना, मुक्तक, सवैया, छन्द, पचरा, लोकगीत, देशभक्ति विरह, ऋतुगीत, चइता, फाग कजरी इत्यादि विभिन्न रचनाओं का रचयिता अपने समाज को, प्रदेश को असंख्य लोगों को पीड़ा देता हुआ एक महायात्र के लिए 83 वर्ष की अवस्था में 19 अप्रैल सन् 2008 को कदम बढ़ाया और उसकी सुकृति ने उन्हें स्वर्ग तक पहुँचाया।

आज भी उनके गीत गायकों द्वारा प्रतिदिन किसी न किसी आकाशवाणी केन्द्र या दूरदर्शन से प्रतिदिन सुनने को मिलता है। कई विधाओं

के मर्मज्ञ को ढूँढ पाना अब असम्भव सा हो गया है।

मंगल मुन्शी का न रहना इस लोक जगत को बहुत खल रहा है, वह एक अच्छे वादक भी थे। बाँस की बाँसुरी से लोकधुन के अलावा शास्त्रीय धुनों को निकाल कर मुंशी आनन्दित होते थे। तबला और ढोलक के वे मर्मज्ञ थे।

रामस्वरूप लाल 'मंगल' जी का साहित्यिक एवं सांगीतिक कृतित्व

किसी भी रचनाकार की सजीवता, क्षमता एवं विलक्षणता की पहचान उसके साहित्यिक सांगीतिक कृत्य के माध्यम से ही स्पष्ट होती है। मंगल जी सम्भवतः सभी विधाओं में अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए थे। लोकगीत की ऐसी कोई विधा नहीं है जिस पर मंगल जी ने अपनी रचना न की हो। वे ऐसे रचनाकार थे कि बिना कलम, कागज ही, कविता सवैया धनाक्षरी छन्द पूर्णतः मौखिक बोलते सुनाते चले जाते थे।

मंगल मुंशी जी के द्वारा रचित कुछ महत्वपूर्ण लोकगीतों के कुछ अंश इस शोध आलेख प्रस्तुत है जिन्हें गायक कलाकारों के द्वारा खूब गाया जाता है।

सवैया/मुक्तक

कंटक सी कटेके कुसुमावलि,
कोकिल कूकि कै हूक उठावै।
धानी धरा धधकावै हिया,
पपिया पपिहा छतिया सुलगावै।।
सालति बा सरसो सरसो,
बउराइ रसाल जिया बउरावै।
मंगलमय से इहै बिनती,
घर कन्त न हों त बसन्त न आवै।।

देश भक्ति लोक गीत

(1) गोलवा बरसै चाहे गोलिया,
पनिया बरसै या पथरवा
पहरू पहरा पै खड़ा।।
रस कै करत पसार जगत में,
जब आवै सावनवा
तबो न ताकै फेर के गर्दन,
घर की ओर जवनवा
मटिया मिललीं हो
मेंहदिया-बहि-बहि जाला कुल कजरवा
पहरू पहरा पै खड़ा।।

(2) छोट छोट मड़ई सांकर खोरी
बर पीपर के छांव में
आपन भरत बसैला भइया,
माटी वाले गाँव में।।
गोइंड़े छिछिल तलइया भीतर,
इहाँ कोइनियाँ मुसुकालीं
पाय पासीना खेतिहर
कै चहुँओर फसिलिया लहरालीं
हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई,
बन्हलैं नेह गरांव में
आपन भारत बसैला भइया,
माटी वाले गाँव में।।

लोक भजन

जेकर बाबा विश्वनाथ ऊ अनाथ कइसे।
जवन दुवारी सब दिन से दयाल हौ
जहवाँ भिखारी जाके भयल महिपाल हौ
कोई उहवों से लोटी खाली हाँथ कइसे
जेकर बाबा विश्वनाथ ऊ अनाथ कइसे।।

खेमटा

बची का हियरवा हटी का नजरिया
गजब तोरी बाँकी झाँकी रे सँवरिया।।टेक।।

तोहरी बा अइसन हे रघुबीर सुषमा
राउर दियाई त राउर से उपमा
सागर नपाई न लेके गगरिया- गज़ब तोहरी

चैती

अँगने में सेज लग दे रे ननदी चइत मास आयो।।
रचि-रचि सोरहों श्रृंगरवा सजा दे
ऐही मधुमास सरस 'मंगल' ऋतु
कइसो सजन से मिला देने ननदी।
चइत मास आयो।

कजरी

घेरि-घेरि आवै कारी रे बदरिया ना।
परदेश छाये हमरो सँवरिया ना।।
कंज के पास भँवर बीन बजावत आवै,
समीर मंद मंद गंध, लुआवत आवै
छहर-छहर के घटा जहर गिरावत आवै,
कूक कोकिल कै बिरह हूक उठावत आवै
पी पी पपिहा पुकारै, सोई सुधिया उभारै
तन जारै हाय मधुरी बयरिया ना।।
घेरी-घेरी.....

होली (चहका)

खेलै मसाने में हारी दिगम्बर खेलैं मसाने में होरी
भूत पिसाच बटोरी दिगम्बर
खेलैं मसाने में होरी।।
भूतनाथ की 'मंगल' होरी
देख सिहाय बिरज की छोरी
धन-धन नाथ अघोरी दिगम्बर

बारहमासा (फाग)

कहवां जाके बसे सजनवां मनवाँ लागे ना भवन में।।
खल चैत चढ़ल चातक चहकल कोकिल बोलल निमियाँ फूलल
मह मह महकल अमवां में लागल टिकोरा।
ग्रीसम आयल शर्दी बितल देहियां अलसल नौमी नियरल ब्रज
बाला विकल नहीं कइलै ख़्याल हरि मोरा।
घनश्याम ख्याल बिसराई, चन्दा रतिया के जलाई हवा चौवाई
अरे रह-रह अँचरा उधिराई
बैसाख बड़ा दुखदाई फेंकाई रजाई अरे आँगन में बिछि चारपाई
छोड़ सखी चल गइलैं भवनवा मनवां लागे ना ....
खेलैं मसाने में होरी .....

कव्वाली (भोजपुरी)

जान पउलेस ई कोई कबौं ना, रउरी अँखिया में का का भरल हौ
वाटै नीलम की प्यारी में अमृत, हो स्वदेशी सुरा कि गरल हौ।।
केश खोले अटरिया पै बइठल, हम लखला त हमके बुझाला
साँचो छत पै गगन कै अँजोरिया, आज बदरा सहित चुँइ पइल हौ।।

लचारी

परसों में बरसों गिनाइल हो, पतियो नाहीं आइल।। टैक।।
बिरही अगिनियाँ बुझावत-बुझावत, अँखिया कै अँसिया ओराइल हो
पतियो नाहीं आइल।।

दादरा

बिसारी जनी जइह पिरितिया लगा के।
निसारि जनी जइह नयनवाँ में आवे।।
ए जग में ई जिन्दगानी कमै दिन

ओहु में मौसम जवानी कमै दिन
बिता डाला ''मंगल'' गा के बजाके।।4।। बिसरी जनी

पूर्वी लोक गीत

चुनमुन तितिलिया बनके ज्यादा जिन घूमा
देखा ऐही नइहर में ननदो
अधिकौ लगै लैं ठगहार देखा ऐही ननइरहे में ननदो।।
बढ़के कटरिया से जुलुमी नजरिया, तेहूँ पर कोरे-कोरे
रखै लू कजरवा कै धार-देखा ऐही ननइरहे में ननदो।।

सोहर

काशी कै शोभा महादेव, अवध शोभा रघुवर हो
सखि हो गोकुला कै शोभा घनश्याम श्री मुरली मनोहर हो।।
अंजनी के गोंद हनुमान, कौशिल्या गोदी रघुवर हो।
यशुदा कै गोदिया कन्हइया सलोना बड़ा सुन्दर हो।।1।।

खेमटा

मेलवा लगन बा गुलजार मेलार घुमनी
मेलवा लगल गुलजार।।
छोट बड़ अपनी दुनिया सजा के बइठल बाहैं साहूकार
अपने सामान कै बखान करैं कुलिए - सुनतै लुभालै खरीददार
मेलवा लगल गुलजार।।

निर्गुण

पिया कब भेजवा डोलिया कहरिया उमिरिया सयान हो गइल
मन माँगैला गवनवाँ कै सरिया पियरिया पुरान हो गइल।।
दिन-दिन घटत देख सबकर दुलरवा लागै जहरवा सरिस नइहरवा
मन अहकैला कि हाय नहकै जिनिगिया जियान हो गइल।।

विदाई गीत

सीमवां पै डोलिया उतार दा कहरवा आँसू ढ़ार लेवे दा।
छूट जाला नइहरवा नयन भर निहार निहार लेवे दा।।टेक।।
गउवां कै सीमा इहाँ डोलिया छिपाय दा
पनियाँ पियावे आवैं, सखिया मिलाय दा
अन्तिम समइया में डोलिके ओरवा दुलार लेवे दा
छूटल जाला नइहरवा

मंगल मुंशी जी ऋषि परम्परा के एक संत कवि थे जिन्होंने अपनी रचनाओं को जीवन-यापन, प्रसिद्धि एवं यश का साधन नहीं बनाया। वह एक स्वान्तः सुखास्य कवि थे साथ ही वह गायक कलाकारों की आवश्यकतानुसार भी रचनाएँ करते थे। कविता को अपनी बेटी समझने वाले इस महान कवि ने अपना पूरा जीवन अभाव तथा गरीबी में बिताया परन्तु अपनी सिद्धान्तों से कभी कोई समझौता नहीं किया। मुंशी जी के जीवन में अनेक अवसर आये जिससे मुंशी जी वो सब कुछ पा सकते थे जो भौतिकता को आकांक्षित एक कवि चाहता है। परन्तु आपने उसको कोई महत्व नहीं दिया। हमेशा एक सन्त के आदर्श पर चले।

इस शोध आलेख का यही उद्देश्य है कि लोग उन्हें जाने तथा लोगों में उनकी रचना सुनने तथा गाने की रूचि पैदा हो।

संदर्भ सूची

1. सिंह, डॉ. विद्या बिन्दु, धरोहर स्मारिका, सोन चिरैया 2015, पृ. 18
2. सिंह, डॉ. संजय कुमार, भोजपुरी लोक संस्कृति एवं हिन्दुस्तानी संगीत, पृ. 2
3. तुलसीदास कृत रामचरितमानस, बालकाण्ड 1/27
4. सिंह, डॉ. संजय कुमार, भोजपुरी लोक संस्कृति एवं हिन्दुस्तानी संगीत, पृ. 2
5. तुलसीदास कृत रामचरितमानस, बालकाण्ड 1/98
6. द्विवेदी, श्री मस्तराम, शेरवाँ, भूइलीं मीरजापुर से साक्षात्कार के माध्यम से उद्धृत तथ्य।
7. तुलसीदासकृत रामचरित मानस, बालकाण्ड, 112/4
8. श्रीवास्तव, ओमप्रकाश, भाइपुर, भूइलीं, अदलहाट, मीरजापुर के साक्षात्कार से उद्धृत तथ्य।
9. रामजनम भारती, मुबारकपुर, नौगढ़ जी से साभार प्राप्त, दिनांक 12.01.2019
10. रामजनम भारती, मुबारकपुर, नौगढ़ जी से साभार प्राप्त, दिनांक 12.03.2019
11. सुरेन्द्र द्विवेदी, अतौली जमालपुर, मीरजापुर से साभार प्राप्त, दिनांक 21.07.2019
12. ओम प्रकाश श्रीवास्तव (प्रकाश मीरजापुरी), भाईपुर, भुइली, अदलहाट, मीरजापुर से साभार प्राप्त, दिनांक 08.01.2019
13. पद्यविभूषण पं. छन्नूलाल मिश्र जी द्वारा गाया हुआ बहुश्रुति शिव की हूली।
14. श्री ओमप्रकाश श्रीवास्तव (ओज कवि प्रकाश मीरजापुरी), भाइपुरकला, भुइलीं, अदलहाट, मीरजापुर जी से साभार प्राप्त, दिनांक 19.10. 2018
15. रामलखन निर्मोही, अतरवाँ सोनभद्र से साभार प्राप्त, दिनांक 02.10.2019
16. राम जनम भारती, मुबारकपुर, चकिया, चन्दौली से साभार प्राप्त, दिनांक 13.09.2019

संगीत में गुरू-शिष्य शिक्षा का नवीन माध्यम–ऑनलाइन विडीयो कॉन्फ्रेंसिंग

डॉ. अश्विनीकुमार सिंह

संक्षिप्त सारांश

भारतीय संस्कृति में संगीत शिक्षा की प्रणाली पारंपरिक रूप से गुरु-शिष्य परंपरा रही है। आधुनिक युग में माहिती-तकनीक (Information Technology) के विकास के चलते ऑनलाइन विडीओ कॉन्फ़्रेंसिंग के माध्यम से संगीत शिक्षा का कार्य किया जाने लगा है। कोविड-19 के महामारी काल के बाद तो यह विकल्प उभरकर सामने आया है द्य इस लेख में उसके लाब तथा उसकी कमियाँ इन पर चर्चा की गयी है।

भारतीय संस्कृति में सदा से ही संगीत 'गुरू' के सामने प्रत्यक्ष बैठकर, उनके द्वारा सिखाए गए संगीत को दोहराकर और इस दोहराए गए संगीत पर उनसे स्वीकृति पाकर सिखा जाता रहा है। इस प्रणाली का अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग है गुरू और शिष्य का आमने सामने बैठकर शिक्षा कार्य होना, जिसे 'सीना-ब-सीना' तालीम भी कहा जाता है। परंपरागत रूप से इस शिक्षा प्रणाली के द्वारा शिष्य को गुरू के मुख से ही संगीत का सही ज्ञान प्राप्त होता है, क्योंकि बिना गुरू के मार्गदर्शन के केवल पुस्तकों और रिकॉर्डिंग्स आदि से शिष्य की गायकी का सर्वांगीण विकास होना असंभव है। इसी कारण भारतीय संस्कृति में संगीत को 'गुरू-मुखी' विद्याा भी कहा जाता है।[1] इससे शिष्य द्वारा गाई-बजाई जाने वाली हर चीज़ गुरू की नज़र और कान दोनों की परीक्षा पार करके स्वीकृत होती है एवं शिष्य की प्रगति पर गुरू का ध्यान रहता है। यह शिक्षा हर शिष्य को गुरू से व्यक्तिगत रूप में मिलती है तथा हर शिष्य की व्यक्तिगत .ाक्तियाँ और त्रुटियों पर यथायोग्य काम होकर शिष्य की प्रगति में लाभ होता है। शिष्य में भी गुरू के सामने व्यक्तिगत रूप में अभ्यास करने के कारण आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। इस तरह से संगीत शिक्षा के क्षेत्र में शिष्य के संभाव्य सर्वोत्तम विकास के लिए परम्परागत 'गुरू-शिष्य' पद्धति वर्तमान समय में भी सर्वाधिक अनुकूल है।

उपरोक्त तथ्य को ध्यान में लें तो यह पता चलता है कि इस प्रणाली में गुरू एवं शिष्य का व्यक्तिगत संपर्क अति आवश्यक हो जाता है। यदि किसी कारणवश गुरू और शिष्य में भौगोलिक अंतर बढ़ जाए तो यह नियमित संपर्क टूट सकता है और शिक्षा की क्रिया में विघ्न उत्पन्न होता है। उदाहरण : एक शिष्य को अपना आवास दूसरे गाँव/शहर/प्रान्त/ देश में

आसिस्टेन्ट प्रोफेसर, डिपार्टमेन्ट ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूज़िक. वोकल, फैकल्टी ऑफ परफोर्मिंग आर्ट्स, दि एम. एस. युनिवर्सिटी ऑफ बरोडा, वड़ोदराए गुजरात, ई-मेल : ashwinikumarsingh338@gmail.com, मो. 91-92652 43227

हटाना पड़ता है तब उसके गुरू के साथ चल रही शिक्षा में रूकावट आ जाती है क्योंकि वह नए आवास से गुरू के पास सिखने के लिए नियमित रूप से नहीं आ सकता। अन्य उदाहरण : अगर कोई शिष्य किसी और गाँव/शहर/प्रांत/देश के गुरू के पास सिखना चाहता है तो उसे बहुत कठिनाई हो सकती है। इस समस्या का कुछ हद तक निराकरण आधुनिक काल में इक्कीसवीं ताब्दी के तकनीकी विकास के चलते उपलब्ध दूरसंचार सुविध 'ओनलाइन वीडियो कॉलिंग' में खोजने का प्रयास किया गया है। इस सुविधा को उपलब्ध कराने वाले कई मंच-सॉफ्टवेर ऐप्लिकेशन वर्तमान समय में अस्तित्व में हैं जैसे कि स्काईपी, फेशटाईम, व्हॉटसअेप कॉल, गूगल डयुओ आदि। ये सॉफ्टवेर ऐप्लिकेशन उपभोक्ताओं को इन्टरनेट के द्वारा वॉइस कॉलिंग, विडीयो कॉलिंग, विडीयो कॉन्फ्रेसिंग, मीडिया ोअरिंग, मेसेजिंग जैसी कई सुविधाएँ उपलब्ध कराते हैं। इनमें से 'ऑनलाइन विडीयो कॉलिंग' की सुविधा का उपयोग वर्तमान समय में संगीत की शिक्षा के लिए उपयोग में लाई जा रही है।

आगे वर्णित किए गए कारणों के चलते यदि संगीत शिक्षा की प्रक्रिया में गुरू और शिष्य का व्यक्तिगत संपर्क टूट जाता है या नियमित रूप से नहीं रह पाता तब शिक्षा की प्रक्रिया में खंड पड़ता है। वर्तमान समय में कुछ संगीत के गुरू और शिष्यों ने इन्टरनेट और स्मार्टफोन, कोम्प्युटर आदि साधनों द्वारा 'ऑनलाईन वीडियो कॉलिंग' का लाभ लिया है और अपना संगीत-शिक्षा का सिलसिला फिर से जारी रखा है।

ऑनलाइन वीडियो कॉलिंग सुविधा द्वारा गुरू-शिष्य पद्धति से संगीत शिक्षा का उदाहरण :

बंगलूरू के निवासी श्री आदित्य दिन्डोरकर मूल वड़ोदरा के निवासी है और काम के कारण उन्हें बंगलूरू जाना पड़ा। जब वे वडोदरा रहते थे तब इनकी संगीत शिक्षा वड़ोदरा के उनके गुरू के पास चल रही थी। बंगलूरू जाने के बाद भी उन्हीं गुरूजी के पास संगीत शिक्षा जारी रखने के लिए उन्होंने 'ऑनलाइन वीडियो कॉलिंग' की सुविधा का उपयोग किया। आज भी इनकी संगीत-शिक्षा जारी है।

श्री दिन्डोरकर से हुई टेलीफोनिक बातचीत [2] में उन्होंने अपना अनुभव बताया। उस पर से कुछ तथ्य पता चलते हैं जैसे कि इस माध्यम के लाभ तो हैं और कुछ मर्यादाएँ भी हैं।

लाभ इस प्रकार हैं :

- लाभ की बात करें तो सबसे बड़ा लाभ यह है कि दुनिया के किसी भी स्थल पर यदि इन्टरनेट कनेक्शन उपलब्ध हैं तो उसके द्वारा संगीत-शिक्षा का लाभ मिल सकता है।
- इस सुविधा में वीडियो अर्थात् दृश्य उपलब्ध होने के कारण गुरू और शिष्य एक-दूसरे को न केवल सुन सकते हैं, देख भी सकते हैं। जिससे भौगोलिक रूप से दोनों में बहुत अंतर होते हुए भी व्यक्तिगत संपर्क की भावना निर्माण होती है।
- इससे उन शिष्यों को बड़ा ही लाभ हुआ है जो गुरू से संगीत सीखने की अदम्य इच्छा रखते हैं किन्तु किसी कारणवश उनके वास्तविक सान्निध्य में नहीं रह सकते।
- गायन-वादन क्रिया के सभी अभ्यासों को वीडियो कॉलिंग के ज़रिये सिखा जा सकता है।

साथ ही में कुछ मर्यादाएँ भी हैं :

- जब भी वीडियो कॉलिंग का माध्यम उपयोग में लाया जाता है तब अच्छा इन्टरनेट कनेक्शन होना अनिवार्य हो जाता है। उसके अभाव में यह माध्यम उपयोगी नहीं है।
- जब भी तालीम चल रही होती है तब कुछ प्रमाण में आवाज़ और गायन या वादन की बारीकियों का व्यय हो जाता है।
- कुछ प्रमाण में सही वास्तविक ध्वनि का व्यय होने की वजह से गुरू और शिष्य को एक-दूसरे की ध्वनियाँ अलग सुनाई देती है। जिससे शिष्य को आंकलन और गुरू को मूल्यांकन में द्विधा हो सकती है।

उपरोक्त लाभ और मर्यादाओं के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि संगीत-शिक्षा के लिए पारंपरिक 'गुरू-शिष्य' पद्धति के अंतर्गत गुरू के सामने बैठकर वास्तविक सम्पर्क से सीखना ही सबसे अच्छा विकल्प है। गायकी और वादन की विशेषताओं को इसी प्रकार से सही अर्थ में बताया जा सकता है। फिर भी अगर गुरू-शिष्य पद्धति से संगीत की शिक्षा जारी रखने में भौगोलिक अंतर विघ्न रूप बन रहा हो तो सारी मर्यादाओं के बावजूद भी 'ऑनलाइन वीडियो कॉलिंग' के माध्यम का उपयोग संगीत के विद्यार्थियों के लिए लाभकारी बन रहा है। अगर विद्यार्थी गुरू और संगीत के प्रति समर्पित हो, तो इस माध्यम में भी अच्छी प्रगति हो सकती है। यह 'ऑनलाइन वीडियो कॉलिंग' आधुनिक युग में गुरू-शिष्य पद्धति से संगीत-शिक्षा' के एक नवीन माध्यम के रूप में अधिकाधिक लोकप्रिय होता जा रहा है।

वर्ष 2020 में विश्व भर में कोविड-19 महामारी का संकट फैल गया जिसके भयंकर परिणाम हम सबको भुगतने पड़े हैं। महामारी का फैलावा रोकने के प्रयास के फलस्वरूप हमारे सामाजिक एवं आर्थिक व्यवहार बड़े नकारात्मक तरीके से प्रभावित हुए। इसी समय के दौरान शिक्षा के सन्दर्भ में भी कई रुकावटों का सामना करना पड़ा। सभी क्षेत्रों की तरह संगीत में भी गुरु-शिष्य परंपरा एवं संस्थागत (विद्यालयीन/ विश्वविद्यालयीन) संगीत शिक्षा भी कुछ समय के लिए ठप हो गयी थी। ऐसे माहौल में ऑनलाइन मंचों के माध्यम से संगीत की शिक्षा, फिर चाहे गुरु-शिष्य पद्धति हो या संस्थागत संगीत शिक्षा हो, को फिर से कार्यान्वित करने में बहुत ही सहायता मिली है।

संदर्भ सूची :

1) ऋषितोष कु., (2010). संगीत शिक्षण के विविध आयाम. नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्युटर्स.
2) वसंत (1994). संगीत विषारद. सं. 20. हाथरस (उ.प्र.) : संगीत कार्यालय.
3) श्री आदित्य दिन्डोरकर (बंगलूरू) से दिनांक 27.09.2019 को हुई टेलीफोनिक बातचीत.

अंत टिप्पणी

1. कुमार, (2010). संगीत शिक्षण के विविध आयाम. नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्युटर्स, पृ., 96
2. श्री आदित्य दिन्डोरकर (बंगलूरू) से दिनांक 27.09.2019 को हुई टेलीफोनिक बातचीत.

संगीत और ज्योतिष शास्त्र का अन्तर्सम्बन्ध

कल्याणी गुप्ता

सार

संगीत हमारे जीवन जीने का आधार है या यह कहा जा सकता है कि जीवन जीने का एक ढंग या तरीका है और ज्योतिष इसी जीवन को सुचारु रुप से जीने हेतु अपनायी गई एक कला या विद्या है। ज्योतिष विद्या का सम्बन्ध मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से है, तो संगीत भी ज्योतिष से अछूता नहीं रहा है। मानव जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक जिस प्रकार जन्म कुंडली बनवाना, मुंडन, कान छेदन, उपनयन संस्कार, विवाह संस्कार, व्यवसाय इत्यादि सभी कार्यों में ज्योतिष विद्या को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है तथा ग्रह-नक्षत्रों को ध्यान में रखकर ही शुभ व अशुभ सभी कार्य सम्पन्न किये जाते है, ठीक उसी प्रकार मानव जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक कार्य में संगीत का भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संगीत के माध्यम से व्यक्ति अपने हर्ष-विषाद, दुख, सुख आदि की भावाभिव्यक्ति आसानी से प्रदर्शित करता है। ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत किए गए जन्मोत्सव पर, मुंडन पर, कोई शुभ कार्य पर, विवाह इत्यादि पर अनेकों गीतों को गाकर व्यक्ति अपने भावों की अभिव्यक्ति संगीत कला के माध्यम से करते है तथा विभिन्न प्रकार के गीत मानव मन में विभिन्न प्रकार के भावों की उत्पत्ति करते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संगीत व ज्योतिष विद्या एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित है तथा वर्तमान समय में संगीत व ज्योतिष दोनों ही विधाओं का समान महत्व है।

मुख्य शब्द- *संगीत, ज्योतिष, कला, ग्रह, राग, ताल।*

प्रस्तावना-

भारत देश में कलाओं का महत्वपूर्ण स्थान प्राचीन काल से ही रहा है। कलाएं 64 मानी गई है, जिसके अन्तर्गत मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, काव्यकला व संगीतकला इत्यादि कलाएं आती है। इसके अन्तर्गत सभी ललित कलाओं में संगीत कला का महत्वपूर्ण स्थान है। सभी ललित कलाओं का प्रसार मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु हुआ है। संगीत कला के अन्तर्गत 'नाद' का महत्वपूर्ण स्थान है। सृष्टि के प्रत्येक कण में निहित नाद तत्व ही संगीत कला की आधारभूमि है। सृष्टि में निहित नाद का अनुभव व आनन्दानुभूति ही मनुष्य को आध्यात्मिकता के मार्ग की ओर उन्मुख करती है तथा जिसकी परम सिद्धी व साधना से ही व्यक्ति ईश्वर प्राप्ति के मार्ग की ओर अग्रसित होता है। मानव द्वारा की गई इन्हीं साधनाओं से धर्म, दर्शन, आध्यात्म, ज्योतिष, संगीत इत्यादि विधाओं का विकास हुआ है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत व विशाल है। जिसके अन्तर्गत संगीत कला का महत्व मानव जीवन के प्रत्येक कार्य,

पीएच. डी. रिसर्च स्कॉलर, दयालबाग ऐजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, दयालबाग आगरा। पता- 46/90F-6 मुरली नगर प्रभू टॉकीज के पीछे, लोहामण्डी, आगरा-282002 मोबाइल नं.- 9458520546, gmail : guptakalyani576@gmail.com

दिनचर्या व अन्य विद्याओं पर पड़ना स्वभाविक ही है। संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन व नृत्य तीनों ही विधायें समाहित है। जिस प्रकार मानव जीवन के प्रत्येक कार्य में संगीत विद्यमान है, ठीक उसी प्रकार संगीत में भी ज्योतिष विद्या का महत्व विद्यमान है, देखने पर सर्वविदित होता है कि संगीत व ज्योतिष विद्या का महत्व बहुत ही प्राचीन भी है।

जिस प्रकार से संगीत कला का सम्बन्ध हमारे साथ युगों-युगों से है तथा उसके प्रारम्भिक काल का पता लगाना असम्भव सा प्रतीत होता है, ठीक उसी प्रकार से ज्योतिष विद्या के प्रारम्भिक समय का पता लगाना भी अत्यन्त कठिन है, क्योंकि मानव जीवन के प्रत्येक कार्य ग्रह-नक्षत्र व ज्योतिष विद्या के अनुरुप ही सम्पन्न किये जाते है। साधारण रुप में देखा जाए तो ज्योतिष शास्त्र का साधारण मनुष्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्योतिष शास्त्र पर मात्र विवाह इत्यादि के समय ही अधिकतर ध्यान दिया जाता है। परन्तु फिर भी आज के इस तकनीकी युग में आकर लोग इन सबके पीछे पड़े है। क्योंकि मनुष्य के एक-दूसरे से आगे निकलने की चाह ने ही मनुष्य को इधर-उधर देखने को तथा मजबूरी में ग्रह-नक्षत्र व ज्योतिष विद्या का सहारा अपने भविष्य को संवारने हेतु लेने को अग्रेसित भी किया है।

देखा जाए तो सर्वप्रथम ऋषि-मुनियों को ही इस विद्या का पूर्ण ज्ञान हुआ करता था, परन्तु आजकल तो सभी एक-दूसरे के हाथ की रेखा पड़ने की भी चाह रखते है। परन्तु इसका प्रभाव व्यक्ति की मानसिक स्थिति के ऊपर भी निर्भर है, कोई इसे ज्यादा मानता है और कोई बिल्कुल कम और कोई एकदम कम ही नहीं।

ज्योतिष विद्या के अन्तर्गत आकाशीय ग्रहों के माध्यम से भूतकाल में, भविष्य काल में तथा वर्तमान काल में घटित होने वाली घटनाओं का पता लगाया जा सकता है। सौरमंडल में उपस्थित सूर्य, मंगल, चंद्र इत्यादि ग्रहों तथा ब्रह्माण्डीय पिण्डों को भी ज्योतिष शास्त्र की संज्ञा दी गई है और जिन शास्त्रों के द्वारा इन ग्रहों की गति व प्रभाव का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया जा सके, वह 'ज्योतिष शास्त्र' कहलाता है। साधारण अर्थों में यह भी कहा जा सकता है कि 'ज्योतिष हमारा मार्गदर्शक शास्त्र भी है।'

'ज्योतिष शास्त्र का दूसरा नाम 'ज्योतिः शास्त्र' भी है। ज्योति-शास्त्र का अर्थ है-'प्रकाश देने वाला शास्त्र'। अर्थात् 'वह शास्त्र जो संसार के सुख-दुख, जीवन-मरण एवं ब्रह्माण्ड के अंधकाराच्छन्न जैसे विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालकर उन्हें उजागर करने की क्षमता रखता है।'

(संगीत और ज्योतिष ग्रह नक्षत्र,
पेज नं.-6)

सौरमंडल में फैले हुए सभी ग्रह सूर्य, चंद्र, मंगल इत्यादि ब्रह्माण्डीय पिण्डों को 'ज्योतिष या ज्योतिष्क' भी कहा जाता है। प्राचीन विद्वानों ने ज्योतिष को मुख्यतः दो भागों में बांटा है-

1) सिद्वान्त ज्योतिष, 2) फलित ज्योतिष।

जिस ज्योतिष विद्या के द्वारा ग्रह, नक्षत्र आदि की एवं संस्थान आदि की प्रकृति का निश्चय किया जाता है, तो उसे 'सिद्वान्त ज्योतिष' कहा जाता है। तथा जिस ज्योतिष विद्या के द्वारा ग्रह-नक्षत्र आदि की गति को देखकर प्राणियों की अवस्था और शुभ-अशुभ का निर्णय किया जाता है, तो उसे 'फलित ज्योतिष' कहा जाता है।

(संगीत और ज्योतिष ग्रह नक्षत्र,
पेज नं.-7)

ज्योतिष की विभिन्न शाखाएं है जो कि

इस प्रकार से है-

1) अंक ज्योतिष, 2) हस्तरेखा ज्योतिष,

3) रमल विद्या ज्योतिष, 4) कुंडली ज्योतिष।

मानव जीवन में घटित प्रत्येक घटना ग्रह नक्षत्रों के प्रभाव से पूर्णतः प्रभावित होती रहती है, न केवल मानव अपितु पशु-पक्षी व वनस्पतिओं पर भी सूर्य, चंद्रमा जैसे ग्रहों का सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दिन, रात, ऋतु, पर्व, उत्सव इत्यादि सभी का सार्थक ज्ञान शास्त्र से ही होता है। हिन्दु धर्म में जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कार ग्रह, नक्षत्रों के अनुरुप ही निर्धारित होते है। यहां तक कि मुस्लिम धर्म में भी सभी त्यौहार चांद की स्थिति को देखकर ही निर्धारित किये जाते है।

इसके अतिरिक्त जहाज के कप्तान को भी ज्योतिष की आवश्यकता होती है, क्योंकि घड़ी के न होने की स्थिति में ज्योतिष के द्वारा ही समुद्र में जहाज की स्थिति का पता लगाया जाता है। ज्योतिष का प्रभाव जीवन में हर एक क्षेत्र से सम्बन्ध रखता है, तो संगीत भी इसके प्रभाव से वांछित नहीं रहा है। प्रत्येक व्यक्ति का संगीत के विषय को चयन करना व संगीत में भी गायन, वादन व नृत्य की क्रिया विद्या का चयन करना, इसके अतिरिक्त किस वाद्य का चयन करना इत्यादि एक अच्छे संगीतकार के यह सभी गुण इस आधार पर ग्रह-नक्षत्रों से ही सम्बन्ध रखते है।

संगीत व ज्योतिष विद्या का महत्वपूर्ण स्थान प्राचीन काल से ही रहा है। शास्त्रीय संगीत में प्रयोग किये जाने वाले रागों का सम्बन्ध भी विभिन्न ग्रहों से दर्शाया गया है। अर्थात् ग्रहों को आधार मानकर भी अनेकों रागों की रचना की गई है। ग्रह आधारित रागों के माध्यम से विभिन्न रोगों की उपचार विधि का वर्णन हमारे विभिन्न विद्वानों ने बताया है। संगीत चिकित्सकों व विद्वानों का कहना भी है कि, 'कफ' सम्बन्धित रोगों के उपचार हेतु 'राग भैरवी', 'मानसिक पक्षाघात एवं क्रोध' की स्थिति में 'राग मल्हार एवं जयजयवन्ती', 'पाचन क्रिया' ठीक रखने हेतु 'श्री राग', 'श्वास' सम्बन्धी रोग हेतु 'राग भैरवी', 'अनिद्रा' की स्थिति में 'राग नीलाम्बरी' इत्यादि रागों का प्रयोग सकारात्मक रुप से लाभकारी सिद्ध होता है।

रागों का प्रयोग भी ऋतु व काल के अनुसार ही किया जाता है। जिससे कि उसका प्रभाव मानव के हित में हो सके। संगीत में प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न राग, विविध रंगों और विविध रुपों का ही प्रतीक है। छन्द, द्वीप, नक्षत्र का वर्णन संगीत मकरन्द ग्रन्थ में दिया गया है।

संगीत का प्रभाव न केवल मानव अपितु पशु-पक्षी व पेड़-पौधो पर भी पड़ता है। जैसे- अगर पौधो को कुछ समय के लिए राग सुनाये जाये तो उसकी पैदावार अधिक व उच्चतम गुणवत्ता वाली होती है। धान बोते समय भी गीत गाये जाते है तथा श्रमिकजन थक कर बैठता है तो उस समय भी यह संगीत थकान को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।

सप्तक के सात स्वर अपने नाद तरंगों से सप्त ग्रहों को को भी प्रभावित करते है। जिसके माध्यम से राग अपना प्रभाव अधिक स्पष्टता से दिखता है तथा यह भी कहा जाता हैं कि एक ही ध्वनि का प्रभाव भी हर बार अलग-अलग प्रतीत होता है।

जिस प्रकार में संगीत में सात स्वरों का महत्व अति आवश्यक है। ठीक उसी प्रकार ताल का भी संगीत में अत्यधिक महत्व है। ताल के बिना संगीत नीरस प्रतीत होता है। संगीत में स्वर व लय दोनों का ही महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न प्रकार की लय से ही विभिन्न

तालों की उत्पत्ति हुई बताते है। तालों में प्रत्येक किये जाने वाले भिन्न-भिन्न बोल व उसमें प्रयुक्त होने वाली लय की गति से ही विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार किया जाता है।

जैसे-'कहरवा ताल' 'मानसिक रोगों' के उपचार हेतु प्रयोग किया जाता है। 'झपताल' मानव की 'पाचन शक्ति' को ठीक रखने में सहायता प्रदान करती है। 'त्रिताल' से 'मिर्गी की बीमारी' को ठीक किया जाता है तथा 'दादरा ताल' 'हृदय' के लिए लाभकारी होती है। इसी प्रकार वाद्यों पर प्रयोग किये जाने वाली भिन्न-भिन्न ताल भी भिन्न-भिन्न बीमारियों को दूर रखने में सहायता प्रदान करती है।

प्रकृति के हर एक कार्य में, हर एक हलचल में, लय, ताल तथा नाद विद्यमान है। विभिन्न स्वरावलियों के माध्यम से भिन्न-भिन्न रसों की उत्पत्ति होती है। विभिन्न रोगों के उपचार हेतु भिन्न-भिन्न ग्रहों पर आधारित मूच्छनाओं का प्रयोग करते समय अलग-अलग तालों का प्रयोग भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार भिन्न-भिन्न दिशा से भी भिन्न-भिन्न ग्रह सम्बन्धित बताये गये है। इसी आधार पर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होने वाली तालें भी अलग-अलग ग्रहों से सम्बन्धित है। अनेक प्रकार की लय तथा ताल का सम्बन्ध भी ग्रहों के साथ दर्शाया गया है। इसी सन्दर्भ में कुछ तालों का विवरण इस प्रकार से बताया गया है-

ग्रह की दृष्टि से दादरा ताल का सम्बन्ध चन्द्र की स्थिति से बताया गया है। दादरा ताल में 6 मात्राएं होती है। ईशान तथा उत्तर दिशा में इसका सम्बन्ध वास्तु की दृष्टि से बताया गया है। रुपक ताल में 7 मात्राएं होती है। मंगल ग्रह के साथ इसका सम्बन्ध बताया गया है तथा यह दक्षिण दिशा से सम्बन्धित है। यह ताल करुण रस से सम्बन्धित है। कहरवा ताल का सम्बन्ध सूर्य के साथ दर्शाया गया है। तथा कहरवा ताल में 8 मात्राएं होती है। सूर्य से सम्बन्ध होने के कारण इसकी पूर्व दिशा है तथा श्रृंगार रस की यह ताल है। इस ताल की प्रवृति पित्त प्रधान है। झपताल का सम्बन्ध बुध ग्रह से है। इसमें 10 मात्राएं होती है। कफ प्रवृति की यह ताल है। यह हास्य रस से सम्बन्धित है। चारताल का सम्बन्ध बृहस्पति से बताया गया है। इसमें 12 मात्राएं होती है तथा खुले बोलों की यह ताल है। इस ताल का सम्बन्ध वीर रस से है तथा खुले बोल की होने के कारण यह गम्भीर स्वभाव की ताल है। दिशा की दृष्टि से इसका सम्बन्ध उत्तर दिशा से दर्शाया गया है। दीपचन्दी ताल का सम्बन्ध शुक्र ग्रह से है दीपचन्दी ताल में 14 मात्राएं होती है। तथा इस की प्रकृति पित्त प्रधान बताई गई है। उत्साही प्रकृति की दीपचन्दी ताल हास्य रस से सम्बन्धित है। तीनताल का सम्बन्ध शनि ग्रह से बताया गया है। तीनताल में 16 मात्राएं होती है। इसका सम्बन्ध पश्चिम दिशा से बताया गया है। मधुर स्वभाव की इस ताल का रस श्रृंगार रस से बताया गया है।

जिस प्रकार से ज्योतिष का सम्बन्ध संगीत से व ताल से दर्शाया गया है। ठीक उसी प्रकार विभिन्न विद्वानों ने 12 राशियों से सम्बन्धित वाद्यों का भी उल्लेख किया है, जो कि इस प्रकार से है। 'मेघ राशि' का वाद्य- 'इसराज व सारंगी', 'मिथुन राशि' का वाद्य- 'मंजीरा', 'कर्क राशि' का वाद्य- 'बांसुरी', 'कन्या राशि' का वाद्य- 'घुंघरु', 'धनु राशि' का वाद्य- 'एकतारा', 'कुम्भ राशि' का वाद्य- 'तुम्बा' इत्यादि वाद्यों का सम्बन्ध निम्न प्रकार से दर्शाया गया है।

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह संगीत का ज्ञाता हो या नहीं, संगीत का प्रभाव मानव मन पर

पड़ना स्वभाविक ही है, फिर चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक। विभिन्न स्वर समूह तथा विभिन्न प्रकार की लय भी सुनने वाले के मन को एकाग्र कर उसमें स्फूर्ति, ऊर्जा व एक विशेष प्रकार की भावना का संचार करती है।

स्वरोदय विज्ञान तथा गान्धर्व विद्या ये दोनों ही विधायें श्वसन क्रिया पर आधारित होती है। गान्धर्व विद्या में षड़ज, ऋषभ इत्यादि स्वरों का महत्वपूर्ण स्थान है, तो स्वरोदय विज्ञान में ईडा, पिंगला, सुषुम्ना इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है तथा संगीत में प्रयोग होने वाली सभी विधाओं की रचनाएं इन्हीं पर आधारित है।

यदि संगीत के द्वारा रोगोपचार करने हेतु स्वरों का पूर्ण ज्ञान होना अति आवश्यक है। क्योंकि अगर व्यकित को, संगीतकार को जब तक स्वरों का ज्ञान नहीं होगा, स्वरों का रियाज नहीं होगा, उसको साधा नहीं गया होगा, तब तक उस स्वर का प्रभावी रुप जान पाना असम्भव सा प्रतीत होता है। स्वर से विहीन या स्वर से अनभिज्ञ ज्योतिष भी ऐसा होता है जैसे कि 'सिर बिना शरीर।' अतः साधारण शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि स्वोदय ज्ञान का जानकार संगीत और ज्योतिष का भी ज्ञाता होता है।

निष्कर्ष

अतः प्रस्तुत विषय के माध्यम से शोधार्थी का यही प्रयास है कि हमारा भारतीय शास्त्रीय संगीत जिसका सम्बन्ध ज्योतिष विद्या से भी है उसके प्रति लोगों का सजग किया जाना चाहिए। क्योंकि जैसे कि सर्वविदित है कि ज्योतिष विद्या का महत्व हमारे जीवन व कार्य दोनों पर ही समान रुप से सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव पड़ता ही है। इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति अपने लक्ष्य को पाने की चाह भी रखता है तथा वर्तमान समय में भी बहुत सारे व्यक्ति मुख्यतः संगीत के क्षेत्र में अपना करियर बनाना चाहते है, तो न केवल संगीत अपितु किसी भी विषय में आगे बढ़ने से पहले वह अपनी रुचि व ज्योतिष को ध्यान में रखकर भी विषय का चयन कर सकते है। क्योंकि जिस विषय पर उनकी ज्योतिषी ग्रह दशा अधिक प्रभावित करती या जोर देती है। उस विषय का चयन करना भी उन्हें भविष्य में लाभकारी सिद्ध होगा। जो न केवल उन्हें सही राह दिखायगा अपितु उन्हें सफलता के मार्ग पर पंहुचाने में सहायता भी प्रदान करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- बक्शी, डॉ. कान्ति कुमार, प्रथम संस्करण- 2013, संगीत तथा ज्योतिष का आपसी सम्बन्ध, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
- कपूर, सुभाषिनी, संस्करण- 1999, भारतीय ज्योतिष विज्ञान, साधना पॉकेट बुक्स, दिल्ली
- शर्मा, डॉ. टीना, प्रथम संस्करण- 2016, संगीत और ज्योतिषीय ग्रह नक्षत्र, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
- वर्मा, डॉ. सतीश, प्रथम संस्करण-2004, संगीत चिकित्सा (एक शास्त्रीय अध्ययन), राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- https://hi.m.wkikpedia.org/wiki
- https://www.granthalayah.com- International Journal of Research- मानव जीवन में संगीत चिकित्सा के व्यापक आयामः एक परिशीलन- रितु सिंह

सुरजापुरी लोकगीतः सीमांचल की एक अतुल्य विरासत

डॉ. सुनील कुमार तिवारी, मौसमी सिन्हा

संक्षिप्त सार

हमारी भारत भूमि शष्यश्यामला अन्नपूर्णा के साथ ही साथ संगीत सम्पूर्णा धन्या है। यहाँ की लोक भूमि अत्यन्त विस्तृत है। प्राचीन काल के देशी संगीत को ही आज लोक संगीत कहा जाता है। आंचलिकता देशी संगीत की विशेषता है। बिहार के सीमांचल क्षेत्र अररिया की आंचलिक भाषा एंव संगीत का क्रमशः नाम है सुरजापुरी भाषा एंव सुरजापुरी लोकगीत। अररिया के इस भाषा के साथ उर्दु भाषा का मिश्रण पाया जाता है। बोलचाल के गीत में उर्दु; बंगला; हिन्दी आदि शब्दों का प्रयोग होता है। स्थानीय भाषा के अलावे यहाँ हिन्दी; बंगला; मैथिली; भोजपुरी आदि भाषाएँ बोली जाती हैं। आज पढ़े-लिखे लोगों द्वारा इस स्थानीय भाषा तथा गीत दोनों की उपेक्षा की जा रही है। सभी पश्चिमी सभ्यता की नकल करने में व्यस्त हैं। अतः अपनी बिहार की भूमि पर इस प्राचीन अमूल्य धरोहर को संरक्षित कर भावी प्रजन्म को उपहार स्वरुप देकर जा सकूं - यही मेरे अनुसंधान का एकमात्र ध्येय व उद्देश्य है।

कीवर्डः- *1. संस्कृति, 2. लोकसंगीत, 3. मधुर, 4. गीत, 5. देशी, 6.शब्द*

हमारी भारतीय संस्कृति सनामधन्या सम्पूर्णा है। वास्तव में सम्पूर्ण सृष्टि ही संगीतमय है। संगीत को मनुष्य के शरीर से तुलना करें तो जीव का शरीर है पद, हृदय की धड़कन है समय परिमापक ताल एंव इसकी समान गति है संगीत का लय।

प्राचीन काल में संगीत को दो भागों में विभाजित किया गया था यथाः- 1• मार्गी संगीत तथा 2• देशी संगीत। मार्गी संगीत को देवलोक के लिए और देशी संगीत को पृथ्वी लोक के लिए कहा गया था।

संगीत की प्राचीनता के संबंध में विद्वानों का कहना हैं कि सृष्टि के साथ ही संगीत का भी आविर्भाव पृथ्वी पर हुआ। हमारे दश में लोक की धारा शष्य-श्यामला के साथ-साथ संगीतमयी उर्बरा भी है। यहाँ की लोक संस्कृति में विशेषकर लोक भाषा और लोकगीत बड़ा ही मधुर है। हमारे देश का लोक जीवन लोकगीत के बिना अपूर्ण है। इसे तीन भागों में विभाजित किया गया है; यथा - लोक निर्मित गीत, लोक विषयक गीत, एवं लोक प्रचलित गीत।

मार्गी संगीत को देवलोक का संगीत कहा गया है और देशी संगीत पृथ्वी लोक का। देशी संगीत के संबंध में मतंग मुनि ने कहा हैं -

"अबलाबालगोपालेः क्षितिपालैर्जिजेच्छया।
गीयते सानुरागेश स्वदेशे देशिरुच्यते।।"1

अर्थात् - स्त्री, बालक, पशुपालक, यहाँ तक की भूपति भी स्वेच्छा से प्रेमभाव से स्वदेश में अर्थात् अपने-अपने आवास में जो गीत गाते हैं

*मार्ग निदेशक, विभागाध्यक्ष, विष्वविद्यालय भागलपुर, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, तिलकामांझी विश्वविद्यालय भागलपुर
** विश्वविद्यालय संगीत विभाग, तिलकामांझी विश्वविद्यालय भागलपुर, विश्वविद्यालय भागलपुर, विश्वविद्यालय भागलपुर, मो.-9304453098, ई.मेल- sinhamoushami07@gmail.com

उसे देशी कहा जाता है।

दामोदर मिश्र प्रणीत "संगीतदर्पण" ग्रन्थ में कहा गया हैः-

"तत्त देश स्थया रीत्या यत्स्या ध्वोंकानुरंजनम्। देशे-देशे तु संगीत तद्वेशीत्यभिधीयतें।।"2

अर्थात् - लोगों के मनोरंजन के लिए स्थानीय रीति के अनुसार जो संगीत परिवेशन किया जाता है उसे ही "देशी" कहा जाता है।

टीकाकार कल्लिनाथ देशी संगीत को "कामचार प्रवर्तित्वम्"[3] अर्थात् जिनकी जैसी रुचि हो वो वैसे ही गीत गाते हैं।

स्वामी प्रज्ञानन्द के अनुसार - "देशी गान या देशी संगीत जिसे अंग्रेजी में फॉक म्युजिक कहा जाता हैं उसे ही लोक गीत समझा जाता हैं।"[4]

देशी संगीत को भी दो भागों में विभक्त किया गया हैं - 1• आंचलिक संगीत एंव 2• उच्चांग संगीत।

आंचलिक संगीत का रुप बड़ा ही सहज सरल मिठासयुक्त होता है जिसे लोकसंगीत भी कहा जाता है। आंचलिकता ही देशी संगीत की विशेषता है। नियमों से आवद्व एक अभिजात रुप जिसे वर्त्तमान काल में शास्त्रीय संगीत या उच्चांग संगीत कहा जाता हैं और इसे अंग्रेजी Classical Music कहा जाता है।

लोक संगीत जनमानस की भावनाओं से उत्पन्न होती है। भावनाएँ चाहे वो खुशी हो या गम दोनों की प्रबलता से मन में जो तरंग उठती है और वह शब्द का सहारा लेकर हृदय से फूट पड़ते हैं, वही गीत का रुप धारण कर लेते हैं। लोक संगीत किसी व्यक्ति विशेष का नहीं बल्कि इसकी सृष्टि में पूरे समाज का योगदान माना जाता है। गीत का मुखड़ा एक व्यक्ति लिखता है तो अन्तरा कोई दूसरा व्यक्ति। इसी तरह इसके निर्माण में कई व्यक्तियों की सांझेदारी मानी जाती है। लोक संगीत की विशेषता यह है कि यह लोक विषयक, लोक द्वारा एंव लोक प्रचलित होनी चाहिए और यह होती भी है। यह दो शब्दों के मेल से बना है लोक + संगीत अर्थात् लोगों का संगीत।

महात्मा गाँधी के शब्दों में -"लोक संगीत में चराचर गाता है और नृत्य करता है।"[5]

"लोक शब्द संस्कृत की लोकदर्शने धातु में "घञ्" प्रत्यय लगाकर बना हैं जिसका अर्थ है देखने वाला। साधारण जनता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ हैं।"[6]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न लेकर नगरों व गाँवों में फैली उस समूची जनता से लिया है जो परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों के अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती हैं।"[7]

डा. कुंज बिहारी दास ने लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति हैं, "जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक आदिम अवस्था में निवास करते हैं। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है और परंपरागत रुप से चला आ रहा है।"[8]

"भारतीय परम्परा के अनुसार वैदिक से भिन्न शेष समस्त बातें लौकिक है; किन्तु लोक शब्द अंग्रेजी के folk का पर्याय है। लोक जनसाधारण लोगों से सम्बन्धित होने के कारण लोक है क्योंकि गीत की सार्थकता सामूहिक रूप से गाने पर ही है।"[9]

महादेवी वर्मा के शब्दों में "सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेष को गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त कर देना ही गीत और इस गीत में जब सहज चेतना जुड़ जाती

है तो वह लोकसंगीत बन जाता हैं।"[10]

अंग्रेजी में "फोक" का अर्थ है लोक राष्ट्र, जाति, सर्वसाधारण या वर्ग विशेष लोक संगीत के संबंध में कुछ पाश्चात्य विद्वानों के विचार इस प्रकार हैंः-

- लोकगीत अपने-आप बनते हैं। Flok Song Composes itself Þ11Grimm.
- "The primitive spontaneous music has been called folk music"12 - Perey.

"भारतीय परम्परा के अनुसार वैदिक से भिन्न शेष समस्त बातें लौकिक है; किन्तु लोक शब्द अंग्रेजी के 'Folk' का पर्याय है। लोक जनसाधारण लोगों से सम्बन्धित होने के कारण लोक है क्योंकि गीत की सार्थकता सामूहिक रूप से गाने पर ही है।"[13]

भारत के विभिन्न राज्यों में बिहार एक अन्यतम राज्य है। बिहार में चार जिलों को मिलाकर एक क्षेत्र है जिसका नाम सीमांचल क्षेत्र है। सीमांचल क्षेत्र के अंतर्गत आनेवाले जिलों के नाम हैं- पूर्णिया, कटिहार, किशनगंज और अररिया। इन चार जिलों में अन्य भाषा के अलावे एक प्रमुख स्थानीय भाषा भी है जिसका नाम है - "सुरजापुरी"; जो कि एक बहुत ही मिठासभरी भाषा है, और इस समाज के लोकगीत के तो क्या कहने! यह भाषा पश्चिमी सभ्यता के अंधे अनुकरण का शिकार हो रही है और धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है। यहाँ के गीत-संगीत, संस्कार हमारे सीमांचल की माटी की ही नहीं बल्कि हमारे सम्पूर्ण देश का अमूल्य सम्पद है। पूर्वजों द्वारा प्रदत्त इस उपेक्षित धरोहर के विषय में खोज कर इसके बिरसते तथ्यों को एकत्रित कर इसका बचाव करना यही मेरे शोध का विषय है। यह मेरे लिए एक नवीन विषय है। इसके लिए मैं गाँव-गाँव का भ्रमण कर लोगो से प्रत्यक्ष मिलकर, साक्षात्कार लेकर, प्रत्येक तथ्यों का संग्रह कर रही हूँ। सीमांचल क्षेत्र के गाँवों में मुझे विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है परन्तु समय-समय पर मेरे मार्ग निदेशक गुरुजी का अमूल्य परामर्श मुझे क्षेत्र की समस्याओं से लड़ने एंव उसे सुलझाने में सहायता प्रदान करता है।

मैं अपने शोध में मुख्यतः प्रत्यक्ष प्रविधि अर्थात् प्रत्यक्ष रुप से क्षेत्र में घर-घर जाकर खोज करना, बुजुर्ग व्यक्तियों का सलाह लेकर, उनसे उनके पूर्व की बातें सुनकर; आज वे कैसा अनुभव करते हैं आदि प्रश्नों का जबाब लेकर, फिर उसकी समीक्षा कर एक सटीक नतीजें पर पुँहचकर सटीक निर्णय लेती हूँ एंव इस प्रत्यक्ष प्रविधि को कार्य में लगाती हूँ। इसके अलावे इस शोध-पत्र (आलेख) में सीमांचल के चार जिलों में से अररिया जिले के संस्कृति के संबंध में वर्णन करने जा रही हूँ। इसके अलावे पत्र-पत्रिकाओं, विभिन्न पुस्तकों का सहारा भी ले रही हूँ। मेरे शोध की प्रमुख प्रविधि क्षेत्र-भ्रमण कर तथ्य संग्रह करना ही है।

अररिया सीमांचल का एक प्रमुख जिला एंव प्रशासनिक मुख्यालय है। यह जिला 14 जनवरी 1990 में जिला बना। पहले यह पूर्णिया प्रमण्डल का ही अंश था। इसका क्षेत्रफल 2830 वर्ग किलोमीटर हैं। यहाँ से कंचनजंधा (हिमालय पर्वत) की चोटी दिखाई पड़ती है जो कि अत्यन्त ही सुन्दर है। अररिया जिले की भौगलिक स्थिति इस प्रकार है-उत्तर में नेपाल; दक्षिण में पूर्णियाँ प्रमण्डल; पूर्व में किशनगंज और पश्चिम में सुपौल एंव मधेपुरा। "अररिया जिला $26^0$7"48" उत्तर अक्षांश एंव $28^0$12" पूर्व देशान्तर में अवस्थित है।"[14] इस जिले के दो उपखण्ड यथाः अररिया एंव फारबिसगंज तथा 9 प्रखण्ड हैं। अररिया उपखण्ड के अन्तगर्त छः प्रखंड आते हैं यथा-अररिया, फारबिसगंज, जोकिहाट, रानीगंज,

कुर्साकांटा, सिकटी और पलासी तथा फारबिसगंज उपखण्ड के अन्तर्गत तीन प्रखंड आते हैं; यथा-फारबिसगंज, नरपतगंज और भरगामा। अररिया अन्तराष्ट्रीय सीमा (बिहार-नेपाल) के अन्तर्गत आता है। यहाँ के लोग बड़े ही सादा जीवन व्यतीत करते हैं। यहाँ का मुख्य कार्य एंव आय का साधन कृषि है। यहाँ कृषक वर्ग के लोग कई तरह के पशुओं को भी पालते व देखभाल करते हैं। यहाँ के प्रमुख फसल व पशुपालन सह नदियों का विवरण इस प्रकार हैः-

- मुख्य फसल :- घान, मक्का, पटुआ (पटसन)।
- मुख्य पशुपालन :- गाय, भैंस, बकरी, मुर्गी, आदि।
- मुख्य नदियाँ :- कोसी, काली, कोली, परमार और सुवाड़ा।

इस जिलें के नामाकरण के संबंध में एक बड़ी ही दिलचस्प कहानी है। अंग्रेजी शासन के समय जॉन फार्ब्स का जहां बंगला था उसे आवासीय क्षेत्र (Residential Area) कहा जाता था; जिसे संक्षिप्त में अंग्रेजी में आर. एरिया (त्ण ।तमं) कहा जाता था। परन्तु गाँव के सीधे-सादे लोग इस अंग्रेजी शब्द को न तो बोल ही पाते थें और न ही याद रख पाते थें। अतः फोर्ब्स ने सुविधा के लिए Residential Area को संक्षिप्त रुप देकर आर. एरिया कर दिया जो कि समय के साथ-साथ अररिया बन गया।

अररिया जिले मे मुख्य दर्शनीय स्थल है माँ खडगेश्वरी काली मंदिर, जो कि जिला अररिया से चालिस किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है। इस मंदिर में माँ काली के साथ-साथ भगवान शिव का भी मंदिर स्थित है। अररिया से लगभग तीस किलोमीटर की दूरी में रानीगंज नामक स्थान में "रानीगंज वृक्ष वाटिका" है जो कि बिहार राज्य का प्रमुख दर्शनीय स्थल है। यह स्थल अत्यन्त मनोहारी है। यहाँ का परिवेश भी अत्यन्त ही शातिपूर्ण एंव रमणीय है।

अररिया के लोग बहुत ही सरल प्रकृति के शातिप्रिय लोग होते हैं। इनका जीवन सादगीपूर्ण होता है। यहाँ हिन्दु-मुस्लिम सभी सुरजापुरी भाषा बोलते हैं। यहाँ की प्रमुख भाषा है- मैथिली, भोजपुरी, बंगला उर्दू व सुरजापुरी। साधारणतः अन्य राज्यों एंव जिलों की तरह यहाँ भी हिन्दी भाषा का भी प्रचलन है। व्याह-शादी में विभिन्न आचार-अनुष्ठान के साथ लोक संगीत का भी आयोजन किया जाता है। यह सब यहां के संस्कृति का अहम् हिस्सा है।

खान-पान में यहाँ के लोग मुख्यतः मछली, चावल, रोटी, हरी शाक-शब्जी आदि खाना बहुत पसंद करते हैं। साथ ही जलपान में चूड़ा, चने की घुगनी आदि बहुत प्रचलित है। ठंड के मौसम में अरवा चावल का भक्का, पिठा (सुरजापुरी में पिठाँ), मुढ़ी-चुड़ा का लाइ (लाडु) बनता है। होली में मालपुआ, चने की दाल, मांस, चटनी आदि बनाए जाते हैं। ईद में सबई, छोले, मुर्गा, अंडा आदि बनाए जाते हैं।

सीमांचल स्थित अररिया जिले में संस्कार गीतों में निम्न गीत आते हैं-बच्चे के जन्म में; अन्नप्राशन में; व्याह-शादी में; हल्दी रस्म में; पगड़ी बांधना में; विदाई रस्म तथाकुछ गीतों में प्रेमभाव से तानें तथा गाली का प्रयोग किये जाते हैं। मुस्लिम सुरजापुरी समाज में भी शादी-ब्याह के गीत; मुहर्रम आदि के अवसर पर जारी गीत आदि गाया जाता है।

"घाँरेर पश्चिमा माँ एकाँटि दिघिआ दियाछि गो ओगो माँ मोर।
सेइटि दिघियाय माँ मुइ एकलाय गोसोल करेछिगोओगो माँ मोर।

गोसोल कोरिते माँ मोक, ऐकेटा लड़का देखिले गो ओगो माँ मोर।
देखिले गो ओगो माँ मोर।
बिहिना देखिले माँ मोक,
रातो वोकिल भेजिले गो ओगो माँ मोर।
बोहनोर दुस्मनेर संङे शादी ना दिलिस गो ओगो माँ मोर।
शादी दिलाले माँ मोक मारे फेकबे गो ओगो माँ मोर।"

यह गाँव के विवाह होने के तय से संबंधित गीत है जिसका भावार्थ है लड़की अकेले घर के पश्चिम में स्थित पोखर में नहाती है; जिसे एक लड़का देख लेता है और वह उसी रात करुआ (शादी की बात को लेकर जो आता है) को लड़की के घर में भेजता है। परन्तु वह लड़का उसी लड़की के बहनोई (जिजाजी) का दुश्मन है तो लड़की अपनी माँ से विनती करती है कि उसकी माँ यह शादी न दिलाएं नहीं तो वो लड़का उसे (लड़की) मार डालेगा।

यह एक बड़ा ही करुण रस पर आधारित अनुनय से भरा हुआ मार्मिक गीत है। इस गीत में सुरजापुरी के साथ-साथ हिन्दी, बंगला, नेपाली एंव उर्दु शब्दों का मिश्रण किया गया हैं। गीत के शब्दों का अर्थ इस प्रकार हैः-

दिधि	- तालाब (पोखर)	- बंगला शब्द
लड़का	- बालक	- हिन्दी शब्द
गोसोल	- नहाना	- उर्दु शब्द
ओगो माँ	- हे माँ	- बंगला शब्द (ओ गो)
वोकिल	- करुआ	- उर्दु शब्द
बोहनो	- जिजा	- हिन्दी शब्द
भेजिले	- भेजा	- हिन्दी शब्द
पश्चिमा	- पश्चिम में	- नेपाली शब्द
बुबु	- दीदी	- उर्दू शब्द

विवाह संस्कार का ही दूसरा गीत हैं। बाराती आ रही हैं और उस वक्त लड़की (दुल्हन) की मनोदशा का, उसकी वेदना का बड़ा ही मर्मस्पश्ष वर्णन है इस गीत में।

घॉरेर आगु दे बुबु गे मोर राग साजेछे
बुबुगे मोर मॉन कान्दोछे।
बोहिन गे तोर नसीब जॉला
कुन्हा पाबो मास्टर लड़का?
घॉरेर आगु दे बोहनो हे मोर राग साजेछे
बोहनो हे मोरमन कान्दोछे
साली गे तोर नसीब जॉला
कुन्हा पाबो मास्टर लड़का?

इस गीत का भावार्थ है दुल्हन अपनी दीदी जीजाजी से कुछ कह रही है कि घर के आगे बारात सजी है और उसका मन रो रहा है। यह सुनकर दीदी जिजाजी समझाते हैं कि यह सारा तकदीर का खेल है जो नसीब (भाग्य) में लिखा होता है वही मिलता है और वह (दुल्हन) भाग्य के लिखे को कबुल कर ले यही अच्छा है। यह भी बड़ा ही मर्मस्पर्षी गीत है।

गीत के शब्दार्थः-

घॉरेर	-	घर के
आगु दे	-	आगे से
बुबु	-	दीदी
राग साजेछे	-	बाराती सज रही है
कान्दोछे	-	रो रहा है
कुन्हा पाबो	-	कहाँ मिलेगा
नसीब	-	भाग्य
जॉला	-	जला हुआ या खराब

नसीब जॉला एक प्रतीकात्मक शब्द है अर्थात नसीब यानि भाग्य खराब है। इस शब्द से दुल्हन के घर की स्थिति का पता चलता है। इस गीत से पूरे समाज की छवि भी आइने की तरह

साफ नजर आ रही है कि पूर्व में किस प्रकार अपने क्षमतानुसार लड़की के माता-पिता लड़की का विवाह करते थें। अररिया के सुरजापुरी समाज की मीठी सी घरोहर धीरे-धीरे खोती जा रही हैं। आधुनिकता के दौर में लोग डी. जे. बजाकर बेदम ताल पर तो थिड़कना पंसद करते हैं पर अपनी माटी की सुगंध भरी गीत को बैक-डेटेड कहकर उपेक्षा करते हैं। वह इसे सुनना समझना बिलकुल पंसद नहीं करते।

इस अतुल्य संस्कृति को अथक परीश्रम द्वारा बचाना और इन गीतों को स्वर तालवद्व कर भविष्य के लिए संरक्षित करना; यही मेरे शोध का एकमात्र लक्ष्य व उद्देश्य है।

संदर्भ सूचीः-

1. राय इन्दुभुषणम - संगीतशस्त्र; भाग - 3; पृ.सं. - 12 एंव 13 (1 से 4) आदिनाथ ब्रदश, कोलकाता - 73
2. - वही -
3. - वही -
4. - वही -
5. नेट / जे.आर.ए., संगीत अरिहंत पब्लिकेशन
6. नागपाल अल्का भारतीय संगीत में शोध प्रविधि राधा पब्लिकेशन
7. पाठक नारायण पं. जगदीश, संगीत निवद्ध माला, प्र. से. - 176
8. - वही -
9. ले.-गोस्वामी चन्द्र दिनेश संगीत पत्रिका दिसम्बर 1971
10. - वही -
11. नेट / जे. आर. ए.संगीत अरिहंत पब्लिकेशन
12. - वही -
13. ले.-गोस्वामी चन्द्र दिनेश संगीत पत्रिका दिसम्बर 1971
14. बिहार दिग्दर्शन, क्रानिकल बुक्स; नई दिल्ली - 16
15. लोकगीत, अररिया गाँव के निवासियों द्वारा

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में आगरा घराने का योगदान : एक अध्ययन

मेघना कुमार

शोध सार

विद्या के सृजनार्थ आवश्यक है कि एक संस्था हो जो सम्बन्धित विद्या के विविध पक्षों के संचयन एवं सम्वर्धन हेतु क्रियाशील रहे। इस प्रकार से सम्बन्धित विद्या के विविध आविष्कृत तत्वों के सृजन एवं नव आविष्कारों को प्रोत्साहन दिया जाता है। शास्त्रीय संगीत में इस कार्य के लिए प्राचीन समय से ही विविध संस्थाओं ने कार्य किया है। गुरुकुल, सम्प्रदाय, मत, बानी आदि के बाद वर्तमान समय में प्रचलित संस्था है घराना। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के तीनों ही भाग (गायन, वादन, नृत्य) में विविध घरानों का अस्तित्व दृष्टिगोचर है। शास्त्रीय संगीत के गायन के अनेक घरानों में आगरा घराने का उल्लेखनीय स्थान है। यह घराना अपनी अनोखी शैली के लिए जाना जाता है। इस घराने के गायन में स्वर लगाव, राग विस्तार आदि की विशिष्ट शैली है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन विविध विषयों को रेखांकित किया गया है।

सूचक शब्द :- *घराने, स्वतन्त्र शैली, खडापन, विशिष्ट व्यवहार, सृजनशील, लोकप्रिय गायन*

शोध प्रविधि :-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन हेतु तथ्य सामग्री के संकलन के लिए विभिन्न पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं का सहारा लिया गया है।

शोध उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में आगरा घराने के योगदान को समझना है।

यह शोध पत्र किसी भी पत्रिका अथवा पुस्तक में आंशिक अथवा पूर्ण रूप से न तो प्रकाशित किया गया है और न ही प्रकाशन हेतु प्रेषित किया गया है।

शोध विषय :-

किसी भी विद्या अथवा कला को सदैव ही संचयन की आवश्यकता होती है। सम्बन्धित कला अथवा विद्या के पथभ्रष्ट अथवा उच्छृंखल व्यवहार से बचाने के लिए एक समर्पित तथा अनुशासित संस्था की आवश्यकता होती है। शास्त्रीय संगीत में समय समय पर ऐसी संस्था अस्तित्व में रही है। कालक्रम के अनुसार इनके नाम तथा स्वरुप अवश्य अलग अलग रहे हैं किन्तु सभी ने संगीत के सम्वर्धन, संचयन तथा अभित्थान के लिए अपना विधिवत योगदान किया है। इस संस्थाओं के कारण की शास्त्रीय संगीत दिशाहीन होने से बचता रहा है। वर्तमान समय में इस संस्था को घराना अभिधान प्राप्त है। घराना शब्द का प्रयोग

सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्याय, वाराणसी

सर्वप्रथम उक्त सन्दर्भ में किसने किया इस सम्बन्ध में मतभेद है किन्तु घराना शब्द का प्रचलन लगभग 18वीं सदी के उतरार्ध तथा 19वीं सदी से आरम्भ हुआ माना जाता है। डॉ. नीलरंजन बनजह्म जी के अनुसार "मियाँ तानसेन के बाद ही घराना प्रचार में आया।" कुछ विद्वानों का माना है कि घराने का प्रचलन अकबर के समय में था।

मध्यकाल में जब राजा, नवाब, जमीदार तथा सामंतों में संगीत के प्रति रूचि बढ़ी तब इन लोगों ने संगीतकारों को आश्रय देना आरम्भ किया। इस प्रकार संगीत की प्रतिष्ठा तथा प्रचार में दिनोंदिन वृद्धि हुई। संगीतकार अपने आश्रयदाता को प्रसन्न कररने तथा धन की चाह में नूतन, आकर्षक तथा चमत्कारिक शैलियों का सृजन किया। इन आविष्कृत नवीन शैलियों को उन लोगों ने अपने शिष्यों को भी सिखाया और इसी प्रकार यह क्रम आगे चलता गया जिसके फलस्वरूप घराना का उद्भव हुआ। घराना के लिए आवश्यक है कि किसी नवसृजित शैली का अनुकरण क्रमशः तीन अथवा चार पीढ़ियों द्वारा किया जाए। घराना को परिभाषित करते हुए विद्वानों के मत इस प्रकार हैं -

श्री वामन राव देशपांडे जी के अनुसार "घराना शब्द का शाब्दिक अर्थ घर है। घर परिवार, वंश, कुटुंब आदि के समान ही गुरु तथा उनके शिष्य परिवार के रूप में तीन-चार पीढ़ियों का शिलशिला बनाये रखने पर घराना का सृजन होता है।"

श्री कृष्णराव पंडित के अनुसार "शताब्दियों पुरानी परम्परा उच्च कोटि के गुरु तथा कई पीढ़ियों के गुरु-शिष्य परम्परा से मिल कर घराने का निर्माण होता है।"

श्री प्रदीप कुमार दीक्षित जी के अनुसार "घराना में वंश परम्परा वाला संकेत निहित है।"

श्री शरच्चन्द परांजपे जी के अनुसार "घराना रीति अथवा शैली का दुसरा नाम है। इसका सम्बन्ध किसी गुरु परम्परा से होता है।"

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में विविध घराने प्रचार में रहे हैं। शास्त्रीय संगीत के ख्याल गायन के घरानों में ग्वालियर, आगरा, पटियाला, अतरौली आदि का नाम मुख्य रूप से आता है। इन विविध घरानों में आगरा का विशिष्ट स्थान है। आगरा के घराने के मूल पुरुष अकबर के दरबारी गायक हाजी सुजान खां को माना जाता है। इस घराने में ख्याल के साथ ही ध्रुपद तथा धमार को विशेष स्थान प्राप्त है। आगरा घराने के ध्रुपद गायन का प्रारम्भ अल्लाउद्दीन खिलजी के कल से माना जाता है। अल्लाउद्दीन खिलजी के शासन काल में प्रसिद्ध गायक गोपाल नायक के चार शिष्य लोहंगदास, अलखदास, खलकदास, मलुकदास थे। मलूकदास जी के वंश में सुजान खां का जन्म हुआ जो अकबर के काल में थे। इसी वंश में आगे चल कर घग्घे खुदा बख्श का जन्म हुआ। जिन्होंने आगरा घराने में ख्याल शैली के गायन की नींव रखी। आगरा घराने की गायन शैली के सम्बन्ध में अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस घराने की दो धाराएं हैं। एक धारा के अंतर्गत ध्रुपद तथा धमार गायन किया जाता है तथा दुसरे धारा के अंतर्गत ख्याल गायन आता है। ध्रुपद धमार के घराने को प्राचीन घराना माना जाता है तथा ख्याल का घराना नया है। घग्घे खुदा बख्श ने ग्वालियर की ख्याल गायन शैली को सीख कर तथा उसमें आगरे घराने की प्राचीन शैली (ध्रुपद, धमार) को मिला कर नयी शैली का विकास किया।

आगरा घराने की गायन शैली को स्वतन्त्र गायन शैली होने की स्वीकार्यता प्राप्त है क्योंकि इस घराने के सभी बड़े कलाकारों की अपनी

स्वतन्त्र शैली रही है। जिसे सम्बन्धित उस्तादों ने अपनी प्रतिभा से निखारा है। आगरा घराने में घग्घे खुदा बख्श से पहले मुख्य रूप से ध्रुपद धमार का गायन होता था किन्तु घग्घे खुदा बख्श द्वारा ख्याल शैली को आगरा घराने में लाने के बाद मुख्य रूप से ख्याल का गायन आरम्भ हुआ। आगरा घराने के ख्याल गायन में ध्रुपद धमार के गायन का विशेष प्रभाव देखने को मिलता है। दुगुन, चौगुन, अठगुन आदि की लयकारियाँ, बोल तानें तथा बोल तानों में निबद्ध तिहाइयां, तालों के हिस्सों में अतीत-अनागत के अंग से चीज के बोलों की बोलबाँट में वजन, चीज के बोलों के उच्चारण में खुलापन आदि ध्रुपद धमार की चीजों को ख्याल शैली में समाहित किया गया जिससे ख्याल और भी चमकने लगा।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में कलाकरों के स्वर के लगाव मात्र से ही घराने की पहचान हो जाती है क्योंकि सभी घरानों में स्वर के लगाव की अपनी शैली है। आगरा घराने में भी स्वरों के लगाव को विशेष महत्त्व दिया जाता है। ध्रुपद धमार गायन की भाँती आगरा घराने के ख्याल गायन में स्वर के लगाव में खड़ापन, खुलापन तथा सुस्पष्टता रहती है। यहाँ तक की मींड तथा गमक के लगाव में भी स्वरों का खडापन देखा जा सकता है। स्वरों के लगाने का यह ढंग आगरा घराने की विशिष्टता को दर्शाता है। इस घराने में कण रहित स्वरों का लगाव होता है। आगरे में ध्रुपद के घराने में स्वरोच्चार में बल एवं जोश होता था यही प्रवृति आगरा के ख्याल गायन में भी परिलक्षित होती है। इस प्रकार के स्वर लगाव को 'ढाला स्वर' कहा जाता है। उस्ताद फ़ैयाज खां साहब ने अपने गायन में ढाला स्वर को विशेष ढंग से सजाया था। आगरा घराने में स्वरों को ध्रुपद धमार की भाँती नोम-तोम तथा अकार-आकार-इकार-उकार-मकार आदि में बोलने की परम्परा है। आगरा घराने में गाने के बाद बहलावा नहीं किया जाता है बल्कि नोम-तोम का आलाप आरम्भ होता है। बंदिश की चीजों में भी खुली और जोरदार आवाज का प्रयोग तो होता है। इस घराने में श्रृंगार रस की बंदिशे अधिक मात्रा में गई जाती हैं तथा गायन के समय प्रस्तोता द्वारा साहित्य का भी ध्यान रखा जाता है। हालांकि आगरा घराने में अधिकतर कलाकार तथा रचनाकार मुसलमान ही थे लेकिन फिर भी भगवान श्रीकृष्ण के लीला का चित्रण आगरा घराने की बंदिशों में देखने को मिलता है।

किसी भी घराने में बंदिशों के प्रस्तुतीकरण का अपना विशिष्ट व्यवहार होता है। बंदिशों के गढ़न आदि का आलग अलग घरानों में अपना महत्त्व है। आगरे घराने की बंदिशों में लयकारी का विशेष महत्व होता है। बंदिशों को अनेक भाव में गाना तथा विविध लयकारियों के साथ खेलना, आगरे घराने की स्वयं की विशेषताओं में से एक है। इस घराने में स्वरों के साथ तालों को भी विशेष महत्त्व दिया जाता है। इस घराने में बंदिश के व्यवहार के अनुसार द्रुत, मध्य अथवा विलंबित लय का चुनाव किया जाता है।

नवीन बंदिशों के गढन में आगरा घराने के कलाकार सृजनशील रहे हैं। सरसपिया (काले खां), दरस पिया (महबूब खां), प्रेम पिया (फ़ैयाज खां), विनोद पिया (तसदुक हुसैन), प्राण पिया (विलायत हुसैन खां) आदि उपनामों से आगरे घराने में अनेक बंदिशें चलन में हैं।

राग के विस्तार के लिए सामान्यतः दो रास्ते हो सकते हैं। प्रथम कि, राग की बंदिश के शब्दों तथा उनके व्यवहार को गौंड कर के स्वरों के माध्यम से राग का विस्तार किया जाय तथा द्वितीय मार्ग कि, राग का विस्तार बंदिश के शब्दों के माध्यम से किया जाय। आगरे

घराने में राग के विस्तार के लिए बंदिश के शब्दों का ही सहारा लिया जाता है। इस घराने की बंदिशों अथवा गायन में राग के विविध तत्व जैसे - वर्ज्य स्वर, वादी-सम्वादी स्वर न्यास के स्वर आदि के विशेष ध्यान दिया जाता है। सामान्यतः सभी गायक बंदिशों के व्यवहार तथा उसके भाव के अनुरूप ही अपना गायन करते है किन्तु आगरा घराने में इस सन्दर्भ में विशेष कार्य देखने को मिलता है। 'इस घराने में शिष्य को आरम्भ से ही 'बंदिश की बढ़त में राग की बढ़त' की शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार की शिक्षा के कारण ही अप्रचलित रागों का गायन भी सहज हो जाता है क्योंकि अप्रचलित रागों का गायन उनकी बंदिशों के आधार पर ही होता है।'

आगरे घराने में राग विस्तार आकार एवं बोल आलाप से करते हैं। इस घराने में बंदिशों की प्रस्तुती के बाद राग की बढ़त की जाती है इसके बाद लयकारी की प्रस्तुती की जाती है। लयकारी में बोलबाँट तथा बोलतान अपनी मुख्य भूमिका में उपस्थित रहते हैं। लय की बाँट करने के लिए कुछ गायकगण अपनी मूल लय को थोड़ा बढ़ा देते हैं। आगरे घराने की गायन शैली में लय की बाँट अत्यंत आकर्षक होता है।

राग विस्तार का एक अनोखा अंग ताने हैं। आगरे घराने की गायन शैली में बंदिशों के अनुरूप ही तानों का प्रयोग किया जाता है। इस घराने में तानों के विविध प्रकार, प्रयोग में लाये जाते हैं। इन तानों में बराबरी की ताने, बड़े पल्ले की तानें, जबड़े की ताने इत्यादि इसके साथ ही अलग अलग तालों में अलग अलग फिरत का प्रयोग होता है। स्थायी तथा अंतरे की तानें अलग अलग होती है।

आगरा घराने की ख्याल गायन शैली एक लोकप्रिय गायन शैली है। ध्रुपद धमार के विशेष निकटता ने इस के स्वरूप को और निखारा है। फ़ैयाज खां, बशीर अहमद खां, तसद्दुक हुसैन खां, ख़ादिम हुसैन खां, लताफत हुसैन खां, भास्कर बुआ बखले, गोविन्द राव टेम्बे, दिलीप चन्द्र वेदी, श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकर, जगन्नाथ बुआ पुरोहित, सी. आर. व्यास, मानिक वर्मा, जितेन्द्र बुआ अभिषेकी आदि अनेक सिद्धहस्त कलाकार इस घराने की गायन शैली को अपनी मेधा से नवीन आयाम तक पहुंचाए। वर्तमान समय में भी यह गायन शैली अपने विशेष गुणों के कारण प्रचार में है।

शोध निष्कर्ष :-

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में आगरा घराने का एक विशिष्ट तथा उल्लेखनीय स्थान रहा है। एक उपेक्षित मेधावी की ज़िद और प्रबल इच्छाशक्ति का सुखद परिणाम है आगरे के ख्याल गायन का घराना। घग्घे खुदा बख्श द्वारा सृजित इस घराने ने भारतीय शास्त्रीय संगीत की विधिवत सेवा की। विद्वत समुदाय द्वारा स्वीकृत इस घराने ने अनेकानेक सिद्धहस्त कलाकरों को सांगीतिक सेवा हेतु प्रस्तुत किया है। यह घराना अपनी शास्त्रीयता, रागों की शुद्धता तथा अपने अलग गायन की शैली के लिए जाना जाता है। ख्याल की प्रस्तुती में भी ध्रुपद धमार की भाँती नोम-तोम का आलाप इस घराने की विविध विशेषताओं में से एक है। लय के साथ विविध प्रयोग इस घराने की गायन शैली को और भी आकर्षक बनाता है। इस घराने को शास्त्रीय संगीत के प्रचार प्रसार में अपनी मुख्य भूमिका के लिए विद्वतजनों द्वारा सराहा जाता है। वर्तमान समय में भी यह घराना अपने अस्तित्व को बचा कर तथा अपने नियमों पर चलते हुए शास्त्रीय संगीत की सेवा में सदैव प्रस्तुत है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में ख्याल गायन का उद्भव एवं उसका विकास

दीपक सिंह

शोध सार

भारत देश में संगीत का इतिहास अत्यंत उल्लेखनीय रहा है। वैदिक काल से आरम्भ हो कर यह कला नित नूतन आयाम को स्पर्श करती रही है। समय समय पर अनेकानेक शैलियां उद्भूत हुईं जो संगीत में नवसृजन की प्रवृति को रेखांकित करती रही हैं। वैदिक काल में जहां साम गायन होता था कालन्तर में अपने विविध रूपों से होते हुए आज ख्याल गायन तक पहुँच गया है। वैदिक काल में तीन स्वरों में गायन होता था जबकि वर्तमान में मुख्य रूप से 7 तथा कुल 12 स्वरों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार और भी अनेकानेक बदलाव देखे जा सकते हैं। इन विविध बदलावों के बाद भी नहीं बदला तो वह है संगीत की रसमय प्रवृत्ति। तब भी संगीत मनमोहक था और आज भी संगीत मनमोहक है।

संगीत में वर्तमान काल में प्रचलित ख्याल गायन शैली के उद्भव के सन्दर्भ में विविध विद्वानों का अलग अलग मत है। इस सन्दर्भ में विद्वत समुदाय एकमत नहीं हो पाया है। इस शैली के प्रणेता के रूप में अमीर खुसरो तथा जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की के नाम आते हैं। इस शैली का आधार क्या है इस सन्दर्भ में भी विद्वान एक मत नहीं हैं। कुछ का मत है कि ख्याल शैली ध्रुपद का परिमार्जित स्वरूप है तो कुछ लोग इसे कव्वाली से उद्भूत मानते हैं कुछ का मत है कि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित रूपकालप्ति के आधार पर ख्याल शैली का सृजन हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में इन विविध मतों को विस्तृत रूप से समझने का प्रयास किया गया है।

सूचक शब्द :- *ख्याल गायन, प्रणेता, प्रबंध गायन, नया कलेवर, चुटकुला, विलंबित लय*

शोध प्रविधि :-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन के लिए विविध पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं से तथ्य सामग्री को एकत्रित किया गया है।

शोध उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रचलित ख्याल गायन के उदय तथा क्रमिक विकास के सन्दर्भ में जानकारी एकत्रित करना है।

यह शोध पत्र किसी पुस्तक अथवा पत्रिका में आंशिक अथवा पूर्ण रूप से न तो प्रकाशित है और न ही प्रकाशन हेतु भेजा गया है।

शोध विषय :-

समय चक्र के सतत परिवर्तन तथा जनसामान्य की रूचि के अनुसार कलाओं में परिवर्तन स्वाभाविक है क्योंकि कलाएं जन भावना के

संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आधार पर पुष्पित तथा पल्लवित होती हैं। इन विविध कलाओं में संगीत कला का विशिष्ट स्थान है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की यशस्वी तथा सुदीर्घ परम्परा में काल क्रम के अनुसार विविध काल में विविध गायन शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ। जन रूचि को देखते हुए अनेक शैलियाँ सृजित हुईं तथा जन रूचि के परिवर्तन से ये शैलियाँ या तो लुप्त हो गयीं अथवा इनके स्वरूप को परिमार्जित कर के उतरार्ध की प्रचलित शैलियों में मिश्रित कर दिया गया। वैदिक काल से वर्तमान समय तक विविध शैलियों के प्रचलन की व्यवस्था को समझ सकते हैं। संगीत में गायन की प्रस्तुती के लिए वर्तमान समय में ख्याल शैली का विशेष प्रचार है। प्रस्तुत शोध पत्र में ख्याल गायन शैली की उत्पत्ति तथा क्रमिक विकास से समबन्धित चर्चा प्रस्तावित है।

"'ख्याल' शब्द अरबी भाषा से जन्य है जिसका हिंदी अर्थ होता है कल्पना, तर्क अथवा विचार।" इस गायन शैली में कल्पनाशीलता की प्रधानता होती है। ख्याल के सन्दर्भ में आचार्य बृहस्पति जी का मत इस प्रकार है - "ख्याल शब्द का अर्थ विचार अथवा कल्पना होता है। यह शब्द हिंदी भाषा के 'ध्यान' शब्द का अनुवाद है। राजस्थान में कवि की कल्पना तथा इतिहास की घटनाओं पर आधारीत चित्रों को 'ख्याल' नाम से संबोधित किया जाता है। चंग वाद्य के संगत से लावनी गाने वाले अपने गीतों को ख्याल कहते हैं। प्रसिद्ध सूफी संतों की रचनाएं जिनमें पीर का चित्रण हो उन्हें भी ख्याल नाम दिया जाता है।" ख्याल की उत्पत्ति के सन्दर्भ में विविध मत दृष्टिगोचर हैं। विद्वतजन ख्याल के उत्पत्ति तथा इसके विकास के मूल में किये गये प्रयासों को ले कर एक मत नहीं हैं। ख्याल के विकास के सन्दर्भ में पंडित विनय चन्द्र मौदगल्य जी का कथन इस प्रकार है- "The khyal of today, though based on Dhrupad, was a revolt against the Dhrupad itself which was becoming too rigid, mechanical and losing its aesthetic appeal." नलिन कुमार गांगुली जी का मत है कि ख्याल ध्रुपद का परिमार्जित स्वरूप है। नलिन कुमार जी कहते हैं - "Just as our classical song Dhrupad was transferred into "Kheyal" on entrance into the mugal court.As in Khayal, no change occurred to the sargam (musical notes) of our classical song." ख्याल के प्रचार के सन्दर्भ में श्री शरच्चंद श्रीधर परांजपे जी का कथन इस प्रकार है - "सुल्तान मोहम्मद शाह के दरबारी गायक नियामत खां ने इस शैली को शास्त्रीय संगीत में प्रतिष्ठित किया था। ध्रुपद की लयकारी तथा कव्वाली की तानों को मिला कर ख्याल का निर्माण हुआ।"

कुछ विद्वान ख्याल के सृजन के मूल में ध्रुपद को मानते हैं तो कुछ विद्वानों का मत है कि कव्वाली गायन से ख्याल गायन विधा का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि उत्तर भारत में स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला प्राचीन लोकगीत 'पचदा' पर साहित्यिक तथा शास्त्रीय आवरण चढा के ख्याल गायन शैली का उद्‌भव हुआ। जबकि कुछ विद्वान मानते हैं कि भजन तथा कव्वाली ही ख्याल गायन के आधार हैं। ख्याल शैली के सृजन के मूल के सन्दर्भ में जिस प्रकार विद्वत जन एक मत नहीं हैं उसी प्रकार ख्याल शैली के सृजन कर्ता के सम्बन्ध में भी अलग-अलग विद्वान अपना अलग-अलग मत रखते हैं।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में वर्तमान काल में विशेष रूप से प्रचलित ख्याल गायन शैली के सृजनकर्ता के सन्दर्भ में कुछ विद्वानों

का मत ही कि ख्याल को सृजित तथा प्रचारित करने में अमीर खुसरो का विशेष योगदान रहा है। कुछ विद्वान अमीर खुसरो को ख्याल गायन शैली नहीं बल्कि ख्याल गीतों का सर्जक मानता है। कुछ विद्वतजन कहते हैं कि 15 वीं सदी में जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की द्वारा ख्याल का सृजन किया गया। सुल्तान शर्की ने बड़े ख्याल तथा कलावंती ख्याल का सृजन किया था। कुछ विद्वतजन का मत है कि ख्याल शैली का जन्म मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में उनके दरबारी गायक नियामत खां द्वारा हुआ था। डॉ. उमा मिश्रा जी ख्याल के उत्पत्ति के सन्दर्भ में अपना मत देती हैं - "हिंदी साहित्य में जिस प्रकार खड़ी बोली का सूत्रपात अमीर खुसरों के समय ही हो गया था। उसी प्रकार ख्याल गायन का सृजन भी अमीर खुसरों ने ही किया था। बाद में सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने उस शैली को परिमार्जित किया।" विविध विद्वान इस सन्दर्भ में विविध मत प्रस्तुत करते हैं। कुछ विद्वान ख्याल गायन शैली के सृजन को किसी व्यक्ति से नहीं जोड़ते हैं बल्कि प्राचीन गायन शैलियों को ही ख्याल गायन शैली का आधार मानते हैं। ख्याल गायन शैली में सहज ही विविध गायन शैलियों जैसे - प्रबंध गायन के अंग, ध्रुपद गायन का गाम्भीर्य, ठुमरी सी चपलता तथा लोकगीतों में प्रयुक्त खटका, मुर्की, कण आदि का मनमोहक मिश्रण दिखता है। प्राचीन काल में प्रचलित गायन शैलियों के आधार पर वर्तमान ख्याल शैली के उत्कर्ष के सन्दर्भ में श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग जी कहते हैं - "पंडित शारंगदेव जी ने अपनी ग्रन्थ संगीतरत्नाकर में पाँच प्रकार की रचनाओं का उल्लेख किया है। ये रचनाएं शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा तथा साधरणी के नाम से प्रकाश में हैं। इन्हीं गीतियों से ख्याल शैली का उदय हुआ।" ख्याल गायन शैली के उदय के मूल में गीतियों के साथ साथ प्रबंध का स्थान है। भारत के राजनैतिक इतिहास के मध्य काल में प्रबंध गायन का परिमार्जन हुआ जिसका सुफल ध्रुपद के रूप में प्राप्त हुआ। कालन्तर में ध्रुपद के परिमार्जन से ख्याल उद्भूत हुआ।

ख्याल गायन के दो मुख्य तत्व आलाप तथा तान का जुड़ाव भी प्राचीन पद्धति से देखा जा सकता है। प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित रुपकालप्ति तथा स्थायी और रूपक भंजनी में आलाप तथा तान के वर्तमान स्वरूप का आधार देखा जा सकता है। ख्याल गायन में स्वर सामग्री का साम्य गीतियों से तथा ख्याल गायन की प्रस्तार सामग्री का साम्य रुपकालप्ति तथा स्थायी और रूपक भंजनी से स्पष्ट रूप से दिखता है।

ख्याल गायन के सृजन का सम्बन्ध अमीर खुसरो से जोड़ने वाले विद्वत जनों का मत है कि अमीर खुसरो के समय में कौल नाम की आध्यात्मिक गायन विधा को हिन्दू तथा मुसलमानों द्वारा समान रूप से अपनाया गया। अमीर खुसरो स्वयं कौल से सम्बन्ध रखता था। कौल गायन ने आगे चल कर कव्वाली गायन का रूप स्वीकार किया। अमीर खुसरो ने बाद में इन गीतों में कल्पना परक गीतों को जोड़ दिया तथा इस प्रकार ख्याल गायन का सतत विकास होता चला गया। मध्य काल में या यूँ कह लें की इस्लामिक शासन के समय प्रकाश में आई हुई ग्रंथों में ख्याल के सन्दर्भ में प्रथम उल्लेख बकीर खान नज्म-ए-सैनी की जीवनी में प्राप्त होता है। इनके सम कालीन शेख़ फरीद भरवकारी का नामोल्लेख ध्रुपद तथा ख्याल के रचनाकार के रूप में आता है। किन्तु विशेष रूप से ख्याल गायन के प्रणेता के रूप में अमीर खुसरो को मान्यता दी जाती है।

कुछ विद्वत समुदाय ख्याल गायन शैली का

प्रणेता, जौनपुर रियासत में शर्की वंश के छठवें तथा अंतिम शासक सुल्तान हुसैन शाह शर्की (1458 - 1479) को मानता है। इस सन्दर्भ में भी पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं। मिर्ज़ा खां द्वारा वर्ष 1675 में विरचित पुस्तक 'तोहफ़त-अल-हिन्द' में उद्घृत है कि जौनपुर रियासत के सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने ख्याल (अरबी भाषा का शब्द) नामक गायन शैली की उत्पत्ति की। उक्त मत के संदर्भ में कैप्टन विलियर्ड अपनी पुस्तक "Treaties on the music of Hindustan" में स्वीकार करते हैं कि सुल्तान हुसैन शाह शर्की ही ख्याल गायन के प्रणेता थे। "ख्याल गायन की विकास यात्रा में एक ऐसा भी समय आया जब जौनपुर में ख्याल का विरोध आरम्भ हो गया। इस शैली का विरोध करने वाले कलाकार नहीं चाहते थे कि तत्कालीन प्रचलित शैलियों की अपेक्षा ख्याल की लोकप्रियता अधिक बढ़े। ऐसे समय में सुल्तान ने अनेक कवियों तथा संगीतकारों को आश्रय प्रदान किया तथा ख्याल के उत्कर्ष का वातावरण प्रदान किया।" कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि सुल्तान हुसैन शाह शर्की का सम्बन्ध ख्याल गायन से प्रत्यक्ष रूप से नहीं था बल्कि अपने अस्तित्व को जूझते हुए "चुटकला" गायन से था। आगे चल कर यह गायन शैली, ख्याल गायन शैली में विलीन हो गयी।

चुटकुला गायन शैली के सन्दर्भ में फकिरुल्लाह का मत है कि इसे जौनपुर के सुल्तान ने बनाया तथा प्रसारित किया था। प्रबंध गायन में प्रबंन्ध के प्रकार सालग सूड प्रबंधों में से 'रासक' को तत्कालिक समय में चुटकुला अथवा छुटकुला कहा गया। मध्यकालीन ग्रंथकार शुभंकर ने अपनी ग्रन्थ संगीत दामोदर में छुटकुला संज्ञा का प्रयोग किया है -

"रासकाः छुटिकला इति प्रसिद्धाः"

कैप्टन विलार्ड ने चुटकुला को ख्याल श्रेणी का गायन माना है। इन गीतों में दो पंक्तियाँ होती थीं जिनमें तुकबंदी नहीं हुआ करती थी। इन गीतों का विषय प्रेम, विनय, वियोग तथा वीर रस होता था। ग्रंथकार शुभंकर के अनुसार चुटकुला को विलंबित लय में भी गाया जाता था। अब चूँकि चुटकुला के प्रणेता सुल्तान हुसैन शाह शर्की थे और ऐसी सम्भावना है कि चुटकुला की भाँती ख्याल को भी विलम्बित लय में गायन किया जाने लगा हो। फलतः कालन्तर में चुटकुला के ख्याल शैली में विलय होने से विद्वत समुदाय ख्याल के प्रणेता के रूप में सुल्तान हुसैन शाह शर्की को ही मानते हैं। वास्तविकता चाहे जो भी हो लेकिन ख्याल के सन्दर्भ में सुल्तान के योगदानों को नकारा नहीं जा सकता है। उन्होंने अनेक रागों का सृजन किया जो आज भी प्रचार में हैं।

ख्याल शैली के विकास में एक प्रमुख स्तम्भ के रूप में दिल्ली के उस्ताद नियामत खां तथा फ़िरोज खां का नाम आता है। इन कलाकार द्वै ने उत्तर भारत में प्रचलित ख्याल गायन शैली के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में इन कलाकारों को सम्मानित स्थान प्राप्त था। उस्ताद नियामत खां ने सदारंग उपनाम से तथा उस्ताद फ़िरोज खां ने 'अदारंग' उपनाम से अनेकानेक बंदिशों की रचना की है। जिनका विधिवत प्रचार आज भी देखने को मिलता है। उस्ताद नियामत खां 'सदारंग' ने अपने पूर्व प्रचलित ख्याल में वीणा के जोड़ तथा एक स्वर को आधार बना कर विस्तार करने और बोलतान आदि तत्वों को समाहित कर के ख्याल शैली को नया कलेवर दिया इस नवीन कलेवर की शैली को विद्वत जन 'कलावन्ती ख्याल' के नाम से स्वीकार किया। सदारंग तथा अदारंग ने ख्याल के लिए

अनेक कार्य किया अनेक शिष्यों को भी तैयार किया किन्तु स्वयं कभी ख्याल गायन नहीं किया।

समय के साथ धीरे धीरे ख्याल गायन की अनेक शैलियों ने अपना अस्तित्व सिद्ध किया। ये अलग अलग शैलियाँ शनैः शनैः घराने का रूप लेने लगी तथा ख्याल शैली अपने लोकप्रियता के नवीन शिखर को स्पर्श करने लगा। ख्याल शैली के उत्थान के लिए अनेक कलाकारों ने अपना विशेष योगदान दिया। इस उत्कर्ष काल में ऐसा भी समयी आया जब गायन के तत्व एक परिवार में सीमित रह गये इससे लोकप्रिय गायन शैली कुछ परिवारों में सिमट कर रह गयी। पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर तथा पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जी के अथक प्रयास से यह अत्यंत लोकप्रिय गायन शैली पुनः सर्वसाधारण के लिए सीखने के लिए सुलभ हो सकी। ख्याल गायन शैली ने समय समय पर अनेक नवीनता को सहर्ष स्वीकार किया है। ख्याल के इस विकास के क्रम में अनेक नवीन चीज़ें जो कि अन्य शैलियों में शोभायमान थीं, का समावेश होने से इसका स्वरूप दिन प्रतिदिन निखरता गया तथा यह वर्तमान स्वरूप में पहुँच गयी।

शोध निष्कर्ष :-

ख्याल शैली के उद्‌भव एवं विकास के क्रम में शोध कार्य में देखा जा सकता है कि इस शैली के प्रणेता माने जाने वाले अमीर खुसरों तथा जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की दोनों ही पक्ष में पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई है। अतः इस शैली के आविष्कारक के सन्दर्भ में किसी एक निष्कर्ष पर पहुँच पाना अत्यंत कठिन है।

ख्याल शैली के सृजन के आधार को ले कर भी अलग अलग मत के पक्ष में तथ्य सामग्री भी प्राप्त होती है। ख्याल शैली की संरचना प्राचीन ग्रन्थों (शारंगदेवकृत संगीत रत्नाकर) में वर्णित गीतियों से मिलती जुलती है। इन गीतियों में भी 'साधारण गीति' के तत्व तथा वर्तमान ख्याल गायन शैली के तत्वों तथा अंगों में साम्यता देखी जा सकती है। इस के साथ ही कुछ विद्वान ख्याल शैली को ध्रुपद का परिमार्जित स्वरूप मानते हैं। इस मत की पुष्टि के लिए भी ख्याल गायन शैली में ध्रुपद के विविध अंगों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

ख्याल के सृजन का आधार तथा इसके सृजनकर्ता के सन्दर्भ में विद्वत जन एक मत नहीं हैं किन्तु यह शैली अत्यंत लोकप्रिय होने के साथ साथ अपने विकास के नित नूतन आयामों को स्पर्श कर रही है। ख्याल शैली को शास्त्रीय संगीत में अतिविशिष्ट स्थान प्राप्त है। इस शैली के लोकप्रियता ने इसे सदैव ही जनभावना के अनुरूप बने रहने के लिए प्रेरित करती है।

भोजपुरी समाज को उत्कृष्ट बनाने में भिखारी ठाकुर का लोक नाट्य परंपरा

मो. इब्रान, डॉ. सुरेन्द्र कुमार

शोध सार

भारत की मूल लोक परंपरा यहाँ के गावों में निवास करती है जो अशिक्षित है, शास्त्र विहीन है, एवं असुव्यवस्थि है लेकिन इनमें प्रेम की निरंतर रसधार बहती रहती है, यहाँ भाव की प्रधानता होती है, अपनापन होता है, भाई-चारा और गंगा-यमुना तहजीब का यहाँ मिसाल दिया जाता है। यहाँ नर्मदा की कंचन-नीर की तरह सच्चाई और निश्चलता होती है तथा यहाँ के लोग सभी प्रकार के दिखावेपन, बनावटीपन और नगरीय आधुनिकता एवं शस्त्रियता से कोसों दूर दिखाई देते हैं। यहाँ के अनेकानेक लोक परम्पराओं में हमारा लोकनाटककला भी ग्रामीण जनमानस की भावनाओ से उत्पन्न नाटय परंपरा है जिसमें ग्रामीण समस्यओं को नाटक के रूप में ग्रामीण दर्शकों के समक्ष उनके कल्याण के लिए ग्रामीण कलाकारों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

इसी परंपरा को निर्वहन करते हुये इस प्रांत के प्रसिद्ध जन लोक कलाकार भिखारी ठाकुर भी एक ग्रामीण, गंवार और लोक कल्याणकारी कलाकार थे जिन्होंने इस भूभाग की सामाजिक व्यथा एवं पीड़ा को नजदीक से देखा, समझा, जाना और उसे अनुभव कर यहाँ के जनमानस के कल्याण हेतु कुल 12 नाटकों की रचना किया जो सामाजिक कुरीतियाँ, अशिष्टता, दिशाहीनता, नशाखोरी, चोरी, जाती-प्रथा, उंच-नीच, नारी की अन्तः वेदना, अशिक्षा और पुरुष प्रधानता आदि जैसे अनेकानेक विषयों पर उन्होने जोरदार कुटाराघात कियाद्य

मुख्य शब्द : *लोकनाट्य, जनमानस, पारंपरिक, ग्रामीण एवं लोककल्याण*

परिचय

भिकारी ठाकुर

18 दिसंबर 1987 को एक गरीब नाई दलसिंगार ठाकुर जी के घर गंगा किनारे कुतुबपुर ग्राम, सारण जिला, बिहार प्रांत में जन्में भिखारी ठाकुर जन-जन की बात करने वाले, आमजन की आवाज बनने वाले एक उदार जनकवि, नाट्यकार, नाट्यनिर्देशक, अभिनेता, लोक गायक, संगीतकार और एक कुशल लौंडा नाच के नर्तक थें। इनका बचपन संघर्सों में बीता, गरीबी की मार ने इन्हें बचपन से ही अपने पिता के साथ हजामत बनाने और चिट्ठी-नौता देने का काम करने के लिए मजबूर कर दिया। बहुत मुश्किल से उन्हें 10 तक के पहाड़े और अक्षर ज्ञान का बोध हुआ। भिखारी ठाकुर के जीवन की सही जानकारी एवं संघर्ष की कहानी उन्हीं के द्वारा रचित संगीत संग्रह 'जीवन परिचय' में मिलता

*शोधार्थी, संगीत विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, मो. 6206946274, ईमेल. ibran0089@gmail.com

** सहायक आचार्य (गायन), संगीत विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, मो. 7742681966, ईमेल. sursesurendra@gmail.com

है। वे अपना अनुभव साझा करते हुए लिखते हैं-

(गीत)

छूरा छूटल नाच का जर से।। टेक।।
माथ कमाई दींहि बोलहटा छूटे ना काइंची कर से।
खायक मजूरी मांगे का बेरिया, झगड़ा होत नारि-नर से।।छूरा।।
जहाँ रेल के सुबहित रास्ता भारा ना मांगी डर से।
ग्रीष्म ताप में चिट्ठी नेवती गिरे पसीना गतर से।।छूरा।।1

भिखारी ठाकुर ने खुद अपने जीवन परिचय में लिखा है खड़गपुर में रामलीला देखने के पश्चात ही मेरे मन रंगमंच करने की उत्सुकता जागी और घर वापस आकार एक नाच मंडली की स्थापना की। शुरुआती दिनों में मुझे बहुत संघर्स कारन पड़ा एक तो मुझे अभिनय, गायन, नृत्य एवं नाट्य निर्देशन का कोई अनुभव नहीं था और दूसरा नाच करने वाले को समाज बहुत ही हीन दृष्टि से देखती थी। मेरे माता-पिता खुद नहीं चाहते थे की मैं नाच करूँ इसलीयर मैं घरवालों से छुपकर नाच के प्रोग्राम में जाता था। ग्रामीण लोगों की समस्या, उत्पीड़न, बेवसी, लाचारी, जात-पात, नशाखोरी, पलायन की समस्या और पुरुष प्रधान समाज में नारियों की दुर्दशा ने मुझे नाट्यलेखन के लिए प्रेरित किया और प्रभु की कृपया से मैंने कुल 12 लोकनाटकों के साथ कुल 29 पुस्तकों की रचना की।

भिखारी ठाकुर की इन रचनाओं ने भोजपुरी रंगमंच को फर्श से अर्श तक पहुँचाने का काम किया है और इनकी प्रसिद्धि को सम्पूर्ण भरत वर्ष ही नहीं वरन मोरिसस, फिजी, श्रीलंका, बर्मा और सात समुंदर पार यूरोपीय देश तक पहुँचा दिया। इन्होंने अपनी सभी पुस्तक रचना को एक दोहा के छंदों में पिरोहा है जिसे डॉ. वीरेन्द्र नारायण यादव ने अपनी पुस्तक 'भिखारी ठाकुर रचना वाली' में 'भिखरी-परिचय', खंड 'घ' 'भिखारी ठाकुर की रचनाएं' में भी अंकित किया है।[2]

बिदेसिया

बिदेसिया, भिखारी ठाकुर द्वारा रचित सर्वधिक चर्चित एवं लोकप्रिय नाटक है जिसकी रचना इन्होंने सन् 1917 में की और अनेका-अनेक रंगमंचीय प्रदर्शन के पश्चात सन् 1936 में इसका प्रकाशन किया गया।[3] इसकी लोकप्रियता के कारण इसे लोगों ने भोजपुरी लोकनाट्य शैली तक कहा दिया। किसी नाटक को नाट्यशैली की संज्ञा मिलना सच में उस नाटक के लिए गौरव की बात है। सम्पूर्ण बिहार में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो जिसने बिदेसिया नाटक की कहानी और उनके गीतों को न सुना हो। पलायन की समस्या और पतिवर्ता स्त्री की वेदनाओं को बिदेसिया नाटक में इन्होंने जीवंत कर समाज को इस समस्या के समाधान के लिए प्रेरित किया।

इस नाटक में मुख्य चार पात्र है- बिदेसी, प्यारी सुंदरी, बटोही और दूसरी पत्नी यरंडीद्ध। बिदेसिया नाटक के नायक है 'बिदेसी', प्यारी सुंदरी के माना करने के पश्चात भी मजदूरी करने कोलकाता चला जाता है। कोलकाता के चौंकाचौंध में अपनी जीमेदारी भूल कर एक रंडी के साथ रहने लगता है और यहाँ घर में प्यारी सुंदरी पति के वियोग में विलाप करती है-

लोरिकायन के लय में

जनियाँ मकनियाँ में,
हनि के केवरियाय डहकत बाड़ी बारम्बार।
पिया घर रहितन,
जवन-जवन चहितनय कहितन करिती तइयार।।
मनवाँ भवनवाँ अंगनवाँ में लागत नइखेय कब मिलिहन समाचार।
कहत 'भिखारी' नाई,
प्यारी के चरित गाइय काइ करिहन करतार।।4

बटोही के मदद से प्यारी सुंदरी बिदेसी को संदेश भेजती है जिसे सुनकर बिदेसी को प्यारी सुंदरी के तप, त्याग, बलिदान और दुखों का एहसास होता है और घर वापस आ जाता है। उसके के पीछे-पीछे दूसरी पत्नी (रंडी) भी गांव पहुँच जाती है और तीनों खुशी-खुशी रहने लगते हैं।

बिहार में आज भी पलायन की समस्या ज्यों की तों बनी हुई है मेहनती, कर्मठ और लगनशील होने के बावजूद भी आज बिहार के छात्रों को अच्छी शिक्षा के लिए देश के अन्य राज्यों में पलायन कारन पड़ता है, मजदूरों को दो वक्त की रोटी के लिए कोलकाता, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, असम जैसे राज्य में जाना परता है। कई दशक पहले ही भिखारी ठाकुर ने इस गंभीर समस्या से उत्पन्न जिंताजनक स्थिति के परिदृश को बिदेसिया नाटक के द्वारा समाज और सरकार को आईना देना का प्रयास किया था। लेकिन ये विडंबना है की आज भी स्थित जैसी वैसी की वैसी है। अतः बिहार की जनता एवं सरकार को इस समस्या पर ध्यान देने और इसके समाधान के लिए ठोस कदम उठाने की जरूरत है।

भाई-विरोध

भाई-विरोध एक ग्रामीण पारिवार की कहानी है जिस परिवार में तीन भाई उपकारी, उपद्दर और उजागर तीनों एक साथ एक खुशी-खुशी रहते है। उपकरी बड़ा भाई होने के साथ-साथ बहुत समझदार और पढ़ा लिखा है जो परिवार को एक सूत्र में बांध कर रकता है। नाटक की खलनायिका उपद्दर की पत्नी लोभी और दुष्ट चरित्र की महिला है जो एक कुटिल बुढ़िया के बहकावे में आ कर घर और सारी संपाती का बटवारा करवा लेती है और छोटे भाई को भी प्यार की डोर मे बांध कर अपने साथ रख लेती है। संपत्ति के लोभ में अपने पति के साथ मिलकर छोटे भाई उजागर का कत्ल कर देती है तथा अपने पति को धमकी देती है की अगर वो उसे बहुत सारे गहने लाकर नहीं देगा तो उसे भी छोड़ कर चली जाएगी। जिससे उपद्दर को चोरी करनी पड़ती है और वह पकड़ा जाता है। यह देख कर उपकार अपने भाई को बचाने के लिए सारा इल्जाम अपने ऊपर ले लेता है। परंतु सिपाही को सत्य का पता चलते ही दोषी उपद्दर पर बहुत बड़ी रकम जुर्माना करता है और उसे जेल में डाल देता है। अंत में छोटे भाई की हत्या का सच्चाई जानकार उपद्दर उपकार और उसकी पत्नी विलाप करते हैं और नाटक खत्म हो जाता है।

इस नाटक के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने समाज को यह प्रेरणा देने का प्रयत्न किया है की संयुक्त परिवार ही खुशहाल और समृद्ध परिवार है जहाँ अपनों के लिए हमेशा प्रेम और मुसीबत में अपनों का साथ होता है। अविश्वश, आपसी मतभेद, लोभ और स्वार्थ मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है जो किसी भी समृद्ध परिवार को विखंडित कर उसकी समृद्धता को धूल में मिला सकता है।

बेटी-वियोग

नाटक के मुख्य पात्र लोभा, चटक, उपातो, झँटू दूल्हा और पंडिजी सम्पूर्ण नाटक के पाँच स्तम्भ हैं जो नाटक को अतिरोचकता के साथ दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। चटक कर्ज में डूबा एक ग्रामीण गरीब किसान है जिसकी बेटी शादी योग है। गरीब माता-पिता को बेटी की शादी के लिए परोसी हमेशा टोकते और ताना मारते रहते हैं इसलिए वो पंडित जी के साथ मिलकर अपनी बेटी की शादी एक बूढ़े सेठ से करवा देते हैं। जिसके लिए उन्हे सेठ से बहुत सारे पैसे भी मिलेते हैं। पैसे लेकर बेटी की शादी करवाने की वजह से इस नाटक को 'बेटी-बेचवा' नाम से भी जाना जाता है। शादी के बाद पत्नी सुख न निलने पर उपतो घर वापस आ जाती है और उसके पीछे उसका बूढ़ा पत्ती झाँटू भी उसे वापस ले जाने के लिए आ जाता है। पांचों द्वार यह बोलकर उसे वापस ससुरार भेज दिया जाता है की शादी के बाद पति की सेवा कारना ही पत्नी का धर्म है और पति का घर ही उसका अपना घर। इस नाटक के संवाद और पात्र जहँ दर्शकों को खूब हस्ता है वहीं करूंमय लोकधुनों में उपतो का विलाप से दर्शकों के आँखों मे आँसू आ जाते हैं।

इस नाटक को देखने से आप ये जरूर समझ जाएंगे की भिखारी ठाकुर के नाटक को नारीवादी नाटक और भिखारी ठाकुर को बिहार के नरिवाद का अग्रदूत क्यों कहा जाता है। इस नाटक में प्रत्यक्ष रूप से वेमेल शादी या फिर यूं कहे की धन के लोभ में बेटी बेचने की समस्या को दिखाने का प्रयास किया गया है। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से भिखारी ठाकुर ने समाज की उस सबसे बड़ी समस्या पर जोड़दार प्रहार किया है जिसकी वाजे से लोग बेटी को आशीर्वाद नहीं अभिशाप समझते है, जिसकी वजह से माँ जिसे 9 महीने अपने खून से सींचती है उसकी हत्या गर्व में ही करवाने के लिए मजबूर हो जीती है और जिसकी वजह से पापा को अपने जान से भी प्यारी बिटिया को एक बूढ़े आदमी के साथ शादी करवानी पड़ती है। वह समस्या है 'दहेज'। भिखारी ठाकुर व्यंग करते हुए लिखते हैं-

चौपाई

बेटी बेंच के धाइलऽ माल।
तोहरा सिर पर चढल काल।।
चढ़ल बंस के पानी गइल।
जब से तोहार जबाना भइल।।
अइसन बंस में जमलऽ कूर।
दया-धरम के कइलऽ दूर।।5

बिधवा-विलाप

बिधवा-पिलप बेटी-वियोग नाटक का अगला भाग है जिसकी नायिका उपतों की शादी झाँटू नामक अमीर बीमार बूढ़े से होने के कुछ समय पश्चात ही उपातो को निःसंतान ही विधवा जीवन जीने के लिए वाध्य होना पड़ता है। अपनी सम्पत्ति और खेत-खलिहान की देख-रेख के लिए उपतो अपने एक गरीब जाऊत (उदबास) और उसकी पत्नी को अपने साथ रख लेती है और उसके काम से प्रसन्न होकर उसे अपनी धन-संपत्ति और अन्न-पनि का ताल- चाभी सौंप देती है। जिससे ये दोनों अपने आप को घर का मालिक समझने लगते है और विधवा उपातो के प्रति उनका स्वभाव ही बदल जाता है। एक दिन अपने दरबाजे पर आये साधु को विधवा 4 आना दान में दे देती है जिससे उदबास बहु बहुत क्रोधित हो जाती है और अपने पति के साथ मिलकर विधवा को तीर्थयात्रा पर भेजने के बहाने उनकी हत्या करने का षडयंत्र रचने

लगती है। तीर्थयात्रा जाने के द्वारान रास्ते में जब उदबास और उसका मित्र उपदेस विधवा की हत्या करना चाहता है तो बिधवा विलाप करने लगती है जिससे एक साधु आकार उसे बचा लेता हैं और विधवा जीवाने के शेष दिन ईश्वर की भक्ति में बीता देती है। नाटक के संक्षिप्त कथासार से ही यह स्पष्ट हो जाता है की विधवा स्त्री के प्रति समाज की क्या नजरिया है? उन्हें किस तरह से समाज में अपमानित किया जाता है तथा उनको कितना दुराचार्य सहन कारन पड़ता है। जवानी में ही विधवा का अभिशाप वेमेल शादी और बेटियों के बेचने और खरीदने का ही प्रतिफल है। जिसका क्रूर परिणाम भिखारी ठाकुर ने विधवा विलाप नाटक मे दिखाने का प्रयत्न किया है और वेमेल शादी एवं बेटी के क्रय- विक्रय को अभिशाप बताते हुए समाज को सही दिशा निर्देशित किया।

कलयुग प्रेम-

कलयुग प्रेम निसइल नामक एक ग्रामीण व्यक्ति की कहानी है जो शराब और पर-स्त्री गमन जैसी बुरी लतों का शिकार होकर अपनी सारी धन-संपत्ति बेच देता है और उसकी दुखहारिन पत्नी और बच्चे दो वक्त की रोटी के लिए मोहताज हो जाती है। उसकी दुखहारिन पत्नी उसे बहुत समझती है की शराब छोड़ दे लेकीन वो रोज पीकर कर गाँव के नाले में पड़ा रहता है। इस सब से तंग आकार बड़ा बेटा घर छोड़ कर कोलकाता भाग जाता है। इधर दिन-प्रतिदिन निसइल की आदतें बिगड़ती जाती है। वह अपनी बीबी का सार गहना, कपड़ा और घर के दरवाजे-चौखट भी बेच देता है। छोटे बेटे के हाथ का बाला हासिल करने के लिए अपने बेटे का ही झरप में सर फोड़ देता है। परिवार की स्थिति इतनी खराब हो जाती है की वेचरी दुखहारीन को भूखा ही सोना पड़ता है। एक दिन वह रंडी को भी घर लेकर आ जाता है। उसकी पत्नी रंडी से विनती करती है की निसइल को नशे के लत से छुरा दे परंतु रंडी उसका उपहास करती है और उसे दूसरी शादी करने की नसीहत दे देती है। इसी क्रम में कुछ दिन बाद उसका बीटा कोलकाता से बहुत सारा धन कमा कर वापस आता है और आपनी माँ एवं छोटे भाई के साथ खुशी-खुशी रहने लगता है। इस तरह नाटक का शुखांत समापन होता है।

भिखारी ठाकुर ने बड़ी कुशलता से अतिमनोरंजक पूर्वक नाच-गान, खंजरी की झनकार, नाल पर थाप और हारमुनियम के सुर-तान के सहारे दो बड़ी समस्याओं का इतना वीभत्स रूप दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया की लोगों ने स्वतः ही शराब छोड़ने के लिए मजबूर हो गया।

राधेश्याम बहार-

राधेश्याम बहार एक संगीत-नाट्य है जिसमें संगीत पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है। भिखारी ठाकुर ने इस संगीत नाट्य में भगवान श्री कृष्ण के बाललीला एवं रासलीला के दृश्यों का मनोरम चित्रण किया है। उनकी बाल क्रिडा, बाँसुर बजाने, गय चरने और यमुना तट पर गोपियों को छेड़ने का वर्णन इस नाटक में गीतों के माध्यम से किया गया है। जब श्री कृष्ण जी गोपियों का घड़ा फोर देते हैं और यमुना नदी से पनि नहीं भरने देते है तो सभों गोपियाँ यशोदा को शिकायत करने पहुँच जाती है और यशोदा माँ से कहती है- कृष्ण ने कंकर मारकर मेरी गगरी फोर दी। मेरी चूड़ियाँ तोड़ दी। मेरा आंचल खींच दी। मेरे गले का मोती का माल तोड़ दिया। मेरी चोली मसका दी। मेरी चोली का बंद खोल दिया। मेरी कीमती साड़ी फाड़

दी। श्री कृष्ण अपने बचाव में बकालत करते हुए कहते है- मैं तो अभी बहुत छोटा हूँ मैया। मैं ये सब काइसे कर सकता हूँ इनलोगों ने ही मेरी बाँसुरी छिन लेती है। मेरा पीताम्बर उतार लेती है। मेरा मोर मुकुट ले लेती हैं और बुरी-बुरी गलियाँ देती है इस पर यशोदा उलट ही गोपियों को ही डाँटती है और उनके घर वालों से शिकायत करने की धमकी देती हैं।[6]

इन सभी घटनाओं को भिखारी ठाकुर राधेश्याम बहार नाटक में पिरोह कर भगवान श्री कृष्ण के लीलाओं का गुणगान करते है और ब्रह्मा के अवतार श्री कृष्ण को सत-सत नमन करते हैं तथा भुजपुरी समाज को इनकी आराधन करने का परामर्श देते है।

गंगा-स्नान-

बिहार के गाँव में गंगा स्नान का एक अलग ही महत्व है। ग्रामीण लोगों का विश्वाश है की कार्तिक मांस की पूर्णिमा पर नदियों में स्नान कर दान करने से बहुत पुण्य मिलता है। इस अवसर पर नदी किनारे मेला लगता है तथा गाँव के व्यपरी सामान बेचने आते है। ग्रामीणों के लिए यह पिकनिक के समान होता है जहाँ लोग जाकर मस्ती करते हैं और छोटी बड़ी कारीदारियाँ करते हैं।

नाटक चौपाई के छंद में गणेश वंदना से शुरू होती है। मुहल्ले की कुछ महिलायें आपस में मिलकर चुप-चाप गंगा स्नान और मेला घूमने की योजना बना रही होती है और इसके लिए वे अपने पतियों को भी मना लेते है। सत्तू, मिर्च, नमक, ठेकुआ और कुछ नये कपड़ों की पोटली तैयार कर, नये कपड़े और गहने पहन कर मेला देखने के लिए तैयार होते हैं। ये बूढ़े लोग को मेले में नहीं ले जाने चाहते हैं क्यों वो जल्दी थक जाते हैं और युवा महिलओं के मस्ती मे अर्चन डालती हैं लेकिन मलेछू पत्नी के माना करने के बाद भी अपने माँ को साथ लेकर जाता है। मलेछू की पत्नी सार सामान अपनी बूढ़ी सास को उठाने दे देती है। जिससे किचार मे गिरने से पोटली के सारे कपड़े गंदे हो जाते हैं और मलेछू की पत्नी गुस्सा में आ कर मलेछू को धमकी देती है की अपनी माँ को मार कर यहाँ से भगाओ नहीं तो तुम्हें छोड़कर माइके चली जाऊँगी। विवश होकर मलेछू अपने माँ को मारता है और वहाँ से भागा देता है। स्नान कर मलेछू और उसकी पत्नी मेला घूमती है। वहीं उसे एक ठग मिलता है जो संतान प्राप्ति का लोभ देकर मलेछू की पत्नी को एकांत में ले जाकर उसके सारे गहने रुपया छीनकर भाग जाते हैं। मलेछू और उसकी पत्नी को यह बोध होता है की ये सब उसके साथ इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने अपने माँ को अपमानित किया और उन्हें अकेला छोड़ दिया। वे माँ को पुनः ढूंढ़ते है जो भीख मांग रही होती है और उनसे अपनी गलती के लिए क्षमा मांगकर प्रेम पूर्वक घर ले जाते हैं।

भिखारी ठाकुर ने इस नाटक के माध्यम से समाज को मातृप्रेम के लिए प्रेरित किया और माँ कि किरतार्थता को आदर करने की सलाह दी। साथ ही साथ अंधविश्वश जैसी बड़ी समस्या पर कुटाराघात करते हैं। अगर इस नाटक के सार को एक पंक्ति मे कहा जाए तो वह है 'मातृ भक्ति सर्वशक्ति'।

पुत्र-बध-

लोभ, लालच, मोह, ईर्ष्या, क्रूर, और आभूषण प्रेम की भावनाओं को आधार बनाकर सम्पूर्ण कहानी को पताका एवं प्रकारी के साहियोगात्मक प्रयोग से रचा गया है। नाटक के नायक 'चपाटराम' की दो पत्नियाँ है- बड़की और

छोटकी। बड़की को एक होनहार, समझदार और आज्ञाकारी पुत्र है जिसका नाम 'चेतराम' है। दोनों सौतन सगी बहन की तरह रहती है और चेतराम भी छोटकी को अपनी माँ समझता है। एक दिन बड़की चेतराम और घर की सारी जीमेदार छोटकी को देकर मायके चली जाती है।

छोटकी को गहनों से बहुत लगाव है और वह आभूषण को प्राप्त करने के लिए कुछ भी कर सकती है। वह स्वभाव से बहुत लालची और दुष्ट प्रवीरती की है। इसी का फायदा उठा कर एक कुटिल बुढ़िया घर में फुट डालने के लिए छोटकी का कान भारती है। छोटकी कुटनी बुढ़िया के बहकावे में आकार आभूषण प्रेम में स्वर्णकार के साथ हम विस्तार हो जाती है। यह बात जब चेतराम को पता चलती है तो वो अपनी सौतेली माँ को बहुत समझता है परंतु छोटकी उलटा ही उसी पर दुश्चरित्रता का लांछन लगा कर उसे मार डालने के लिए अपने पति चपाटराम पर दबाब बनाती है और चपाट अपनी पत्नी की झूठी बातों में आकार अपने ही बेटे को मरने के लिए तैयार हो जाता है। हिरण का मांस लाने के बहाने छोटकी चेतराम को जंगल भेज देती है वहाँ चपाटराम अपने ही बेटे पर हमला कर देता हसी जिस से चेतराम गहरी बेहोशी में गिरकर मृतप्रया हो जाता है। बड़की जब अपने बेटे को ढूँढने जंगल जाती है तो उसे उसका बीटा मृतप्रया बेहोश मिलता है। एक साधु की कृपा और उपचार से वह बच जाता है और साधु के ही कुटिया में ही माँ-बेटे रहने लगते है।

चपाटराम को भी घर से दूर करने के लिए छोटकी ने उसे गाने वाला पौधा लाने के लिए जंगल भेज दिया। वहाँ उसकी मुलाकात एक साधु से होती है जिन्होंने यह कर चपाट को घर भेज देता है की गाने वाला पौधा उसके घर में ही है। चपाट जब घर आता है तो सोनार को अपनी पत्नी के साथ कमरे में पकड़ लेता है उसके पीछे-पीछे बड़की एवं चेतराम भी घर पहुँच जाता है और छुटकी के सारे रहस्य का पर्दाफास हो जाता है।

गबरघिचोर-

गबरघिचोर का नायक गलीज शादी के तुरंत बाद ही दाम कमाने के लिए कोलकाता चला जाता है और 15 वर्ष बाद लौटकर आता है। जब वह घर आता है तो पता चलता है की उसकी पत्नी का गड़बड़िया के साथ देह का नाता है और उसे 13 साल का एक बीटा भी है। जिसका नाम गबरघिचोर है। गलीज उस पर अपना अधिकार जमा कर उसे अपने साथ ले जाना चाहता है। जिससे गलीज, गड़बड़िया और गलीज बहु मे विवाद हो जाता है। पंच बुलाया जाता है और बारी-बारी तीनों गबरघिचोर पर अपना स्वामीत्व बताते हुए अपना तर्क प्रस्तुत करता है। सभी का तर्क बिलुल सही होता है। इसलिए अंत पंच यह निर्णय देते है की बच्चे को तीन टुकड़ा में बाँट कर तीनों को बाँट दिया जाए। इस पर माँ पंच से विनती करने लगती है की बच्चे को मत मारिये। इसे इन दोनों में किसी एक को दे दीजिए लेकिन मेरे बच्चे को जिंदा रहने दीजिए। जिस से पंच प्रभावित होकर बोलते हैं जिसके दिल में बच्चे के लिए प्यार, माता, करुणा है बच्चा उसे को दिया जाएगा और गबरघिचोर को उसकी माँ को सौंप दिया जाता है। यहाँ फिर एक बार पुरुषवादी सामंत समाज में माँ की ममता ए करून और प्रेम का जीत होता है।

भिखारी ठाकुर ने इस नाटक में भी पलायन की समस्या को मुख्य विषय के रूम दिखाया है

भिखारी ठाकुर ने इस नाटक में स्त्री पात्र को विशेष अधिकार दिया तथा नायिका को सशक्त और आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया। गड़बड़ी के साथ शरीरी संबंध को भी नजरंदाज कर स्त्री को उसका अधिकार दिया और नाटक के माध्यम से नारी को सशक्त किया।

बिरहा बहार-

बिरहा बहार एक संवाद नाटक है जिसमे कथावस्तु की कमी है। कथा योजना के के अभाव को नायक संवाद योजन से तृप्त करता है और नाटक के कथ्य को संवाद के सहारे प्रस्तुत करता है। इस नाटक में भिखारी ठाकुर ने धोबी के तिरया-चरित्र को एवं उसके कठिन परिश्रम को दिखाया है। भिखारी ठाकुर ने धोबी और धोबिन के संवाद के रूप में उसके कठिन परिश्रम, धोबी की धार्मिक ज्ञान एवं उसकी बौद्धिकता को बिरहा बहार नाटक में वर्णित किया है। उन्होंने पुराण, महाकाव्य मे वर्णित कथाओं के प्रसंगों को भी धोबिन की जिज्ञासा और धोबी की बुद्धिमता और शास्त्रज्ञान के माध्यम से दर्शकों तक पहुंचाया है। भिखारी ठाकुर मानते है की भगवान की सच्ची आराधना से ही मुक्ति संभव है इसलिए वह समाज को संदेश देते है की कर्म और श्रम की श्रेष्टता के साथ आस्था पूर्वक अपने भगवानों की सच्ची भक्ति से ही इंसानों का कल्याण संभव है।

नकल भांड आ नेटुआ के-

इस नाटक मे दो विधा प्रयोग किया गया है। प्रथम नकल भांड- यह मूल रूप से एकपात्रीय नाट्य विधा है जो नृत्य और संगीत प्रधान है तथा इसके प्रत्येक गीतात्मक प्रसंग के पश्चात तनाव-शैथिल्य के लिए मंच पर उपस्थित वाद-वृंद एक स्वर में वाह वाह के हास्य व्यंगपूर्ण स्वरों से इसका समापन करते है। भिखारी ठुकर ने परिवार के बनते बिगड़ते संबंध, पत्नी की मनमानी, नशाखोरी के दुष्परिणाम, भजन कीर्तन से विमुखता, और लोभ-लालच आदि पर व्यंगात्मक कुटाराघात को इस नाटक का विषय बनाया।

दूसरा नकल नटुआ के- नेटुआ मुख्य रूप से एक गीतात्मक नृत्य विधा है। जो तीव्र गति के नृत्य के लिए जाना जाता है। इसके नर्तक जम्फर पहनते है और एक चटकदार ओढनी गले में रखते है जिसे ये नारी की अभिनय करते समय सर पर ओढ़ लेते है। पहले ये अपने कमर मे पखावज बांध कर रखते थे लेकिन अब उसका जगह कठताल और झाल ने ले लिया है। यह शृंगार रस प्रधान होता है तथा इसका आयोजन विवाह संस्कार के द्वार पूजा और परिछावन के अवसर पर निम्नवर्ग के समुदाय द्वारा किया जाता है। इसके मंचन के लिए किसी विशेष मंच की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि कलाकार भीड़ मे ही इसकी प्रस्तुती शुरू कर देती है और दर्शक गोलाकार में खड़े होकर प्रदर्शन का आनंद लेते हैं।[7]

ननद-भउजाई-

बाल विवाह के साथ ननद भउजाई के रिस्ते को इस नाटक में मनोरम रूप से प्रस्तुत किया गया है। ननद अखजो की शादी बचपन में ही हो गई है लेकिन गवना नहीं होने के कारण, जवान होने के उपरांत भी वह मायके में है। उसकी साहिली जब अपने पति के बारे में बात करती है और वह जब अपने भईया- भाभी को हस्ते मजाक करते देखती है तो वो भी अपने पति के साथ की कल्पना करती है। वह अपने भाभी से मन की बात साझा कर अपने पति परमेशवर के साथ रहने की इकछा प्रकट करती है और

कहती है अगर ऐसा नहीं हुआ तो मैं तपस्विनी बन जाऊँगी। भाभी अखजो से पहले मजाक करती है फिर समझा-बुझा कर धैर्य रखने की सलाह देती है। तभी एक दिन अखजो का पति उसे विदाई करवाने आ जाता है और सभी प्रसन्न होकर अखजो की विदाई करते है। इस नाटक में हास्य रस की प्रधानता है जिसका कथानक हास्य-परिहास्य से सराबोर है भिखारी ठाकुर इस नाटक के द्वारा यह संदेश देते है की ननद- भाभी का रिस्ता हसी मजाक से भरा एक अनोखा रिस्ता है। जहाँ ये एक-दूसरे से खुल कर अपनी मन की बात करते है और अपनी आकांक्षाओं को परिहास के रूप में साझा करती हैं। अतः भाभी का ये कर्तव्य है की वो अपनी ननद के जिज्ञासाओं को तृप्त करे और उसे पारिवारिक परामर्श के साथ-साथ दाम्पत्य जीवन को खुशाहाल बने की भी शिक्षा दे।

सारांस-

यह शोध-लेख इन 12 नाटकों का सामाजिक उत्थान एवं विकास में योगदान की भूमिका पर केंद्रितहै। जो पूर्ण रूप से समाज कल्याण के लिए समर्पित है। बिदेसिया नाटक में पलायन की समस्या तथा घर में स्वामी बिन बिरहनी की वेदना एवं पीड़ाको भावपूर्ण रूपेन दर्शाया गया है। 'बेटी-बेचवा' नाटक में वेमेल शादी एवं बेटी बेचने की क्षमाहीन अपराध को, 'गंगा स्ना' में बूढ़ी माँ के साथ बहु द्वारा किए जानेवाले दुराचार को, 'कलयुग प्रेम' में नशाखोरी की गंभीर समस्या इत्यादि को लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर आम जनमानस को जागरूक करने का प्रयास किया। जिसने स्वच्छ, स्वस्थ और समृद्ध समाज के निर्माण में एक अहम भूमिका निभाई।

संदर्भ सूची

1. यादव, डॉ. वीरेन्द्र नारायण (2005) भिखारी ठाकुर रचनावाली, पटना : बिहार राष्टभाषा परिषद्, पृष्ठ-326
2. वही, पृष्ठ-331-332
3. मिश्रा, शची (2014) भिखारी ठाकुर की रचनाओं का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी : कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पृष्ठ-28
4. ठाकुर शीलनाथ एवं अन्य (1979) भिखारी ठाकुर ग्रंथावली, पटना : दुर्गा प्रेस, पृष्ठ-12
5. यादव, डॉ. वीरेन्द्र नारायण (2005) भिखारी ठाकुर रचनावाली, पटना : बिहार राष्टभाषा परिषद्, पृष्ठ-81
6. वही, पृष्ठ-116
7. वही, पृष्ठ-186

ध्रुपद गायन शैली में वीघा का स्थान

डॉ. विशाल जैन, अंजू पा डेय

सारांश

किसी भी कला एवं संस्कृति के विकसित होने में कुछ समय अवश्य लगता है। कला का विकास कब से हुआ इसका मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है उसका कोई निश्चित समय निर्धारित करना सहज कार्य प्रतीत नहीं होता। संगीत के इतिहास का अवलोकन करने से मालूम होता है कि इसका इतिहास बहुत ही प्राचीन है इसका विकास भी अन्य कलाओं की भाँति मन्द-मन्द हुआ है। भारतीय संगीत का इतिहास वास्तव में बहुत प्राचीन, समृद्ध और महत्वपूर्ण विषय है लेकिन संगीत के क्रमिक विकास का कोई इतिहास स्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं होता। प्रारम्भिक अवस्था में संगीत एक कला नहीं था बल्कि उसे कला का रूप प्राप्त करने हेतु समय एवं परिस्थितियों से गुजर कर उभरना पड़ा होगा। मनुष्य जैसे- आध्यात्मिक की ओर बढ़ता गया वैसे-वैसे संगीत कला उन्नति होती गई। किसी काल में गाये-बजाये जाने वाले गीतों एवं धुनों का क्या स्वरूप था यह मात्र अनुमान से ही जाना जाता है। इसका कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता। इस शोध पत्र में हम ध्रुपद गायन शैली में विणा का स्थान पर विचार रखने का प्रयास करेंगे और ध्रुपद में प्रयुक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण वाद्य वीणा का स्थान पर अपने विचार प्रस्तुत करेंगे। ध्रुपद में मुख्यतः दो वीणाओं का प्रयोग किया जाता है रूद्र वीणा और विचित्र वीणा।

ध्रुपद गायन मध्यकालीन सर्वश्रेष्ठ गायन शैली मानी गयी है। मध्यकालीन भारत की एक अनूठी उपज है। 'ध्रुपद' हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पद्धति में ध्रुपद गायन शैली का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

मुख्य शब्द - 1. भारतीय संगीत, 2. ध्रुपद, 3.वीणा, 4. गायन शैली, 5. मध्ययुग/मध्यकाल 6. सामगान

भूमिका

भारतीय संगीत के इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया जाता है- प्राचीन काल, मध्यकाल, आधुनिक काल। मध्यकाल का समय कुछ विद्वानों द्वारा बारहवीं कुछ तेहरवीं मानते है। मेरे अध्ययन के फलस्वरूप मुझे प्राय हुआ कि ग्यारहवीं शदी से मध्यकाल का आविर्भाव अनेक विद्वानों द्वारा मान्य है। मध्य काल का प्रारम्भ में उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत पद्धतियों पृथक लेने लगी। 1300 ई. में भारत वर्ष मुगलों का आगमन हो गयाा और वे अपनी संस्कृति एवं सभ्यता को भारत वर्ष में स्थापित करने लगे और उसी के परिघाम स्वरूप भारतीय संगीत एवं कला पर फारस का प्रभाव देखने को मिला। आक्रमणकारियों के श्रृंगारिक और भोग विलास पूर्ण वातावरण का समावेश भारतीय संगीत में होने लगा। मुगलों ने भारतीय संस्कृति के ग्रन्थों को नष्ट कर दिया। संगीतज्ञों एवं विद्वानों को

*शोध निर्देशक, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ.प्र.

**शोध छात्र, (यूजीसी नेट), संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र., Email.: anjupandey2724@gmail.com, Mob:- 9125874703

बड़े-बड़े प्रलोभन देकर भारतीय विद्वानों से ऐसे ग्रंथों की रचना करवायी जिसमें मुस्लिम संस्कृति एवं सभ्यता की प्रशंसा का वर्णन था।

भारतीय संगीत के इतिहास में मध्यकाल के समय को भारतीय संगीत की दृष्टि से स्वर्ण युग माना जाता है। क्योंकि इस समय तक भारतीय संगीत अपनी उत्कृष्ट एवं विकसित अवस्था में थी संगीत के समस्त ग्रन्थ संस्कृत भाषा में होने के कारण मुस्लिमों को ग्रन्थों को समझ पाना असमर्थ सा लगा तथा इसी के परिघाम स्वरूप संस्कृत भाषा के स्थान पर शास्त्रों में अन्य भाषाओं का समावेश हो गया। इसके साथ ही संगीत के क्षेत्र में गायन-वादन में मुगलों द्वारा अच्छी उन्नति की गयी। नये, नये रागों तथा नवीन वाद्यो का भी निर्माण प्राप्त हुआ। ईरानी संगीत की कुछ विशेषताएँ स्वीकार की गयी तथा नयी शैलियों का विकास हुआ। सभी बातों का मुस्लिम बादशाहों द्वारा आदर हुआ तथा सभी गायको-वादको को सम्मान प्राप्त हुआ। इसी समय संगीत के एक महान व मूर्धन्य विद्वान पं. शारंगदेव हुए जिनके योगदान को कभी भी बुलाया नहीं जा सकता। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकार' की रचना 13वीं शताब्दी में हुई जो भारतीय संगीत को समझने हेतु एक महत्वपूर्ण रचना है। मध्य कालीन संगीत के विकास को विस्तृत रूप से समझने के लिए संगीत का यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। प्राचीन काल में जिस प्रकार नाट्यशास्त्र को स्थान प्राप्त था उसी प्रकार संगीत रत्नाकार की महत्ता मध्यकाल में थी। दक्षिणी एवं उत्तरी संगीत का यह आधार ग्रन्थ माना जाता है।

मध्यकालीन गायन शैली में ध्रुपद का स्थान श्रेष्ठ माना जाता है। जिस प्रकार वर्तमान समय में ख्याल गायन शैली को जो लोकप्रियता प्राप्त है वही मध्यकाल में ध्रुपद गायन शैली का था। ध्रुपद मध्यकाल से लेकर वर्तमान काल तक अपनी प्रभावशीलता बनाये हुए है। ध्रुपद को अन्य सभी गायन शैलियों की जननी माने तो गलत न होगा। इसी के पश्चात् अन्य गायन शैलियों का विकास शनै-शनै होता गया। ध्रुपद को भारतीय संगीत की नीव के समान माना गया है। ध्रुपद 'ध्रुवपद' का अपभ्रंश है जो संस्कृत के 'ध्रुपद' से निर्मित है। ध्रुपद का आर्विभाव दो शब्दों से हुआ ध्रुव और पद जिसका क्रमशः अर्थ अटल एवं गीत की पंक्ति या चरण से है। ध्रुपद शब्द, स्वर, लय व ताल प्रधान गायकी है। स्पष्ट शब्दों चारण इसकी विशेषता है। ठाकुर जयदेव सिंह जी के अनुसार-ध्रुपद शब्द जिनका गायकों में प्रचार है, संस्कृत के ध्रुवपद शब्द का अपभ्रंश है। ध्रुव का अर्थ है नियत विशिष्ट रूप से रचित तथा पद का अर्थ है गेय शब्द समूह। अर्थात् ध्रुवपद वह गान है, जिसका प्रत्येक शब्द निश्चित स्वर और ताल से निबद्ध तो। ध्रुपद के मुख्यतः चार क्रम माने जाते है।

1. आलापचारी (नोम्-तोम्) 2. बंदिश अथवा पद गायन 3. लयबाट (लयकारी)

4. बोलबांट (उपज)

इन्हें ही शास्त्रीय भाषा में रागालप्ति, गीत लयवैचिष्य और भंजनी रूपकालप्ति कह सकते है। ध्रुपद का जन्म प्रबंध से माना जाता है और प्रबंध को साधारण अर्थ में बंदिश भी कहा जाता है। धातु और अंगो द्वारा रचित रचना ही प्रबंध कहलाता है।

संगीत रत्नाकार के प्रबंधाध्याय में प्रबंध के विषय में विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। इस लिए हमने अपने इस शोध पत्र में संगीत रत्नाकार के विषय में भी बताये है। मध्यकालीन ऐसे अनेक ग्रन्थ है जिसमें ध्रुपद के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है। ध्रुपद नामक गेय प्रबंध की चर्चा करते हुए अबुल-फजल ने आईने अकबरी

में कहा है कि ध्रुवपद में ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा होती है, जो अपनी वीरता तथा अन्य गुणों हेतु प्रसिद्ध होते है। इन्होंने कहा कि मध्यकालीन ध्रुपद गायकों हेतु कलाकंत संज्ञा प्राप्त थी। ध्रुपद गायक कलावंत वर्ग में ही प्रायः ध्रुपदों की रचना की है। मध्यकाल में मुगल बादशाह अकबर के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता। इनके दरबारी गायकों में उच्चकोटि के गायकों की नियुक्ति कर का उन्हें वेतन आदि देना ताकि वे अपने गायन में विशेष ध्यान दे सके उन्हें धन की कोई समस्या न हो यह एक प्रतापी राजा ही कर सकता है। बादशाह अकबर की प्रशंसा मियाँ तानसेन जी ने अनेक ध्रुपदों में किया है। बड़ी मनोरंजक बात यह है कि तानसेन ने अनेक ध्रुपदों की रचना की और उनमें से अनेक ध्रुपद में अकबर का नाम डाल दिया। ध्रुपद एक गम्भीर गायकी है तथा इसमें आलाप के विशेष महत्व होने के कारण इसे आलाप प्रधान गायकी भी माना जाता है। आलाप द्वारा ध्रुपद में सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

ध्रुपद में संगत वाद्य के रूप में वीणा और पखावज को विशेष स्थान दिया है। वीणा को समस्त तत् वाद्यों की जननी माना गया है। वीणा से समस्त तत् वाद्यों का उद्‌भव हुआ।

ध्रुपद के डागुर वाणी का आलाप वीणा पर ही आधारित है। आलाप में वीणा के वर्णों की अनुकृति है। वीणा वादन की कला वैदिक काल में ही विकसित हुई। सामवेद का गायन वीणा वादन के साथ होता था। यज्ञ के समय प्रायः वीणा के साथ सामवेद का गान होता था। यज्ञ के समय वीणा के साथ यजमानों की प्रशंसा में गाथा की गाई जाती थी जिसका प्रमाण 'शतपथ ब्राह्मण' में मिलता है। धीरे-धीरे साम-गान के साथ वीणा का प्रचलन समाप्त हो गया। भरत ने गात्र वीणा का वर्णन किया है जिसका संबंध लगे से माना गया है वीणा का वर्गीकरण भरत द्वारा दो रूपों में किया गया है जिन्हें गात्र वीणा एवं काष्ठ वीणा कहा गया है। लकड़ी से निर्मित वीणा को काष्ठ वीणा कहा गया तथा गले को गात्र वीणा। सोलह ई. में वीणा का अपभ्रंश बीन हो गया। प्राचीन काल में तंत्री वाद्यों हेतु 'वीणा' सामान्य संज्ञा रही। मध्यकाल में इसके अन्तर्गत बीन, रूद्रवीणा व सरस्वती वीणा का उल्लेख मिलता है। प. आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति ने इसके नामकरण पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा है कि 'इस बीन के साथ न जाने सरस्वती और रूद्रवीणा का नाम कैसे जुड़ा और मुस्लिमों द्वारा इस बीन का सम्बन्ध हिन्दुओं से जोड़ बैठे। वीणा के निर्माण के संबंध में एक कथा प्रचलित है कि पार्वती जी की शयन मुद्रा से प्रेरणा प्राप्त कर भगवान शंकर ने उनके अंग-प्रत्यगों के आधार पर वीणा का निर्माण किया, इस लिए इसका नाम रूद्र वीणा पड़ा। संभवतः यह किन्नरी का ही परिष्कृत रूप है। रूद्रवाणी में स्थापित एक सप्तम में बारह स्वर स्थानों के कारण भारतीयों ने ग्यारह रूद्र तथा एक महारूद्र के दर्शन किए, इसलिए इस वीणा को रूद्र वीणा कहा जाने लगा। रूद्र वीणा के अनेक रूपों का प्रचलन व वर्णन संगीत पारिजात तथा राधागोविन्द संगीत सार आदि ग्रंथों में प्राप्त होता है। सामगान के समय वेघु ही ऐसा वाद्य था जिसके स्वर स्थिर थे, अतएव उसी से वीणा मिलाया जाता था तथा उसको आधार मानकर उपर्युक्त स्वर-क्रम स्वीकार कर लिया गया।

ऋग्वेद में वाण बनाने की क्रिया का वर्णन प्राप्त होता है और ऐसा कहा गया है कि औदुम्बर की लकड़ी का ढाँचा तैयार करें, उसके पर लाल बैल की खाल मढ़े। ढाँचे में 10 बड़े छेद करें, इनमें प्रत्येक छेद में दस-दस तारों को बाँधने

की व्यवस्था करे। इस प्रकार कुल 100 तार मूँज के या दूब के बनाकर लगावें। इस सम्पूर्ण क्रिया करने के परिघाम स्वरूप जो वाद्य यंत्र निर्मित होता है उसे वाण वाद्य कहते है। इसके अतिरिक्त कर्करी, गर्गर, बकुर, आडम्बर आदि तन्तु वाद्यों के नामों का भी उल्लेख मिलता है किन्तु इन वाद्यों के निर्माण आदि के विषय सम्बन्धित कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। वैदिक शिक्षाशास्त्रों में गात्र वीणा का विस्तृत उल्लेख पाया जाता है। वीणा के लिए वाण शब्द भी आया है। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक अनेक वीणाओं का उद्‌भव हुआ जिनके नामों का हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं- आडम्बर वीणा, अनालम्बी वीणा, अमृत कु डली वीणा, अलाबु वीणा, आलापिनी वीणा, एक तन्त्री वीणा, एकतारा वीणा, कच्छपी वीणा, का ड वीणा, कात्यायनी वीणा, कलावती वीणा, बृहती वीणा, किन्नरी वीणा, लध्वी किन्नरी वीणा, लघु किन्नरी वीणा, कुब्जिका वीणा, कूर्मी वीणा, गोटूवाद्य या महानाटक वीणा, चित्रा वीणा, जया तथा ज्येष्ठा, तुम्बरी वीणा, तंत्री वीणा, दंडी वीणा, दक्षिणात्य, या तंजौरी वीणा, नकुली वीणा, निःशंक वीणा, परिवादिनी वीणा, पिनाकी वीणा, प्रभावती वीणा, ब्रह्म वीणा, महती वीणा, मन्तकोकिला वीणा, यन्त्र, रबाब, रावणहस्त वीणा, रूद्र वीघा, विपंची वीणा, सारंगी, सितार, स्वर म डल आदि।

वीणा की आवाज मधुर गम्भीर, सुडौल व आकर्षक होती है। यह भारतीय संगीत का उत्कृष्ट वाद्य है। वीणा पर विशेष रूप से आलाप, जोड़, झाला, गत आदि का वादन किया जाता है। आलाप हेतु विलंबित लय, जोड़ हेतु मध्यलय को उचित माना जाता है। इसमें स्वरों को मीड़, घसीट एवं गमक के द्वारा जोड़ा जाता है, ताल का प्रयोग गत के साथ आरम्भ किया जाता है। वीणा वादन के साथ मृदंग या पखावज की संगति होती है। ध्रुपद गायन के साथ बीन/वीणा की संगति तानसेन के समय से चलती आ रही है। ध्रुपद गायन हेतु वीणा की जानकारी आवश्यक समझी जाने से कई ध्रुपद गायक बीनकार भी है।

निष्कर्ष

मध्यकालीन ध्रुपद शैली में वीणा का स्थान विषय पर विस्तृत विवेचन करने के उपरांत कहा जा सकता है कि ध्रुपद में वीणा का विशेष स्थान है। दिग्गज से दिग्गज कलाकार भी यह मानते है कि ध्रुपद में वीणा के बोलों को गायन में यथावत् प्रयोग किया जाता है। ध्रुपद को शास्त्रीय संगीत का सर्वश्रेष्ठ गायन शैली मानने हेतु इन वाद्यो जैसे वीणा व पखावज की भूमिका को विस्तृत नहीं किया जा सकता। ध्रुपद गायकी पर ही समस्त गायन विधाओं का भार है या यो कहे कि ध्रुपद ही समस्त विधाओं की जन्मदात्री है तो समभवः गलत न होगा। ध्रुपद की यात्रा के साथ ही इस तत् वाद्य वीणा ने ध्रुपद के विकास में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - प्रो. स्वतन्त्र शर्मा
2. संगीत सारांश - डॉ. ज्योति सिन्हा
3. ध्रुपद गायन परम्परा - डॉ. मधुभट्ट तेलंग
4. संगीत पत्रिका (1958) ध्रुपद में मुगल सम्राट (लेख) - आचार्य कैलाश चन्द्र देव वृहस्पति
5. मालवा में ध्रुपद शैली की परम्परा - डॉ. शर्मिला टेलर
6. भारतीय संगीत वाद्य - डॉ. लाल मणि मिश्र
7. तंत्री वाद्यो पर काफी एवं भैरव थाट के राग - डॉ. निशा पाठक
8. संगीत एवं अन्य ललित कलाओं में रस एवं सौन्दर्य - प्रो. रेनू जौहरी

धमार गायकी

डॉ. स्वाति शर्मा

सारांश

धमार ध्रुवपद गायन शैली की भाँति गाया जाने वाला एक प्रकार है। यह चौदह मात्र की धमार ताल में गाया जाता है। फाग सम्बन्धित होने के कारण इसे 'पक्की होरी' भी कहा जाता है। प्राचीन काल में चर्चरी नामक प्रबन्ध इसी तरह के मिलते हैं, जो चरचरी नामक ताल में निबद्ध होते थे और होली जैसे प्रसंगों पर गाये जाते थे। इसी चरचरी को आज चाचर या दीपचन्दी नाम से जाना जाता है।

धमार गीतों की भाषा ज्यादातर ब्रजभाषा ही है। ब्रजभाषा ही तो है जिसका अपना एक अलग प्रभाव है, अपना एक अलग स्वरूप है। ब्रजभाषा में अपनी एक अनोखी मिठास है जो भगवान कृष्ण की लीलाभूमि एवं फाग खेलने के प्रसंगों के लिए उपयुक्त है। प्रत्येक क्षेत्रीय अथवा प्रांतीय भाषा और बोली का अपना एक विशेष आकर्षण और माधुर्य होता है।

काव्य में जब नाद सौन्दर्य के साधन जैसे लय, यति, गति, तुक, छंद इत्यादि परस्पर यथा स्थान पर मिलते हैं, तब सहज ही संगीत की धारा प्रवाहित हो जाती है। संगीत में प्रयोग की जाने वाली भाषा के स्वीकृत शब्दरूपों में नाना प्रकार के परिवर्तन दिखाई देते हैं, जो संभवतः अनायास ही हो जाते हैं। संगीतज्ञ स्वरयुक्त ध्वनियों की साधना करते हैं और उन ध्वनियों का संतुलन बनाये रखने के लिए किन्हीं शब्दों के उच्चारण में ध्वनि-संबंधी परिवर्तन यथा स्थान करते हैं। सांगीतिक दृष्टि से रस की अभिव्यक्ति एवं भावों की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों के रूप निर्माण में अधिक कोमलता लाने के लिए कुछ लचीलापन अपेक्षित है। ब्रज साहित्य में भी शब्द रूप-निर्माण का लोच इसी तरह कहीं-2 दिखाई देता है।

भारत में ऋतुओं का बहुत महत्व है। प्रत्येक ऋतु को बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। ऋतुओं के अनुसार मनाये जाने वाले पर्व हमारी संस्कृति का अंग बन गये हैं। होली का पर्व जिसे फाग पर्व भी कहते हैं। शीतकाल के अन्त अथवा बसंत के आगमन पर मनाया जाता है। प्रत्येक भारतवासी उसे जातीय भेद-भाव रहित मनाता है। मुसलमान शासकों ने भी इसका महत्व समझकर इसे मनाना आरम्भ कर दिया था।

मध्यकाल को ही संगीत का उपयुक्त काल माना जाता है क्योंकि यही वह काल है जिसमें संगीत का प्रचार एवं प्रसार सही रूप से हुआ। 15वीं-16वीं शताब्दी में जैसा कि सब जानते हैं कि ध्रुवपद से समानता रखने वाली एक अन्य गायन शैली धमार का जन्म हुआ जिसका विषय राधा-कृष्ण की होली लीला का शृंगार रस से पूर्ण गायन करना था जो कि एक सरल गायकी होने के साथ-2 द्रुतलय में गाई जाती थी। साथ ही यह गायकी श्रोताओं को आकर्षित करके

असि. प्रोफेसर, संगीत विभाग, आर.जी. (पी.जी.) कॉलिज, मेरठ

मुस्लिमों में संस्कार डाल रही थी, ब्रजभाषा के होरी नामक लोकगीत को चरचरी ताल में गाते थे। प्राचीन चरचरी प्रबन्ध के साँचे में ढालकर तथा रागों में निबद्ध करके इसे शास्त्रीय संगीत का रूप दिया गया।

धमार गायन शैली का प्रादुर्भाव सोलहवीं शताब्दी में माना जाता है। इसका आविष्कार ग्वालियर (भारत) के संगीत से अपार प्रेम करने वाले महाराजा मानसिंह की राजसभा के गायक इतिहास में प्रसिद्ध संगीतकार कलावत श्री बैजनाथ मिश्र ने किया था जोकि बाद में बैजू बावरे के नाम से प्रख्यात हुए।

धमार ताल में गाये जाने वाले गीत प्रबंध को धमार कहा जाता है। इन गीतों में अबीर, अरगजा, गुलाल आदि सुगंधित शुष्क-पिष्ट एवं पलाश के फूलों के केसरी रंगों द्वारा होली या होरी खेलने का वर्णन किया जाता है। मन्दिरों में भगवान श्रीकृष्ण डफ, नगारा आदि वाद्यों के साथ होरी गीत को धमार ताल में गाकर गोपियों के साथ होली खेलते हैं, इस तरह का वर्णन भी धमार गीत के काव्यों में देखा जाता है। धमार के गीतों में शृंगार रस के अलावा भक्ति रस से ओत-प्रोत, काव्य भी होता है। ऋतुओं से सम्बन्धित भी कुछ बंदिशें देखने को मिलती हैं। इसकी यही विशेषता है कि इस काव्य को केवल धमार ताल में ही निबद्ध गीत के रुप में गाया जाता है। यही कारण है कि इसे धमार कहते हैं।

धमार के अनुरुप ''धम्माली'' प्रबंध का सर्वप्रथम उल्लेख प्रकीर्ण प्रबंधों के अन्तर्गत मिलता है।

'फत्तसवे षदशभिरष्ट भिर्वा यथा रूचिः।
चतुर्भिः चरण बद्धा धम्माली प्रांचयते बुधै'।।97
यति लग्नेन तालेनतेकता त्येति केवन।
हास्य शृंगार रस्योः रागै चैव वसंत के।।98
गीत्वा ष्विारकं उदग्राह ध्रुवकं च पुनः पुनः।
मेलापकाभो योगीन विधातत्यं युदृच्छया।।99

अर्थात् फत्गूत्सव (होलिकोत्सव) पर चार, आठ अथवा बारह चरणों बद्ध एकताली ताल के षरा हास्य एवं शृंगार रस में एवं राग बसंत में धम्माली गाई जाती है। उदग्राह एवं ध्रुव को दो बार गाकर इच्छानुसार मेलापक एवं आभोग का गान किया जाना चाहिये।

मन्दिरों में वैष्णव सन्तों के द्वारा रचित पद 'धमार' ताल में गाये जाते हैं। कीर्तनकार इन्हीं पदों को 'धमार' कहते हैं। इन धमारों की संगति पखावज वाद्य द्वारा की जाती है और बहुत से कीर्तनकार इन धमार को झांझ बजाकर भी गाते हैं। ऐसा माना जाता है कि इस गान के पीछे कीर्तनकारों की आनुवंशिक परम्परा है। अकबर के दरबार के प्रसिद्ध इतिहासकार अबुलफज़ल ने आइने अकबरी में 'कीर्तनिया' नामक ब्राह्मण संगीत जीवियों की चर्चा की है और इनके प्रमुख वाद्य, पखावज, रबाब और ताल (झांझ) बताए गए हैं।

औरंगजेब के संगीत-प्रेम को 'संगीत-चिन्तामणी' में भली-भाँति प्रमाणित किया गया है। यहाँ तो यह चर्चा यह सिद्ध करने के लिए है कि 'धमार' की धूम-धाम केवल लोक-जीवन या वैष्णवों के मन्दिरों में ही नहीं थी, औरंगजेब के दरबार में भी धमार गूंजते थे।

'धमार' 'धमाल', धमारी इन तीनों रूपों का मूल एक ही है। संस्कृत भाषा में धातु 'धम' का अर्थ सुलगाना, भड़काना, शब्द करना जोर से फूक मारना और बजाना है। इस धातु शब्द से बने हुए विशेषण धम का अर्थ सुलगाने वाला, भड़काने वाला शब्द करने वाला आदि है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'धम इव ऋच्छति' धम+कृ+अय् हो सकती है। इसका अर्थ यह हुआ ''गान का वह प्रकार जो प्रेरित करता

हुआ या फड़काता हुआ प्रतीत हो।

'धमा-चौकड़ी' धूम-धाम और धमा-धम इत्यादि शब्द संस्कृत की धात 'धम्' का ही प्रभाव प्रतीत होती है। कीर्तिकेय के एक अनुचर गण का नाम 'धमधम' और मातृ का नाम 'धूमाधम' है, दोनों की उत्पत्ति पार्वती जी के क्रोध से उत्पन्न मानते हैं। इन दोनों ही संज्ञाओं में 'धम' धातु अपने अर्थों में विद्यमान है।

'धूम' शब्द का अर्थ कोलाकल 'कोलाहल' शब्द का पर्यायवाची शब्द रूप 'धमा-धमा' भी मिलता है।

ऐसा ही पंजाबी भाषा में 'धम्मड़' शब्द प्रयोग जब किया जाता है तो लोग विभिन्न प्रकार से नाचते-गाते, उछलते-कूदते और खुशियां मनाते दिखाई देते हैं। यह क्रीड़ा होरी के समान प्रतीत होती है।

होरी का आनंद मनाने वाले रसिक लोग धमार का गायन करने के लिए दो टोलियों में विभाजित हो जाते हैं और दोनों ही टोलियों के हाथों में रंग से भरी पिचकारी और रंग से भरे बड़े ड्रम होते हैं। होली के अवसर पर दोनों टोलियाँ धमार का लय और ताल के साथ गायन करते हैं। एक-दूसरे पर रंग डालते और हँसी-ठिठोली करते नजर आते हैं। यह गायन वादन, नृत्य और उसमें रंगों का समावेश बड़ा ही मनोहर प्रतीत होती है।

धमार को अन्य रूप में - गोपी कृष्ण लीला को धमार रूप में न गाकर ख्याल गायिकी के ढंग से जब दीपचन्दी, तीनताल, जत्त, कहरवा आदि में गाते हैं और तरह-2 के बोल तोन लेते हैं, बीच-2 में ख्याल की ढंग की बड़ी ताने भी लेते हैं तो उस गीत को होली कहते हैं। होली के कण, मींड, मुर्की, गिटकरी द्वारा विभिन्न प्रकार के रसीले बोल बनाकर ठुमरी की तरह इसे गाते हैं।

दरबारों में गाए जाने वाले धमारों में शहंशाह भी नायक होकर आ गए थे। ऐसे धमारों की रचना दरबारी गायकों के द्वारा होती थी जहाँगीर ने लिखा है कि तानसेन अपनी रचनाओं में अकबर का नाम डाल दिया करते थे। ऐमन राग में गेय एक धमार में मानिनी नायिका और दूती का वर्णन है -

धमार के बोल हैं -
होरी खेलेई बनगी, रूसैं अब न बनैगी।
मेरो कहो तू मानि नपैली,
जब वा रंग में सनैगी।।
कैई बेरि आई-गई तू,
नाहि मानत ऊँची करि ठोड़ो भौहे तनैगी।
साहि जलालदीन फगुआ दीजै,
आपुतें-आप मनैगी।।

मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी कलाकार नेमत खाँ 'सदारंग' ने भी अनेक धमारों की रचना की है। इनकी रचनाओं में मुहम्मद शाह नायक है। 'सदारंग' संगीत और काव्य में महाकवि देव के शिष्य थे। एक धमार में कहते हैं -

अब तौ महम्मदसाहि पिय घर आए।
चहल-पहल फागुन की देखौ,
जित-तित 'सदारंग' बरसाए।।
चैन सो गाओ आओ रहसि-रहसि
कहि लाखनि-लाखनि पाए।
इक होरी दूजे न्हाए रंग सों,
यह सुख गिने न जात गिनाए।।

दरबार के गायकों ने ब्रज और कन्हैया को भुला नहीं दिया था। 'सदारंग' एक गोपी के मुख से नारी-सुलभ शैली में यों बोल रहे हैं -

नए हो खिलार, नए हो रसिया अनौखे,
नई भई ठकुराई।
भलौ-बुरौ पहचान नाही,

एकहि वेर चले इतराई।।
नाउँ न जानौ गाउँ न बूझौ,
ऐसी ब्रज में धूम मचाई।
रसिक छैल रसभीने गिरिधर 'सदारंग' सुखदाई।।

'सदारंग' ने होली में वर्षा का आरोप इस प्रकार दिया है -

फागुन मास मैं बरखा जह प्रगट दिखाई।
पिचकारी अरू भोडर चपला,
अबीर गुलाल घटा छाई।।
करि सिंगार हार-मोती-माल,
बग-पंगति छवि छाई।
सदा रंगीले छबीले मुहम्मद सा उमंगो झर लाई।।

'सदारंग' की दृष्टि से होली में वियोगिनी भी नहीं बची है। वे कहते हैं -

अब तो कोकिल धूम मचाई
पिय विदेश मोहि पाय अकेली,
विरहिनी जानि सताई।
इक तो हती मैं बैरिन उनकी
करत चबाऊनि आई।
बोलि-बोलि जब बान से मारत,
तन-मन बेधत जाई।
कूकि-कूकि उरपाई री जिय में
अति ही हूक बढ़ाई।।
चितौ बसन्त अब आयो फागुन,
कहा करौ मोरी माई।
याहि समै सुधि लीजौ 'सदारंग',
सुखदाई, दुखदाई।

धमार रचना की परम्परा 'सदारंग' के पश्चात भी आगे बढ़ी। 'सदारंग' के भतीजे और दामाद फीरोज खाँ 'अदारंग', रामपुर-राजवंश के संस्थापक नवाब अली मुहम्मद खाँ के पुत्र रवाब मुहम्मद सादुल्ला खाँ के आश्रय में रहे। यह तथ्य 'अमीर' मीनाई की रचना (1873 ई.) 'इन्तरबाबे-यादगार' से प्रमाणित है। अदारंग कहते हैं -

ऐरी नैक सुध हमसों बोलि नारि।
होरी मैं गुमान काम नहीं आवै,
तू तो मुगध गँवारि।।
कहूँ रंग, कहूँ अबीर-गुलाल,
कुहूँ कुमकुमा कुहूँ पिचकारी।
ऐसी हो फगुआ माँगियै मुखते,
'अदारंग' अँचरा डारि।।

'मनरंग' सदारंग का पुत्र कहा जाता है। 'मनरंग' ने जयपुर-दरबार का आश्रय लिया था। 'मनरंग' के निम्नलिखित धमार में हिन्दू-दरबार का पूरा प्रभाव है -

कछु ऐसौ मंत्र पढि रंग छिरकौरी होरी के
दिननि मैं इनि मनमोहन बनवारी।
सकल त्रियनि मै कौने सिखाई हौं न जानौ
ऐसी कौन है नारी बारी।।
मोहि जानि वृषभान-दुलारी
मन हरि लीनो नन्द के बिहारी।
'मनरंग' सहस गारी दै भई मतवारी बजाय
तारी।।

आज संगीत के 'शास्त्रीय' कहे जाने वाले जगत में गेय साहित्य के इस पारम्परिक रूप को गाने वाले भी दुर्लभ हैं सुनने, समझने वाली भी दुर्लभ हैं। इन कलाकारों के साहित्य-पक्ष पर इनके सम-सामयिक कवियों का प्रभाव है, परन्तु इन रचनाओं में पाठ्य काव्य के समान छन्द का बंधन अनिवार्य नहीं है। राग-वाचक स्वर-सन्निवेश के कारण कभी-2 'तान' के अनुरोध से 'आ, ई, अ, ए, ऐ, ओ' आदि का प्लुत उच्चारण होता है, ऐसी स्थिति के लिए छन्द बाधक है।

शृंगार युग के कवियों ने धमार का एक नया स्वरूप दिखाया। इनमें गायक विलबिंत लय में एक छंद गाकर तत्पश्चात् कुछ अंश चंचल गति में गाता और फिर लौटकर उसी

विलंबित लय में आ जाता है। पूरे गीत में दो तालों एवं दो लयों का सम्मिश्रण करके एक अलग प्रकार का धमार गीत बनाया। इनमें विवाह, जन्म, होली या किसी भी प्रकार के उत्सव या पर्व को उसका विषय बनाया। कृष्ण भक्त और वैष्णव कवियों द्वारा लिखे गए होरी-धमार गीतों में राधा-कृष्ण की लीला व रूप-माधुर्य की अद्‌भुत छटा दिखाई देती है। होली, फूलडोल, बसंत आदि उत्सवों में अनेक भावुक मानस का उन्मेष है, और उनके हृदय में बसी हुई शृंगारिकता, जो राधा कृष्ण की लीलाओं का गुनगान करके लौकिकता-अलौकिकता को दर्शाती है।

धमार ज्यादातर शृंगार रस से परिपूर्ण होते हैं। 'काव्य प्रकाश' के रचियता मम्मट के अनुसार वक्राक्ति, श्लेष, अनुप्रास, यमक, वीप्सा तथा पुनरूक्त वदाभास छह शब्दालंकार है। इन अलंकारों में शब्द-परिवर्तन कर देने से अलंकार द्वारा प्रदर्शित चमत्कार नष्ट हो जाता है। शब्दालंकारों के प्रयोग से कविता के आन्तरिक संगीत में अभिवृद्धि होना निश्चित ही है, किन्तु छह शब्दालंकारों से नहीं। आन्तरिक संगीत की दृष्टि से अनुप्रास और यमक अलंकार का जो महत्व है वह अन्य शब्दालंकारों में प्रतीत नहीं होता, अनुप्रास का वृत्तियों से सीधा सम्बन्ध होता है।

मम्मट के अनुसार वृत्तियों, गुणों और शब्दोलंकारों से जो रचना जितनी अधिक सुसज्जित होती है, उतनी ही उसके आन्तरिक संगीत में वृद्धि हो जाती है किन्तु अलंकारों के अत्यधिक प्रयोग से काव्य का आन्तरिक संगीत नष्ट हो जाता है।

धमार गायन शैली के दो प्रकार माने गये हैं, प्रकाशक एवं गुप्त। प्रकाश उस धमार को कहते हैं जिसका 'सम' एक निश्चित स्थान पर होता है। जिसमें 'सम' के विषय में कुछ भी कहना कठिन है उसे गुप्त कहा जाता है। श्री राणा के अनुसार भी धमार दो प्रकार के बताये गये हैं, प्रकाशक एवं गुप्त। प्रकाशक-जिनका सम धमार की पहली पंक्ति को प्रथम बार गाने से ही स्पष्ट हो जाता है, उसको प्रकाशक कहते हैं। गुप्त-जिसका सम गुप्त होता है और पहली पंक्ति को तीन बार गाने पर अन्तिम बार समझ में आता है गुप्त सम कहते हैं।

मतंग, दुर्गशक्ति, याष्टिक, शार्दुल तथा शारंगदेव आदि विद्वानों ने इसे 'भिन्नागीति' नाम से पुकारा तथा वर्तमान समय में भारत में इसे धमार गायकी कहा गया। भिन्नागीति से स्वर, शब्द तथा लय का प्रयोग तरह-2 से किया जाता है वैसे ही आधुनिक धमार गायन को भिन्न प्रकार के बोल-बाँटों से अलंकृत किया जाता है। धमार विभिन्न शब्दयुक्त लहरियों के साथ गाई जाती है। धमार गायन एवं ध्रुपद गायन में अन्तर केवल यह है कि ध्रुपद गायन में विभिन्न प्रकार की लयकारियों अर्थात् दुगुन, तिगुन, चौगुन, छह गुन और अठगुन आदि द्वारा भी किया जाता है, तथा धमार गायन, में बोल-बाट अर्थात् शब्दों को विभिन्न स्वरलहरियों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। ध्रुपद में गीत की धुन नहीं बदलती, परन्तु धमार गायकी में गीत को भिन्न-भिन्न प्रकार की रागवाची धुनों द्वारा प्रस्तुत करते हैं। इन धुनों को सुन्दर तिहाइयों से सजाकर प्रस्तुत करते हैं। धमार गायन से पूर्व ध्रुपद की तरह नोम्-तोम् का आलाप किया जाता हैं

धमार गायन में कुशल गायक मात्रा-प्रस्तार का आश्रय लेकर लय के साथ और विविध झूलों में झूलता तथा श्रोताओं को झुलाता है। पखावजी भी इस क्रिया में गायक का साथ देता है। कभी-कभी दानों में प्यार से नोंक-झोंक

भी देखी जाती है। 'सम' का बोल 'सम' से हटकर यदि गायक ने कहा और पखावजी ने इसी स्थान पर 'धा' लगा दिया तो इसे मुँह निकालना कहते हैं।

धमार ताल की मात्राओं और स्वरूप के विषय में संगीत के विभिन्न मतों में मतभेद देखने को मिलते हैं। अंगिरा मत के अनुसार इसमें 28 मात्राएँ होती हैं तथा इसका नाम संपक्वेष्टा ताल है। श्रीकृष्ण मत के अनुसर इसे करा लमंठ ताल कहते हैं। इस मत के अनुसार भी इसमें 28 मात्राएँ बताई जाती हैं। हनुमान मत में इसे शार्दूल उदीच्छन ताल कहा जाता है। इस मत में भी 28 मात्राएँ मानी जाती हैं। सारंग मत के अनुसार इसमें 42 मात्राएँ होती हैं और इसका नाम अनिल नन्दिनी ताल है। कलिंग मत वाले भी इसमें 42 मात्राएँ मानते हैं। उनके अनुसार इसका नाम नील मल्लिका ताल है। शिव मत में इसे नीलकंठा भरण ताल कहा जाता है और इसमें 280 मात्राएँ मानी जाती हैं। कुछ लोगों के मतानुसार इसमें 7 मात्राएँ होती हैं। आजकल धमार ताल में 14 मात्राएँ मानी जाती हैं, इसके विषय में कहा गया है -

मिश्र जाति मदमत्त गति, 'सत्यपिया' सकुमार
चौदह मात्रा से बनी जनप्रिय ताल धमार।

उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध तन्त्री-वादक बहादुर हुसैन खाँ 'सदारंग' की पाँचवी पीढ़ी में इसी परम्परा के ध्रुवपद-गायक अमीर खाँ, सदारंग की छठी पीढ़ी में थे। 'सदारंग' के संगीतकार प्रसिद्ध पखावजी भवानीदास जी की परम्परा के प्रसिद्ध पखावज-वादक कुदऊसिंह थे। सभी ध्रुवपद गायक यद्यपि धमार ताल में चौदह मात्राएँ मानते हैं, तथापि कुदऊसिंह की परम्परा इसकी मात्राओं का विभाजन 3+2+3+2+2+2=14 में करती है और इसकी 'थापिया' (ठेका) के बोलों का विभाजन 'क धिट, धिट, धाधाऽ, तिन, तिन, ताऽ' होता है। 1 2 3 / 4 5 / 6 7 8 / 9 10 / 11 12 / 13 14 / में पहली, छठी, ग्याहरवीं पर 'पात' (ताली) और चौथी, नवीं एवं तेहरवी मात्रा पर (शून्य) खाली रहते हैं।

कुदऊसिंह जी की परम्परा के पखावज वादक रामपुर दरबार के प्रसिद्ध पखावजी पं. अयोध्याप्रसाद जी को इसी वर्ष 'संगीत-नाटक अकादमी' का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है और इसी वर्ष उन्हें 'पदमश्री' भी घोषित किया गया है। उनका कहना है कि धमार ताल वृत नहीं बनाता, अपितु एक त्रिभुज बनाता है, जिसकी एक भुजा का परिणाम चार मात्रा है और अन्य दो भुजाएँ पाँच-2 मात्राओं की हैं। इसका आकार 'सिंघाड़े' जैसा होता है।

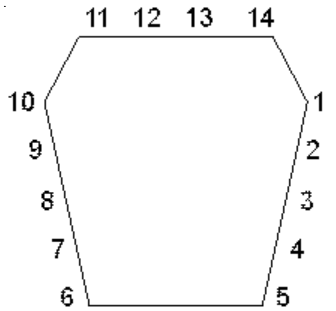

वृत्त

इस ताल के मात्र-विभाजन में, बोलों के बारे में ताल के रूप में और इसकी गायकी में एक बाँकापन, एक लुका-छिपी, क्रीड़ा के रूप में एक निकल बैठ, दाँव पेच या आँख-मिचौली है। कला इसी में है कि यह सब-कुछ मार-धाड़, धर-पकड़ या धींगा-मुश्ती न हो जाए। 'प्रणय-केलि' कुश्ती न बन जाए। इसकी गायकी में, गायक या पखावजी में मीठी छेड़-छाड़ आदर्श है, मल्लयुद्ध नहीं।

परन्तु आजकल प्रचलन में ध्रुपद अंग की धमार ताल प्रचलन में है। अतः यह पखावज या मृदंग पर ही अधिक मनोहर प्रतीत होती है। कुछ लोग इसे तबले पर भी खुले बोलों में बजाते हैं। इसके बोल हैं -

क धि ट धि ट / धाऽ / ग ति ट ति ट / ताऽ
× 2 0 3

सम प्रथम मात्रा पर, तीसरी ताली क्रमशः छटवीं और ग्याहरवीं मात्रा पर होती है। इसमें केवल एक ही खाली है जो आठवीं मात्रा पर होती है।

डागर-घराने के ध्रुवपद एवं धमार गायक ''डागर बंधु'' आज इस गीत के श्रेष्ठ गायक माने जाते हैं। ध्रुवपद गायन के सदृश ही इस गीत प्रकार को प्रारंभ करने के पूर्व उस विवक्षित राग का राग लक्षणों अनुसार ''नोम-तोम'' द्वारा सम्पूर्ण विस्तार किया जाता है। किन्हीं-2 धमारों के स्थायी अंतरा संचारी एवं आभोग इस प्रकार चार भाग होते हैं। प्रचलन में आजकल धमारगीत के केवल दो अवयव होते हैं। स्थायी और अन्तरा इन गीतों का एक ढांचा सा होता है। जिसमें अधिकांश धमार गीत गाये जाते हैं। इस ढांचे के अनुसार स्थायी का मुखड़ा चार मात्राओं का होता है जो ग्याहरवीं मात्रा से आरम्भ होता है जैसे इस ढांचे के कुछ अपवाद भी हैं। उदाहरणार्थ-कामोद राग का धमार गीत 'मतवारो ठाड़ो रोके बाट साँझ' 13वीं मात्रा से और 'राजामान होरी खेले री' खाली से आरम्भ होता है। शुद्ध कल्याण का 'होरी खेलन आये कान्हा' और देशकार का 'जाने दो बनवारी' धमार गीत भी खाली से आरम्भ होता है।

धमार-गीत गायन भी शास्त्रीय संगीत में लय-प्रधान गायन प्रकार समझा जाता है। श्रेष्ठ ध्रुवपद-गायक ही धमार-गायन को प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं। धमार-गायन के साथ मृदंग अथवा पखावज की संगति दी जाती है। दुगुन, तिगुन, चौगुन आड़, कुआड़ आदि विभिन्न लयकारियों व उपज अंगों के प्रस्तुतीकरण द्वारा ही धमार-गीत-शैली के कलात्मक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है।

सम्प्रदाय के अन्य भक्त संगीतज्ञों ने भी अपने रचित पदों में अनेक स्थलों पर 'धमारि' शब्द संज्ञा का प्रयोग किया जाता है -

'इक गावत है धमारि, इक एकनि देत गारि'।
('सूरदास' पद 350, पृ. 1184)

'खेलन आई धमारि नब तरूनि गोप कुबारि'
('कृष्णदास' पद 984, पृ. 396)

'गावत फाग 'धमार' हरषि भर हलधर ओर सब ग्वाल'।
('नंददास ग्रन्थावली' पद पृ. 326)

धमार गान का चर्चरी ताल में गाये जाने का उल्लेख भी मिलता है -

''चर्चरी अहि विकट ताल, गावत संगीत रसात''
('कृष्णदास' पद 941, पृ. 373)

यहाँ एक मुख्य बात यह भी है कि वैसे तो धमार गायकी धमार ताल या चर्चरी ताल में गायी जाती है लेकिन सम्प्रदाय में फागुन मास में किसी भी ताल में गाये जाने वाले पद को 'धमार' की संज्ञा दी जाती थी।

धमार गायन शैली कठिन गायकी है लेकिन कठिन होने के साथ-2 लोगों को मनोहर होने के कारण आकर्षित करती है। लय की महानता एवं व्यापकता का इतना उच्च स्तरीय दर्शन केवल ध्रुपद एवं धमार गायन शैली के अतिरिक्त किसी अन्य गायन शैली में देखने को नहीं मिलता है। धमार गायक शैली को मुख्यतः ध्रुपद गाने वाले कलावत ही गाते हैं। इसका गायन ध्रुपद गायन शैली की भाँति बहुत

प्रभावशाली, गम्भीर, जोरदार एंव मर्दाना होता है। इसके लिये बहुत ही अभ्यास एवं तैयार गले की आवश्यकता होती है। हर कोई गायक इस गायन शैली में प्रवीन होना सम्भव नहीं है। इस गायन शैली में ध्रुपद की भाँति गमक एवं मीड़ की ही प्रधानता रहती है। भाषा की बात करें तो धमार गीतों की भाषा अब तक ब्रजभाषा ही रही है। यह बात तो सही है कि ब्रज भाषा का एक अपना अलग ही प्रभाव तथा स्वरूप होता है। उसमें अपनी एक अनोखी मिठास होती है, जो भगवान श्रीकृष्ण की लीला और उनके फाग खेलने के प्रसंगों के लिये उपयुक्त है परन्तु स्मरणीय बात यह भी है कि एक क्षेत्र अथवा प्रांत की भाषा तथा बोली का अपना ही एक विशेष माधुर्य एवं आकर्षण होता है। धमार गीतों में भी विषयों की विविधता के साथ-2 भाषा की स्वतंत्रता की भी आवश्यकता है। हिन्दी की समस्त बोलियों एवं उपभाषाओं के अतिरिक्त भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं जैसे मराठी, गुजराती, कश्मीरी, पंजाबी, तमिल, उड़िया एवं तेलगू आदि सभी भाषाओं में धमार गीतों की रचना होनी चाहिये, जिससे कि सभी लाभान्वित हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. गोविन्द रावराजुरकर : संगीतशास्त्र पराग : सं. 1982, पृ. सं. 53, 54
2. महाराणा कुम्भा : संगीतराज : द्वितीया गीतरत्नकोष, संस्करण 1963, पृ.सं. 619
3. आचार्य वृहस्पति : संगीत पत्रिका अप्रैल 1968, पृ. सं. 19,20,21,22,23
4. राम अवतार वीर : भारतीय संगीत का इतिहास : संस्करण 1996, पृ.सं. 184, 185
5. उद्धृतः जतिन्द्र सिंह खन्ना : मध्यकालीन धर्मों में शास्त्रीय संगीत का तुलनात्मक अध्ययन : संस्करण 1992, पृ.सं. 205
6. डॉ. पन्ना लाल मिश्र : संगीतशास्त्र विज्ञान : पृ.सं. 90
7. जगदीश नारायण पाठक : संगीत शास्त्र मीमांसा भाग-1, संस्करण 1965, पृ.सं. 49
8. प्रो. हरिशंकर आदेश : संगीत : मई 1992, पृ. सं. 7,8,9
9. उद्धृतः डॉ. (कु.) राकेश बाला सक्सेना : मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में संगीत : संस्करण 1990, पृ.सं. 54, 71
10. अशोक कुमार 'यमन' : संगीत रत्नावली : पृ. सं. 254

भारत में बाल अधिकार रू बाल श्रम

सुशीला देवी यादव, प्रोफेसर सोहन लाल मीणा

शोध सार

'हर बच्चा एक चेहरे एक शख्सियत और कुछ अधिकारों के साथ जन्म लेता है'

—कैलाश सत्यार्थी

बचपन एक खास उम्र से नहीं बल्कि एक जीवन मूल्य है जो हमें सरल सहज बनाए रखता है बच्चे सृष्टि की वह अनमोल सौगात है जिसमें मनुष्य अपने अतीत भविष्य को देखता है प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को स्वतंत्र जन्म दिया है जन्म के साथ ही मनुष्य को कुछ अधिकार दिए हैं परंतु कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिनके अधिकारों का हनन हो जाता है और वह बाल श्रमिक बन जाते हैं बाल श्रम की समस्या अधिकारों के उल्लंघन के समस्या है भारत में बाल श्रम एक बेहद खतरनाक और जटिल समस्या है भारत में कुल जनसंख्या का लगभग 5: है। बाल श्रम वास्तव में बचपन के खिलाफ किया गया एक सामाजिक अपराध है क्योंकि इस कारण बच्चों का भविष्य बर्बाद हो जाता है। इस शोध का प्रमुख लक्ष्य भारत में बाल श्रम एवं अधिकारों के हनन की समस्या का समाधान करना है

संकेताक्षर : *बाल मजदूरी, बाल अधिकार, बाल श्रम, भुखमरी, बाल अपराध*

प्रस्तावना

किसी भी देश का भविष्य बच्चों में निहित होता है बच्चे देश के कर्णधार और अपने परिवार की धरोहर है इसीलिए परिवार और सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह इन नौनिहालों की रक्षा करें और उन्हें बाल श्रम जैसे घोर अपराधों से मुक्त करवाए। बच्चा शब्द के अनेक अर्थ है कभी शारीरिक मानसिक परिपक्वता के संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है परंतु व्यावहारिक रूप में बच्चा शब्द का अर्थ कालक्रम आयु से ही है इसे भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न निर्धारित किया गया है।

बाल अधिकार सम्मेलन (सीआरसी) 1989 की परिभाषा के अनुसार 'कोई भी व्यक्ति जिसकी आयु 18 वर्ष से कम है, जब तक कि नियम में परिभाषित वयस्कता को पहले प्राप्त नहीं किया हो', बच्चा कहलाता है।

भारतीय संविधान के अनुसार 18 वर्ष की आयु से कम व्यक्ति बच्चा है उसके लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए गए हैं उसे कुछ विशेष अधिकार दिए गए हैं अधिकार वे मांगे हैं जो मनुष्य को मनुष्य होने के नाते प्राप्त होते हैं ताकि व्यक्ति अपना पूर्ण विकास कर सके अधिकार सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के मिलते हैं किंतु बच्चे शारीरिक

*शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

**शोध निदेशक, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर

मानसिक रूप से परिपक्व होते हैं इसीलिए उनके अधिकारों का हनन करना बहुत आसान है और बच्चों के अधिकारों का हनन करके उन्हें बाल श्रमिक बना दिया जाता है बचपन, जिंदगी का बहुत खूबसूरत सफर होता है। बचपन में न कोई चिंता होती है, ना कोई फिक्र होती है, एक निश्चिंत जीवन का भरपूर आनंद लेना ही बचपन होता है। लेकिन कुछ बच्चों के बचपन में लाचारी और गरीबी की नजर लग जाती है। जिस कारण से उन्हें बाल श्रम जैसी समस्या का सामना करना पड़ता है। बाल श्रम वर्तमान समय में बच्चों की मासूमियत के बीच अभिशाप बनकर सामने आता है। किसी भी सभ्य समाज और देश के लिए एक अभिशाप है भारत में बाल श्रम एक राष्ट्रीय समस्या बन चुकी है अनेक गंभीर प्रयासों के बावजूद भी बाल श्रमिकों की संख्या कम होने की बजाय तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। बाल श्रम सदियों से चली आ रही शोषण परंपरा की एक कड़ी है औद्योगिकरण के परिणाम स्वरूप मालिक श्रमिक संबंधों का जो समीकरण बना उसी का विस्तृत रूप है बाल श्रम बाल श्रम के परिणाम स्वरुप कितने बच्चे अपने खुशहाल बचपन के अधिकार से वंचित रह जाते हैं बाल श्रम को ऐसे पेशे या कार्य के रूप में परिभाषित किया जाता है जो बच्चे के लिये खतरनाक तथा नुकसानदायक हो। जो कार्य बच्चों को स्कूली शिक्षा से वंचित करता है या जिस कार्य में बच्चों को स्कूली शिक्षा और काम के दोहरे बोझ को संभालने की आवश्यकता होती है।

शोध के उद्देश्य

1. बाल श्रम के प्रमुख कारणो का अध्ययन करना
2. बाल श्रमिकों की स्थिति का अध्ययन करना
3. बाल श्रमिकों संबंधी कानूनी प्रावधानों का अध्ययन करना
4. बाल श्रम समस्या के समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत करना

शोध प्रविधि

ऐतिहासिक पर विधि से शोध कार्य किया है भारत की जनगणना के आंकड़ों का एवं द्वितीय स्त्रोत का प्रयोग किया है अध्ययन के प्रथम भाग में विषय वस्तु दूसरे में शोध प्रविधि तीसरे में विश्लेषण और चौथे में निष्कर्ष का निरूपण किया गया है

बाल श्रम का अभिप्राय :

भारतीय संविधान के मुताबिक किसी उद्योगए कल - कारखाने या किसी कंपनी में मानसिक या शारीरिक श्रम करने वाले 5 - 14 वर्ष उम्र के बच्चों को बाल श्रमिक कहा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मुताबिक - 18 वर्ष से कम उम्र के श्रम करने वाले लोग बाल श्रमिक हैं।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मुताबिक - बाल श्रम की उम्र 15 साल तय की गई है।

अमेरिका में - 12 साल या उससे कम उम्र के लोगों को बाल श्रमिक माना जाता है। बाल श्रम वास्तव में बचपन के खिलाफ एक सामाजिक अपराध है इसके कारण बच्चों का अपने पूर्ण विकास का समय नहीं मिलता जिसके कारण उनका भविष्य बर्बाद हो जाता है हमारे देश में बाल श्रम सभी रूपों में प्रतिबंधित है लेकिन फिर भी करोड़ों बच्चे बाल श्रम से ग्रस्त हैं।

बाल श्रम के रूप

बाल मजदूर - वे बच्चे जो कारखानों,

कार्यशालाओं, प्रतिष्ठानों, खानों और घरेलू श्रम जैसे सेवा क्षेत्र में मजदूरी या बिना मजदूरी में काम कर रहे हैं।

गली - मोहल्ले के बच्चे - कूड़ा बीनने वाले, अखबार और फेरी लगाने वाले और भीख मांगने वाले।

बंधुआ बच्चे - वे बच्चे जिन्हें या तो उनके माता-पिता ने पैसों की खातिर गिरवी रखा है या जो कर्ज को चुकाने के चलने मजबूरन काम कर रहे हैं।

वर्किंग चिल्ड्रन - वे बच्चे जो कृषि में और घर-गृहस्थी के काम में पारिवारिक श्रम का हिस्सा हैं।

यौन शोषण के लिए इस्तेमाल किए गए बच्चे - हजारों बालिक बच्चे और नाबालिक लड़कियां यौन शोषण की जद में हैं।

घरेलू गतिविधियों में लगे बच्चे - घरेलू सहायता के रूप में काम। इसमें लड़कियों का शोषण सबसे ज्यादा है - बच्चे छोटे भाई-बहनों की देखभालए खाना पकानेए साफ-सफाई और ऐसी अन्य घरेलू।

बाल श्रम के सिद्धांत

बाल श्रम विश्व के सामने एक विकराल समस्या के रूप में उपस्थित है इसको लेकर बहुत शोध हुए हैं और बाल श्रम होता क्यों है इस संबंध में कई सिद्धांत प्रचलित है जैसे नव पुरातनवादी सिद्धांत इस सिद्धांत का प्रतिपादन शूट्ज विलिस बेकर और ल्युस ने किया था। इसके प्रतिपादक मानते हैं कि किसी परिवार के द्वारा बाल श्रम की आपूर्ति उसकी वर्तमान आय को बढ़ाने के लिए की जाती है। समाजीकरण का सिद्धांत इस सिद्धांत का प्रतिपादन जी स्टैंडिंग एवं जी रोजर्स ने किया था। इसके अनुसार बाल नियोजन न केवल आर्थिक प्रतिक्रियाओं को दर्शाता है बल्कि बच्चों के प्रति आदर्शात्मक, सांस्कृतिक रूप से निर्धारित नियमों एवं कार्य, बच्चों की गतिविधियों को परखने वाले मूल्यों और समाजीकरण की प्रक्रियाओ के रूप पर भी निर्भर करता है। श्रम बाजार के विखंडन का सिद्धांत इस सिद्धांत का प्रतिपादन सी.केरएडी.एम. गोर्डन और आर.सी. एडवर्ड ने किया था। मार्क्सवादी सिद्धांत कार्ल मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण से श्रम पूंजी की विस्तृत विवेचना की है और अशिक्षा जनित बाल श्रम का सिद्धांत यह सिद्धांत विनर की देन है जिसमें उन्होंने कहा कि शिक्षा के कारण गरीब भी पैदा होती है और जिसके परिणाम स्वरूप बाल श्रम बढ़ता है।

भारत में बाल श्रम की स्थिति

वर्ष 2001 की जनगणना के आंकड़ों के मुताबिक बाल श्रमिकों की संख्या 12500000 है राष्ट्रीय शर्म संस्था के आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में

State-wise Distribution of Working Children according to 1971,1981, 1991 and 2001 Census in the age group 5-14 years

S.No.	Name of the State/UT		1971	1981	1991	2001****
1	Andhra Pradesh		1627492	1951312	1661940	1363339
2	Assam	*	239349	**	327598	351416
3	Bihar		1059359	1101764	942245	1117500
4	Gujarat		518061	616913	523585	485530
5	Haryana		137826	194189	109691	253491
6	Himachal Pradesh		71384	99624	56438	107774
7	Jammu & Kashmir		70489	258437	**	175630
8	Karnataka		808719	1131530	976247	822615
9	Kerala		111801	92854	34800	26156
10	Madhya Pradesh		1112319	1698597	1352563	1065259
11	Maharashtra		988357	1557756	1068427	764075
12	Chhattisgarh					364572
13	Manipur		16380	20217	16493	28836
14	Meghalaya		30440	44916	34633	53940
15	Jharkhand					407200
16	Uttaranchal					70183
17	Nagaland		13726	16235	16467	45874
18	Orissa		492477	702293	452394	377594
19	Punjab		232774	216939	142868	177268
20	Rajasthan		587389	819605	774199	1262570
21	Sikkim		15661	8561	5598	16457
22	Tamil Nadu		713305	975055	578889	418801
23	Tripura		17490	24204	16478	21756
24	Uttar Pradesh		1326726	1434675	1410086	1927997
25	West Bengal		511443	605263	711691	857087
26	Andaman & Nicobar Island		572	1309	1265	1960
27	Arunanchal Pradesh		17925	17950	12395	18482
28	Chandigarh		1086	1986	1870	3779
29	Dadra & Nagar Haveli		3102	3615	4416	4274
30	Delhi		17120	25717	27351	41899
31	Daman and Diu		7391	9378	941	729
32	Goa				4656	4138
33	Lakshadweep		97	56	34	27
34	Mizoram	***		6314	16411	26265
35	Pondicherry		3725	3606	2680	1904
	Total		**10753985**	**13640870**	**11285349**	**12666377**

Note: * 1971 Census figures of Assam includes figures of Mozoram.
** Census could not be conducted.
*** Census figures 1971 in respect of Mozoram included under Assam.
**** includes marginal workers also.

6 से 14 वर्ष तक के कुल बच्चों की संख्या 22 करोड़ है जो आबादी का 22% है देश में बाल श्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या और उनके शोषण को रोकने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने उद्योगों को खतरनाक उद्योगों की श्रेणी में रखा है माचिस पटाखा निर्माण उद्योग, डायमंड पॉलिसी उद्योग, चूड़ी उद्योग, पीतल के बर्तन और कलात्मक वस्तुएं निर्माण उद्योग, हस्त निर्मित कालीन उद्योग, ताला उद्योग, चाकू उद्योग, स्टील उद्योग उपरोक्त सभी उद्योगों के पूंजी पतियों द्वारा बाल श्रमिकों का शोषण किया जाता है कारखान मालिकों द्वारा नियमों का उल्लंघन किया जाता है। और बच्चों को दरिद्रता की ओर धकेला जाता है बच्चों को न्यूनतम मजदूरी दी जाती है ऐसा नहीं है कि हमारे देश में काम करने वाले व्यस्क नहीं हैं अगर हम आंकड़ों पर नजर डालें तो हमारे देश में बेरोजगारों की संख्या बहुत बड़ी है। लेकिन कारखाना उद्योगों के स्वामी अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से वयस्कों को रोजगार नहीं देते और कम मजदूरी पर बच्चों से काम करवाना पसंद करते हैं जिसके कारण देश में बेरोजगारी बढ़ती है और बाल श्रमिकों की संख्या भी बढ़ती है। कारखानों में काम करने के कारण बच्चे अनेक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं जिससे उनका शारीरिक मानसिक विकास रुक जाता है। और बच्चों को खतरनाक बीमारियां हो जाती हैं कारखानों से निकलने वाले धुएँ से वायु। प्रदूषण होता है जिसके कारण भी बच्चों को सांस की समस्या हो जाती है इसका उनके फेफड़ों पर सीधा असर पड़ता है कारखानों में काम करने वाले बच्चों की स्थिति दयनीय हैं वे जीवित कंकाल नजर आते हैं शरीर में खाज खुजली हो जाती है अनेक बीमारियां तपेदिक, आँख की बीमारी, अस्थमा, तपेदिक, शरीर एवं जोड़ों में दर्द भूख में कमी, ट्यूमर एवं जलन, बुढ़ापा होने पर आर्थराइटिस होने का खतरा, मानसिक अशक्तता होती हैं और कुछ बच्चे कारखानों में होने वाली दुर्घटनाओं का शिकार हो जाते हैं इन दयनीय दशा ओं के साथ-साथ बाल मजदूरों को 12 से 14 घंटे तक काम करना पड़ता है इसके साथ ही मालिकों की शारीरिक मानसिक एवं लैंगिक यातनाओ का शिकार होना पड़ता है जिसके कारण इनका बचपन पूरी तरह से बर्बाद हो जाता है तथा आगे चलकर वह अपना पूर्ण विकास नहीं कर पाते।

बाल श्रम के कारण

बढ़ती जनसंख्या गरीबी गरीबी के कारण बाल मजदूरी बढ़ते हैं और बाल मजदूरी के कारण यह परिवार गरीबी से उभर नहीं पाते क्योंकि इस परिवार के व्यस्क को रोजगार नहीं मिलता और बच्चे को पूरी मजदूरी नहीं मिल पाते जिस कारण परिवार हमेशा गरीबी में ही जीवन यापन करता है।

खाद्य असुरक्षा, अशिक्षा बाल श्रम का कारण अशिक्षा है केरल में साक्षरता दर अधिक है तो वहां पर बाल श्रम का प्रतिशत कम हैबेरोजगारी रोजगार की धीमी गति के कारण भी बाल श्रमिकों की संख्या बढ़ती है बेरोजगारी के कारण बच्चा अपने परिवार की आय में सहयोग करने के लिए मजदूरी करने को विवश होता है। मौजूदा कानूनों का लागू न होना, सस्ता श्रम पूंजीपति अधिक लाभ कमाने के लिए बाल श्रमिकों को रखना पसंद करते हैं ताकि उन्हें मजदूरी कम देनी पड़े और उन्हें अधिक से अधिक लाभ हो परंपरागत व्यवसाय परंपरागत उद्योग जो वंशानुगत हो चुके हैं उसमें छोटे बच्चे अधिक कार्यरत होते हैं।

बाल श्रम से उत्पन्न समस्या

बाल श्रम एक सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय समस्या है। इसके चलते बच्चे शिक्षा से दूर हो जाते हैं बाल श्रमिकों का जीवन नारकीय हो जाता है। स्वास्थ्य पर बुरा बच्चों के स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त संसाधन और सुविधाएं नहीं होती रोशनी और हवा के पर्याप्त संसाधन नहीं होते जिस कारण बच्चे को टी. बी. कैंसर दमा और सांस की बीमारियां हो जाती हैं। बच्चों से दुर्व्यवहार, विस्थापन और असुरक्षित प्रवासन, यौन शोषण के लिए गैर कानूनी खरीद-फरोख्त (चाइल्ड पोर्नग्राफी), भिक्षावृत्ति, मानवअंगों का कारोबार, खेल कूद और मनोरंजन जैसे जरूरी गतिविधियां प्रभावित होती हैं इन सब के चलते बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास प्रभावित होता है जोकि बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में मुश्किलें खड़ी करता है। बाल श्रमिकों की समस्या हेतु 19 79 में श्री एस.एस. गुरुपदस्वामी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा 'बच्चों के संदर्भ में श्रम तब एक बुराई का रूप धारण कर लेता है जब नियोक्ताओं द्वारा उनकी शारीरिक क्षमताओं के विपरीत काम लिया जाता है। जब उनके काम के घंटे निश्चित ना हो एवं उनके शिक्षा मनोरंजन तथा आराम का ख्याल न रखा जाता हो जो उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक या खतरनाक हो।'

बाल श्रम के लिए संवैधानिक प्रावधान

भारत के संविधान निर्माताओं का यह मानना था कि बच्चे समाज का सबसे कमजोर वर्ग होते हैं। इसीलिए उनके शारीरिक मानसिक सामाजिक विकास के लिए और उन्हें शोषण से बचाने के लिए संविधान में निम्न प्रावधान किए गए।

अनुच्छेद 15 (3) - बच्चों के लिए अलग से कानून बनाने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 21 ए - (6-14) वर्ष के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार

अनुच्छेद 23 - बच्चों की खरीद और बिक्री पर रोक लगाता है।

अनुच्छेद 24 - 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को खतरनाक कामों में प्रतिबन्ध।

अनुच्छेद 39 - नीति निर्देशक सिद्धांत के अंतर्गत आने वाला ये अनुच्छेद में बच्चों के स्वास्थ्य और उनके शारीरिक विकास के लिए जरूरी सुविधाएं उपलब्ध कराने का आदेश देता है।

अनुछेद 45 - नीति निर्देशक सिद्धांत के अंतर्गत आने वाला इस अनुच्छेद में भी 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की देखभाल और शिक्षा की जिम्मेदारी राज्यों की है।

अनुच्छेद 51 A - माता पिता पर बच्चों की शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करने का एक मौलिक कर्तव्य निर्धारित करता है।

बाल अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए कानून

संवैधानिक उपबंधो एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के आधार पर समय-समय पर अनेक कानून बनाए गए हैं।जिनका लक्ष्य जोखिम भरे उद्योगों से बाल श्रम का उन्मूलन तथा अन्य गैर जोखिम भरे व्यवसायों में रोजगार की उनकी दशाओं का विनियमन करना है।

कारखाना अधिनियम 1948 - 14 साल तक की आयु वाले बच्चों को कारखाने में काम करने से रोकता है।

बाल रोजगार संशोधित अधिनियम 1951

बाल श्रम अधिनियम 1951

खदान अधिनियम 1952 - 18 साल से

कम आयु वाले बच्चों को खदानों में काम करने पर प्रतिबन्ध लगाता है।

अनैतिक तस्करी (बचाव) अधिनियम 1956

व्यापारिक जहाजरानी अधिनियम 1958

मोटर ट्रांसपोर्ट मजदूर अधिनियम 1961

बीड़ी और सिगार मजदूर अधिनियम 1966

बाल रोजगार अधिनियम संशोधित 1978

बाल श्रम अधिनियम 1986 - 14 साल से कम उम्र के बच्चों को जीवन जोखिम में डालने व्यवसायों में काम करने पर रोक लगाता है।

राष्ट्रीय बाल श्रम नीति 1987

किशोर न्याय देखभाल और संरक्षण अधिनियम 2000 - बच्चों के रोजगार को दंडनीय

बाल विवाह निषेध अधिनियम 2006

राष्ट्रीय बाल संरक्षण आयोग 2007 - बाल अधिकारों के उल्लंघन के जुड़े मसले को सुलझाने का काम।

निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम 2012

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015

खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013

बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) संशोधन विधेयक 2016

जरूरत के हिसाब से 1986 के बाल मजदूरी कानून में संशोधन किया गया है। ये संशोधन बच्चों को कुछ विशेष प्रकार के व्यवसायों में काम पर करने पर रोक लगाता है और दूसरे व्यवसायों में बच्चों के काम करने की स्थिति को नियमित करता है। बाल श्रम कानून 2016 में ये छूट दी गई है कि 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे पारिवारिक व्यवसाय में काम कर सकते हैं। इसके अलावा बिल में 'किशोर' शब्द के जरिए 14 से 18 वर्ष की आयु के बच्चों को भी परिभाषित किया गया। जहां पहले बाल श्रम अधिनियम 1986 में 83 क्षेत्रों को खतरनाक घोषित किया गया था तो संशोधन के बाद अब केवल तीन क्षेत्रों को ही खतरनाक बताया गया जहां किशोर बच्चे काम नहीं कर सकते। बिल में दिए गए खतरनाक कामों में खनन, ज्वलनशील पदार्थ और खतरनाक प्रक्रियाओं में किशोरों को काम पर रखने पर रोक है।

बाल श्रम संशोधन अधिनियम, 2017

बाल श्रम कानून 2016 के आते ही इसकी आलोचना की गई। आलोचना की वजहों में - खतरनाक व्यवसायों की संख्या को 83 से घटाकर तीन कर दिया जाना और बच्चों को पारिवारिक उद्यमों में काम करने इजाजत देने जैसे फैसले शामिल थे। इसके बाद इस कानून में कुछ जरूरी बदलाव किए गए। बदलावों के मुताबिक बच्चे अब स्कूल के बाद केवल तीन घंटे ही पारिवारिक उद्यमों में मदद कर सकेंगे।

बच्चे शाम 7 और सुबह 8 बजे के बीच पारिवारिक उद्यमों में मदद नहीं कर सकेंगे।

बच्चे या किशोरों को एक कलाकार के रूप में एक दिन में केवल 5 घंटे और बिना आराम के 3 घंटे तक काम करने की इजाजत दी गई है।

किसी भी ऑडियो-विजुअल मीडिया निर्माता या किसी वाणिज्यिक व्यवसाय जिसमें बच्चे या किशोरों की भागीदारी होए ऐसा करने के लिए हर 6 महीने में जिला मजिस्ट्रेट से मंजूरी लेनी होगी।

किसी भी बच्चे या किशोर को बिना उसकी इच्छा और सहमति के किसी भी ऑडियो विजुअल और स्पोर्ट्स जैसी गतिविधियों में भाग लेने के लिये नहीं कहा जाएगा।

राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना

बाल मजदूरी से आजाद कराए गए बच्चों के पुनर्वास के लिए सरकार ने राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना लागू की थी। इस परियोजना का मकसद बाल मजदूरी से आजाद कराए गए बच्चों का विशेष स्कूलों में दाखिला कराया जाता है। जहां उन्हें औपचारिक शिक्षा प्रणाली में डालने से पहले शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, पौष्टिक आहार और स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

बाल श्रम के लिए कार्य करने वाले गैर सरकारी संगठन

भारत में कुछ गैर सरकारी संगठन भी बाल मजदूरी को रोकने के लिए काम कर रहे हैं।

बचपन बचाओं आंदोलन
कैलाश सत्यार्थी चिल्ड्रेन फाउंडेशन
CRY - Child Rights and You
प्रथम संगठन
चाइल्ड फण्ड
तलाश एसोसिएशन

सुझाव

बाल श्रम ने सिर्फ बच्चों के लिए भेजा है बल्कि यह समाज और देश के माथे पर भी कलंक है इसलिए हमें और हमारे देश के सभी नागरिकों और सरकार को बाल श्रम उन्मूलन के लिए कुछ प्रयास करने होंगे।

बाल श्रम के उन्मूलन संबंधी कानूनों का कड़ाई से पालन एवं नियम का उल्लंघन करने वालों को कठोर सजा दी जाए बाल श्रम वाले क्षेत्रों में शैक्षणिक वातावरण के विकास और स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाए भविष्य में बच्चे इस क्षेत्र में प्रवेश ना करें इस दिशा में भी प्रयास किया जाए इसके लिए गरीबी उन्मूलन पर ध्यान दिया जाए और शिक्षा वह भी रोजगार परक शिक्षा उपलब्ध कराई जाए स्कूल ड्रॉपआउट जीरो पर लाया जाए और अभिभावकों को अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रेरित किया जाए क्योंकि हम देखते हैं कि केरल में साक्षरता दर अधिक है ड्रॉपआउट सुनने हैं तो वहां बाल श्रम का प्रतिशत भी कम है क्योंकि बाल श्रम एक सामाजिक कलंक है इसके लिए हम सबको अपने प्रकार से समाजिक कदम उठाने चाहिए नियोक्ता मजदूर संगठन समाजसेवी संगठनों द्वारा बाल कल्याण कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाए और बच्चों की क्रिया एवं सेवा सुविधा का विस्तार किया जाए बहुत जन जागृति लाने के लिए कार्यशाला गोष्ठियों सम्मेलनों का आयोजन किया जाए।

निष्कर्ष

बाल श्रम एवं बाल शोषण विश्व का यथार्थ है यह समाज के लिए कलंक है इस समस्या का प्रमुख कारण निर्धनता है भारत में किसी भी प्रकार का बाल श्रम या शोषण प्रतिबंधित है फिर भी किसी न किसी रूप में यह हमारे देश में विद्यमान है भारतीय संविधान निर्माताओं द्वारा बाल श्रम को रोकने के लिए विभिन्न नियम बनाए गए हैं परंतु इन नियमों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए ठोस उपाय करने की आवश्यकता है सरकार को चाहिए कि वह बाल श्रम जैसी समस्याओं को मानव विकास के कार्यक्रमों के साथ जोड़कर देखें निर्धनता और बाल श्रम की समस्या में एक गहरा संबंध है यदि निर्धनता का निवारण कर दिया जाए तो इस समस्या से निजात पाई जा सकती है बाल श्रम एक विकट सामाजिक आर्थिक समस्या है जिसके उन्मूलन के लिए एक तत्व एवं दीर्घकालीन बहुआयामी रणनीति की आवश्यकता

है इस रणनीति के अंतर्गत बाल श्रम कानूनों का क्रियान्वयन ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा विभिन्न कार्यक्रमों की सहायता से बाल श्रमिकों के परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार रोजगार उत्पादक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन और बच्चों को काम पर जाने से रोकना आती उपाय सम्मिलित हैं बाल श्रम की समस्या एक ऐसी सामाजिक बुराई है जिसके लिए समाज के सभी वर्गों में जागरूकता के साथ एक दृष्टिकोण भी होना चाहिए ताकि वह बाल श्रम को रोकने में सहयोग कर सकें।

संदर्भ सूची

1. आहूजा एराम मुकेश (2015), विवेचनात्मक अपराध शास्त्र जयपुर, रावत पब्लिकेशन
2. आर्य, दीप्ति, (2012), भारतीय बालक सामाजिक आर्थिक दृष्टिकोण, नई दिल्ली, ओमेगा पब्लिकेशन
3. त्रिपाठ, विनायक, (2013), किशोर अपकारिता, हरियाणा, महेंद्र बुक कंपनी
4. निशांत सिंह, (2015), बाल शोषण एवं बाल श्रम, नई दिल्ली, ओमेगा पब्लिकेशन
5. आर्य, चंदा, (2013), बाल श्रम : एक विडंबना, दिल्ली, योजना पत्रिका
6. शर्मा, अनिल कुमार, (2014), भारत में बाल श्रम एवं मानवाधिकार, (जयपुर), प्वाइंटर पब्लिकेशन
7. जैन महावीर, खुराना के सी. (2011), बाल विकास का मुद्दा, दिल्ली, मानक पब्लिकेशन प्रा.लि. प्रथम संस्करण।
8. अनीश भसीन (2013) जानि, मानव अधिकारों को, नई दिल्ली, ग्रंथ अकादमी
9. मिश्र, सुरेंद्र कुमार (2003), मानव अधिकार एवं बाल श्रम, नई दिल्ली, निर्मल पब्लिकेशन
10. शर्मा, सुभाष (2010), भारत में बाल मजदूर, नई दिल्ली, संस्थान पब्लिकेशन
11. तनेजा, पुष्प लता, (जनवरी 2013) मानवाधिकार और बाल शोषण, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन
12. वाजपेई, आशा (2017), चाइल्ड राइट इन इंडिया OUP India 3rd
13. सत्यार्थी, कैलाश (2018) बदलाव के बोल, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन
14. सत्यार्थी, कैलाश (2019) आजाद बचपन की ओर, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन

https://labour.gov.in/hi/childlabour/census-data-child-labour

www.censusindia.gov.in

ख्याल गायन में पंडित कुमार मर्डुर जी की घरानेदार गायकी

ऋषभ चतुर्वेदी

शोध सार

वर्तमान में ऐसे कलाकार जो अलग-अलग घरानों की विशेषताओं को अपनी गायकी में सौंदर्य पूर्ण प्रयोग करते हुए एक नई गायकी का निर्माण कर रहे हैं एवं आगे आने वाली पीढ़ी और श्रोताओं को भी अपनी गायन शैली से आकर्षित कर रहे हैं। इसी संगीत एक परंपरा मैं कुमार मर्डुरजी की गायकी जो कि ग्वालियर एवं किराना घराना का एक नया सामंजस्य स्थापित कर रही है। इस गायकी की प्रेरणा स्रोत बनाते हुए इस शोध पत्र के माध्यम से संगीत एक समाज के समक्ष रखना चाहता हूँ।

सूचक शब्दः- *ख्याल, घराना, गायन, गायकी, शैली।*

शोध उद्देश्यः-

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से संगीत समाज को दोनों घरानों के संयोग से उत्पन्न हुई नवीन गायन शैली से अवगत होना चाहता हूँ, जिससे संगीत से जुड़ी युवा पीढ़ी लाभान्वित हो एवं ऐसे कलाकार, जो इस परंपरा को अग्रेसित कर रहे हैं, उनकी गायन शैली को संगीत समाज से अवगत हो सके।

भूमिकाः-

प्राचीन काल से ही हिंदुस्तानी शिक्षा प्रद्धति गुरु शिष्य परंपरा पर ही आधरित रही है इसके अनुसार शिष्यों का एक विशिष्ट समूह गुरु से शिक्षा प्राप्त कर रहा होता है और शिक्षण की यहीं पद्धति एक परंपरा का रूप धारण करके संप्रदाय अथवा घराना परंपरा को जन्म देती है। भारतीय संगीत कला के प्राचीन गायकों में कुछ ऐसे प्रसद्धि गायक हुए हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा से एक विशेष प्रकार की गायन शैली को जन्म देकर उससे अपने पुत्रों तथा शिष्यों को सिखाकर प्रचलित किया। आधुनिक समय में भारतीय शास्त्रीय संगीत में ग्वालियर घराना एवं किराना घराना दोनों ही घरानों का स्थान विशिष्ट है दोनों ही घरानों में प्रातः स्मरणीय कलाकार रहे हैं दोनों घरानों की अपनी संगीत विशिष्टताएँ रही हैं। किराना एवं ग्वालियर दोनों घरानों में ऐसे कलाकार हुए हैं जिन्होंने अपने घरानों की गायन शैली को कायम रखते हुए अपनी संगीत इस सोच को गायन शैली में पिरोया है हमें ऐसे बहुत से कलाकारों के उदाहरण प्राप्त होते हैं जिन्होंने अपनी गायन शैली में नवीन प्रयोग के माध्यम से संगीत समाज को नई गायन शैली से अवगत कराया है।

शोधार्थी, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विषय प्रवेशः-

ख़्याल अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है विचार, ध्यान, कल्पना आदि। राग नियमों का पालन करते हुए जब गायक अपनी इच्छा से विधि आलाप व तानों द्वारा विस्तार करके जो गीत या बंदिश गाते हैं उसको ख़्याल कहा जाता है। मानक हिंदी कोर्स के अनुसार ख़्याल का अर्थ ध्यान, चिंता, सोच-विचार, कल्पना, मत-विचार, लिहाज़, याद, गान पद्धति आदि है।

ख़्याल गायन को लय अथवा गायन के क्रम, परंपरा और विधि के आधार पर तीन प्रकार से गाया जाता है– विलंबित ख़्याल, मध्यलय ख़्याल एवं द्रुतलय के ख़्याल। किंतु आधुनिक समय में मध्य लय के ख़्याल का प्रचार कम हो गया है अतः विलंबित ख़्याल के पश्चात द्रुत ख़्याल ही अधिकतर गाया जाता है। सुधा श्रीवास्तव के अनुसार ख़्याल गायन शैली में बड़े और छोटे ख़्याल दोनों गीत प्रकारों का समावेश करने से श्रोता को राग के संपूर्ण दर्शन हो जाते हैं। ख़्याल शैली आधुनिक समय में ध्रुपद ही नहीं अन्य सभी गायन शैलियों से अधिक लोकप्रिय शैली बन गई है। उत्तर भारतीय संगीत में ख्याल एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में प्रतिष्ठित है।

मध्यकाल में घरानों की जड़े मजबूत हुई और गायन एवं वादन के अनेक घरानों ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया। उस काल में घरानों की उपयोगिता इतना बढ़ गई कि कलाकार की योग्यता उसके घराने के आधार पर ही आकी जाती थी। गुरु ऐसे शिष्य का चुनाव करते हैं जो कला के योग्य होता था क्योंकि योग्य शिष्य ही कालांतर में अच्छा कलाकार बनता है।

जब ख़्याल प्रचार में आया तो इसमें भी वर्ग या घर आने बन गए इसका कारण यह था कि ख़्याल शैली में गायक को स्वर के विभिन्न प्रयोगों वह संगीत अलंकरणों के विविध प्रयोगों की स्वतंत्रता थी। यह प्रबंध या ध्रुपद की भाँति बहुत अत्यधिक नियमों या बंधनों से जकड़ा हुआ नहीं था। ख़्याल गायक को अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर भावों का प्रदर्शन कंठ-माधुर्य, कंठ-चातुर्य, चमत्कार व वैचित्र्य आदि से अपनी योग्यता अनुसार गायन में मधुरता रंजकता एवं संगीत एक सौंदर्य निर्मित करने का पूर्ण अवसर मिलता है। इसलिए प्रत्येक गायक अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उस में मधुरता रंजकता च चमत्कारिक ताल आने का प्रयत्न करता है। अपने गायन को अधिक प्रभावशाली बनाने के प्रयत्न में किसी ने लयकारी पर ज़ोर दिया तो किसी ने स्वर के लगाव पर बल दिया। इसी प्रयत्न में कुछ गायकों ने अत्यंत प्रशंसनीय प्रयोग करके अपनी गायकी की उत्तम शैली का विकास किया। इन्हीं गायन परंपराओं ने शिष्य-प्रशिष्यों की परंपरा के रूप में अनेक पीढ़ियों तक चलने के बाद संगीत के विभिन्न घरानों का रूप धारण का आधार है। कालांतर में यहीं परंपरा धीरे-धीरे विकसित हुई एवं घरानों से उनकी उप-शाखाओं ने जन्म लिया एवं एक घराने से अन्य घराने धीरे-धीरे विकसित हुए।

ग्वालियर एवं किराना घराना दोनों ही घरानों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं जो इन दोनों घरानो की गायन शैली में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ग्वालियर एवं किराना दोनों ही घरानों की गायकी का विकास इन घरानों के कलाकारों द्वारा सांगीतिक चिंतन-मनन, नवीन प्रयोग एवं गुरु के प्रति संपूर्ण निष्ठा से हुआ है।

ग्वालियर घराना ख़्याल गायकी का सबसे प्राचीन घराना माना जाता है ग्वालियर घराने से ही सभी घराने उत्पन्न हुए हैं। जैसे आगरा घराना, रामपुरसहसवान घराना इत्यादि। सुर का

भराव, राग का विस्तार, रचना के शब्दों का लालित्य और उनका कलायुक्त उच्चारण, स्थाई और अंतरे की ताल बद्ध गंभीर व्याख्या, गायकी की प्रतिष्ठा, लांग डॉट, बंदिश की शानदार बढ़त और इन सबके साथ सुरीली वजनदार फिरत की ताने आदि सभी विशेषताएँ ग्वालियर घराने की गायन शैली में विद्यमान है। इस घराने में अत्यंत अतुलनीय एवं प्रतिष्ठित कलाकार हुए हैं जैसे बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, पंडित डी.वी. पलुस्कर, अनंत मनोहर जोशी, कृष्ण राव शंकर पंडित, वी.डी. पलुस्कर, पंडित ओमकारनाथ ठाकुर इत्यादि। इन कलाकारों ने अपने अथक प्रयास एवं सांगीतिक चिंतन से इस घराने को उच्च शिखर पर पहुँचाया है। इस घराने को अष्टांग गायकी का घराना कहा जाता है गायकी के आठों अंगों का प्रयोग इस घराने में होता है।

इस घराने में अति विलंबित लय का प्रयोग बहुत कम होता है राग का विस्तार क्रमानुसार होने के साथ-साथ बोला आलाप एवं बोल तानों में बंदिश के शब्दों के अर्थ के अनुसार लयकारी की जाती है। टप्पा अंग के ख़्याल, तराने, तिरवट तथा चतुरंग इस घराने की गायकी की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

ग्वालियर घराने की तरह ही किराना घराना भी अपनी संगीत एक विशिष्ट छाप लिए हुए हैं प्रायःलोग अब्दुल करीम ख़ान को इस घराने की गायकी का जन्मदाता और लोकप्रिय प्रचारक मानते हैं, किंतु इस घराने के बड़े सर्वश्रेष्ठ गायक बहरे वहीद ख़ाँ थे इनके अतिरिक्त इस घराने के प्रमुख कलाकार मैं स्वर्गीय रजब अली खान, उस्ताद अमीर ख़ाँ, पंडित भीमसेन जोशी, हीराबाई बढ़ोदेकर, बसवराज राजगुरु, पाकिस्तान की सुप्रसिद्ध गायिका रोशन आरा बेगम, गंगूबाई हंगल आदि के नाम प्रसिद्ध है।

स्वरों का सुरीलापन और चैनदारी, आलापप्रधान, कुछ महत्त्वपूर्ण स्वरूप को महत्त्व देकर उनके इर्द-गिर्द स्वरों को फैलाना, मीढ़ का प्रयोग, 1-1 स्वर को जोड़ते हुए ख़्याल का विस्तार करना तथा अलंकारों की बहुलता आदि इस घराने की विशेषताएँ हैं। तोड़ी, पूरिया, दरबारी, तथा मालकोश इस घराने के प्रसिद्ध राग हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उत्तर भारत में जन्म लेने वाली है शैली दक्षिण भारत में समृद्धि हुई है।

इस घराने की गायकी में आवाज़ को मधुर खुली आवाज़ की अपेक्षा कृतिम आवाज़ का प्रयोग कुछ अधिक किया जाता है। अतः इस घराने के स्वर नाजुक बारीक एवं मुलायम होते हैं। डॉ. शन्नोखुराना के अनुसार ''सुरका लगाव इस घराने की विशेषताएँ हैं।''

किराना घराने के संगीतकार अपने पूर्वजों द्वारा बनाई गई बंदिशों को ही गाते हैं। इस घराने में वक्र एवं और अब रागों का चलन प्रायः नहीं के बराबर ही होता है मुख्यतः पूर्वांग प्रधान राग शुद्ध कल्याण, दरबारी, श्री, यमन, पुरिया, तोड़ी, मालकोश तथा भैरव आदि रागों का प्रयोग होता है। इस घराने के संगीतज्ञ के अनुसार स्वर गायकी की आत्मा है। इस घराने में राग द्वारा रस उत्पन्न करने में शास्त्रों के उल्लंघन को अपराध नहीं माना जाता है। इसमें भाव के आधार पर बोल बाट को विशेष स्थान दिया गया है। माधुर्य के पुजारी उस्ताद अब्दुल करीम ख़ाँ का कहना था ''सुर गया तो सिर गया, ताल गया तो बाल गया।''

कालांतर से अभी तक ऐसे बहुत से कलाकार हुए हैं जिन्होंने दोनों घरानों की गायकी को अपने गायन शैली में पिरोया है एवं संगीत जगत के समक्ष अपने इस प्रयोग को सिद्ध किया। किसी भी घराने के जो सौंदर्यात्मक तत्व

होते हैं वह हमें उस घराने की ओर आकर्षित करते हैं, कलाकार वर्ग में भी जो प्रयोक्ता हैं उन्होंने भी दूसरे घराने की कलात्मकता और सौंदर्य तत्व को ग्रहण किया है।

वर्तमान समय में एक चलन ऐसा भी देखने को मिल रहा है जिसमें ग्वालियर और किराना घराना दोनों की गायकी एक साथ एक कलाकार में दिखाई देती है जो अत्यंत आकर्षक है, जिसकी एक विशिष्ट छवि है। कालांतर वर्ग को दोनों घरानों की जो भी विशेषताएँ अच्छी लगती हैं वह इन चीज़ों को अपने गायकी में प्रस्तुत करते हैं इस प्रयोग से हमें एक नया स्वरूप दिखाई देता है तथा उन दोनों घरानों की अपनी-अपनी विशेषताएँ भी दिखती हैं।

पंडित कुमार मर्डुर जी की सांगीतिक यात्राः- वर्तमान में घरानेदार गायकी को संरक्षित करने वाले वसबराज राजगुरु के शिष्य सोमनाथ मर्डुर जिन्होंने अपने पुत्र कुमार मर्डुर जी को घरानेदार परंपरा से जोड़ते हुए एक विशिष्ट गायन से सजोह कर तैयार किया।

सोमनाथ जी की संगीत की शिक्षा का आरंभ पद्मभूषण पंडित पुट्टराज गवई जी के द्वारा हुआ, जो धारवाड़ में आश्रम में रह कर संगीत की शिक्षा देते थे। उसके पश्चात बसवराज राजगुरु से संगीत की बारीकियां सीखी। पहले यह उस्ताद अमीर खान एवं बड़े गुलाम अली खान की तरह गाते थे लेकिन अब मुख्यतः किराना घराना ही गाते हैं। इन्होंने धारवाड़ में किराना घराने की गायकी को विकसित किया। इनका कथन है ''किराना घराने में जो भी गाते हैं उसका स्पष्ट उच्चारण होता है, और गाना भी खुला हुआ होता है जो कि सीधे दिल को छूता है ज़्यादा राग नहीं गाते लेकिन जो भी गाते हैं सौ प्रतिशत पसंदीदा गाते हैं यह कहते हैं कि जो आत्मा को आनंद दे वहीं महत्त्वपूर्ण है।''

यह किराना घराने के वर्तमान कलाकार के लिए विचार रखते हुए कहते हैं कि आजकल कलाकार डूबना नहीं चाहते हैं हाँ मेलोडियस गाते हैं, पर डूबकर गाना एक अलग बात होती है। यह कहते हैं कि पंडित भीमसेन जोशी जी कहते थे कि ''हमारा गाना मत गाओ, सबका सुनो मंथन करो, तब अपनी एक राह बनाओ और सभी रंग को समेटो।''

सोमनाथ जी कहते हैं पंडित भीमसेनजोशी जी ने बहुत प्रयोग किए हैं। स्वर साम्राज्ञी केशरबाई केलकर जी, जो कि अल्लादिया खान साहब की ख़ास शागिर्द थी उनसे कहती हैं कि आप मेरा गाना चुराकर गाते हैं तो पंडित भीमसेनजोशी जी कहते हैं कि चोरी करो लेकिन जो अच्छी बात हो उसकी।

- पंडित कुमार मर्डुरजी धारवाड़ की समृद्ध परंपरा से ताल्लुक रखते हैं इनका जन्म 6 जनवरी 1979 को धारवाड़ कर्नाटक में हुआ इन्होंने डॉ. आर.एस. हीरेमठ से 6 साल तबला वादन की बारीकियों को सीखा तत्पश्चात अपने पिता सोमनाथ मर्डुर जो कि स्वयं किराना घराना के सुप्रसिद्ध गायक हैं के तहत गायन की विधिवत तालीम ग्रहण की। अपने पिता के कुशल मार्गदर्शन में कुमार मर्डुर ने किराना, ग्वालियर एवं जयपुर तीनों घराने की शैलियों को मिश्रित करके अपनी एक अलग गायकी का निर्माण किया। सुरीली आवाज़ के धनी कुमार मर्डुर जी रागों की शुद्धता, सौंदर्यात्मक प्रस्तुति, क्रिस्टलक्लियर तान पैटर्न एवं लय पर कमान के लिए जाने जाते हैं। कुमार मधुर ने कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़ से संगीत की मास्टर डिग्री उत्तरीर्ण की। इनको भारत सरकार द्वारा हनी को

छात्रवृत्तियाँ एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं। वर्तमान में देश-विदेश में श्रोताओं को अपने गायन से मंत्रमुग्ध कर रहे हैं। दिसंबर 2011 से ITC SRA में गुरु के पद पर आपकी नियुक्ति हुई।

उनके प्रदर्शन की एक चयनित सूची :

- संयुक्त राज्य अमेरिका और सिंगापुर के सफल संगीत कार्यक्रम।
- पंगणयोगीपंचाक्षरा स्मृति संगीतोत्सव, गडग, बैंगलोर, मुंबई, चैन्नई, धारवाड़, हुबली और कई और अन्य स्थान।
- सवाई गंधर्व भीमसेन संगीत महोत्सव पुणे।
- सवाई गंधर्व संगीत महोत्सव, कुंडगोल, कनार्टक।
- बाबा हरिवल्लभ संगीत द्वारा आयोजित वसंत उत्सव Mahasabha, Jalandhar.
- उस्ताद अमीर खान स्मृति समरोह, इंदौ, म.प्र.
- डॉ. मल्लिकार्जुनमंसूर स्मृति संगीतोत्सव, धारवाड़।

  डॉ. बसवराजराजगुरु स्मृति संगीतोत्सव, धारवाड़।

  बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

  *एन.सी.पी.ए. मुंबई।

  * पं. ओंकारनाथ ठाकुर फांउडेशन, ठाणे
  - मल्हार उत्सव, बैंगलोर।
  - दादरमाटुंगा सांस्कृतिक केंद्र, मुंबई।
  - Swar Vilas, Baroda.

  *Deval Club, Kolhapur.

  *MeghMalhar, Varanasi.
- जयंती द्वारा खींचा गया विष्णु * सनी टावर्स, कोलकाता।

  * Samaroh, New Delhi.
- आईटीसी संगीत अनुसंधान अकादमी, कोलकाता, * आई.एम.जी. सेंट जेवियर्सकॉलेज, मुंबई।
- अखिल बंगाल संगीत सम्मेलन, कोलकाता।
- Arohi by PanchamNishad, Mumbai.

  * गणवधर्न, पुणे।
- Sangeet Partibha by Sangeet Natak Academy, New Delhi.

कुमार मर्डुर को कई सम्मान मिले हैं। एक चयन...

- "Ustad Bismillah Khan Yuva Puraskar 2021" by Sangeet Natak

अकादमी, नई दिल्ली। * गंधर्व महाविद्यालय द्वारा ''रामकृष्ण बुआ वज़े पुरस्कार'', पुणे।

''पद्मविभूषण डॉ. मल्लिकार्जुनमंसूर राष्ट्रीय युवा पुरस्कार 2010 ''पद्मविभूषण पंडित मल्लिकार्जुनमंसूरमेमोरियल नेशनल ट्रस्ट, धारवाड़ द्वारा।

* ''डॉ. वसंत राव देश पांडेय में मोरियल युवा कलाकार पुरस्कार 2007'' डॉ. वसंत राव देश पांडेय में मोरियल फाउंडेशन, पुणे द्वारा।

- म्यूजिक फोरम, मुंबई द्वारा ''विद्यासागर अवार्ड 2006'' द्वारा छात्रवृत्ति
- Karnataka State Sangeet Nritya Academy, Bangalore.
- अवनि रसिका रंगा, धारवाड़, *संस्कृति विभाग, नई दिल्ली।
- Mani Mann Fellowship by Sanskrit Pratishthan, New Delhi for वर्ष 2006.

Commercial releases...

- सी.डी. और कुमार की शास्त्रीय प्रस्तुति के कैसेट लेजेंडरीलिगेसी ठाणे द्वारा जारी किए गए हैं। * सी.डी. नई दिल्ली के मिस्टि का म्यूजिक द्वारा जारी किया गया।

किराना घराने में सुर को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है इसलिए इनके गायन में अधिक

रंजकता झलकती है कुमार जी का कहना है कि उस्ताद वहीद खान जी ने किराना घराने की गायकी की शास्त्रीय अवधारणाओं को पूर्णतया पालन किया है ख़्याल पद्धति में मेरु खंड का जो प्रधान है वह इन्हीं की देन है कुमार मधु जी का मानना है कि किराना घराना की गायकी अधिक विशेष है क्योंकि इसमें कर्म से शुरू की बढ़त का जो काम है वह इससे और घर आने से अलग ूमकरती है स्वर लगाओ एवं राख प्रस्तुति का प्रभावी ढंग इस गाने में अधिकतर महत्त्वपूर्ण है उनके विचार से किराना घराने की पारंपरिक और आधुनिक गायकी में परिवर्तन हुए हैं जैसे उस्ताद अब्दुल करीम खान से लेकर सुरेश बाबू माने सवाई गंधर्व भीमसेन जोशी आदि जितने भी कलाकार हैं सब में आपको कुछ ना कुछ फर्क़ दिखाई देता है क्योंकि हर किसी की गायकी उसकी अपनी संगीत की सोच और स्वभाव पर निर्भर करती है कुमार जी अपनी गायकी में किराना घरानों को प्रबल रखते हैं और ग्वालियर और जयपुर घराने की गायकी का आंशिक रूप से प्रयोग करते हैं इनके किराना घराने के पसंदीदा गायक उस्ताद अब्दुल करीम खान, अमीर खान एंव पंडित भीमसेन जोशी जी हैं।

निष्कर्ष :-

शास्त्रीय संगीत हमेशा से परिवर्तनशील रहा है। गायकी में हमेशा से प्रयोग होते रहे हैं। इन्हीं प्रयोग से आज शास्त्रीय संगीत उच्च शिखर पर विद्यमान है। ग्वालियर एवं किराना घराना दोनों ही एक-दूसरे के विपरीत घराने हैं, दोनों की ज्ञान शैली भी एक-दूसरे से अलग है लेकिन वर्तमान समय में कुछ कलाकार अपने घरानों की तालीम के साथ-साथ दूसरे घराने के सौंदर्यान्मक तत्व को ग्रहण कर नवीन गायकी का निर्माण कर रहे हैं जिनमें दोनों घरानों के गुण समाहित हैं। इस शोधपत्र के माध्यम से मैं पंडित कुमार मर्डुर की गायकी को संगीत समाज के समक्ष प्रस्तुत कर के संगीत समाज से अवगत कराना चाहता हूँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. मधुबाल सक्सेना, ख़्याल शैली का विकास, पृ.31
2. ब्रजेशबंदोपाध्याय, संगीत वीथिका, पृ.91, 92
3. सुधा श्रीवास्तव, भारतीय संगीत के मूलाधार, पृ. 126
4. कमलेश सक्सेना, संगीत घराना अंक, पृ. 10
5. डॉ. शुशील कुमार चौबे, संगीत के घरानों की चर्चा, पृ. 17
6. डॉ. सन्नो खुराना, ख़्याल गायकी में विविध घराने
7. डॉ. शुशील कुमार चौबे, हमारा आधुनिक संगीत
8. डॉ. शुशील कुमार चौबे, संगीत के घरानों की चर्चा
9. डॉ. प्रभा अत्रे, स्वरमयी
10. डॉ. शरद चंद श्रीधर परांजपे, संगीत बोध
11. वामन हरि देशपांडे, घरानेदार गायकी
12. अशोक कुमार ''यमन'', संगीत रत्नावली

लोकगीतों का विकासक्रम और नवाचार (भोजपुरी लोकगीतों के विशेष सन्दर्भ में)

मनीषा, डॉ विशाल जैन

संगीत विश्व की प्राचीनतम भाषा है जो मनुष्य मन की भावनाओं के साथ समाहार कर सुख और दुःख दोनेा परिस्थिति का साथी बन जाता है। विश्व के समस्त क्रियाकलापों की प्रकृति विकाशील है। विकास जन्म से मृत्यु तक की दशा है, आदि से अन्त तक व्यक्ति केवल विकास की ओर अग्रसरित रहता है। यही विकास लोक संगीत में किस प्रकार होता आया है को सन्दर्भित करने का प्रयास मेरे मुख्य शोध प्रपत्र का उद्देश्य है जिसके फल स्वरूप मेरा विषय ''लोकसंगीत का विकासक्रम व नवाचार (भोजपुरी लोकगीतों के विशेष सन्दर्भ में)'' है। आशा है लोकजगत में मेरे छोटे प्रयास से जन समुदाय और लोक संगीत जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा को थोडी संतुष्टि आवश्य मिलेगी।

प्राचीन काल से ही संगीत को 'गन्धर्व' नाम से सम्बोधित किया जाता था और गन्धर्व का गान करने वाले गांधर्व कहलाए। भारत के प्राचीनतम सामसंगीत के उपवेद के रूप में गान्धर्व शास्त्र को मान्यता मिली। भरतमुनी के नाट्य शास्त्र में गांधर्व अर्थात स्वर-ताल पद तीनों अंगों का समावेश माना गया इन तीनों अंगों में सें किसी एक भी अंग के विलोपन से जगत में व्याप्त किसी भी प्रकार के संगीत को पूर्ण रूप नही मिल सकता। सार्थक शब्दों के समूह के साथ स्वर और ताल की निबद्व पूर्ण रचना ही गीत है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र के चौदहवें अध्याय में विविध नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों की चर्चा की है।[1]

संगीतजीवि समस्त समुदाय इस बात से भलिभाँति परिचित है कि आरम्भ से संगीत की दो धाराएं प्रचलित रही। एक धारा जो धार्मिक समारोहों और धार्मिक विधि विधान को लेकर मार्गी संगीत के नाम से प्रवाहित रही वही दूसरी धारा लौकिक समारोह व मनोरंजन के उद्देश्य से देशी संगीत के नाम से प्रवाहित रही। दोनों ही सांगीतिक धाराएं सामान्तर रूप से अनादिकाल तक प्रवाहित रही। दोनो ही संगीत का मूलाधार स्त्रोत जनसंगीत व लोक संगीत रहा। अन्तर केवल अनुशासन व परिष्कार के नियमों का रहा। जहां मार्गी संगीत में नियमों का अनुशासन रहा वहीं देशी संगीत में अनुशासन की शिथिलता रही। देशी संगीत स्वर वैचित्य एवं चपलता के लिए प्रसिद्व था मार्ग संगीत की तुलना यदि गंगा नदी के धीर, गम्भीर एवं प्रशान्त प्रवाह से करी जाये तो देशी संगीत की तुलना पहाड़ी प्रदेशों में उन्मुक्त रूप बहते हुए और कल कल करते हुऐ छोटे झरनो से की जा सकती है।[2]

उत्तर प्रदेश के लोक साहित्य की अमूल्य

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज मो.नं. 8573965403
Email. manisha3493@gmail.com

निधि को प्रकाश में लाने वाले व्यक्ति डब्लू.सी. वारनेट थे जिन्होने सन 1872 ई में 'अवध फोकलोर' नामक एक निबन्ध लिखा था।[3] हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों में सबसे अधिक बोली जाने वाली बोली भोजपुरी है भोजपुरी हिन्दी की उपभाषा के रूप में भी जानी जाती है। डॉ. ग्रियसेन पहले व्यक्ति है जिन्होने भोजपुरी लोक साहित्य पर शोध किया और बिहार की तीन बोलियों मगधी, मगही, भोजपुरी में भोजपुरी को सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्वीकार किया।

भोजपुरी भाषा का विस्तार क्षेत्र

भोजपुरी भाषा उत्तर प्रदेश के नौ जिलों वाराणसी, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, जौनपुर, आजमगढ और बस्ती (कुछ भागों में) बोली जाती है। यह बिहार के भोजपुर से शुरू होकर रांची तक व बम्बई कलकत्ता और असम तक सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा है भोजपुरी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में खूब अपनाया गया। भारत के बाहर मौरिसस, फीजी, सूरीनाम, ब्रिटिश, गाइना और युगांडा, में भी बोली जाती है। डॉ. कृष्णादेव उपाध्याय के अनुसार इसका विस्तार क्षेत्र 50000 वर्ग में फैला हुआ है इसके भाषा भाषियों की संख्या 10 करोड से भी अधिक है।

भोजपुरी भाषा का इतिहास

भोजपुरी भाषा बहुत पुरानी है राउवां व राउर शब्द भोजपुरी के वाचिक परम्परा के मुख्य शब्द है। इस भाषा के बहुत अधिक साक्ष्य है तुलसीदास जी के रामचरितमानस में मिलते है हालांकि इस महाकाव्य में जितना भोजपुरी भाषा का प्रयोग है उतना ही अवधी) भाषा का भी प्रयोग मिलता है। तुलसीदास जी के अतिरिक्त कबीरदास, भीखा साहब, धरनीदास, शिवनारायण, लक्ष्मी सखी आदि सन्त कवियों ने भोजपुरी भाषा में अनेको रचनाऐं रची।

लोकगीतों की वचिक परम्परा

लोकगीतों के नामकरण का निर्धारण वाचिक परम्परा के माध्यम से फलीभूत है बुद्विजीवी व साहित्यकार वर्ग इस परम्परा से पूर्णतः परिचित है। किन्तु सामान्य समाज में इस विषय पर चर्चा कम होती है। सामान्यतः जन समुदाय जो अपनी ग्रामीण मौलिक बोली का प्रयोग करता है उससे भी इस परम्परा के विषय में बात की जाये तो वह मौन रहता है। वाचिक परम्परा को लोक की वास्तविकता कहना ज्यादा उचित है क्योकि यही परम्परा यह निर्धारित करती है। कि बोली अवधी भोजपुरी या भिन्न है।

वाचिक परम्परा के अध्ययन से भाषा विकास की विभिन्न अवस्थाये व परिवर्तन की स्थितियां भी रेखांकित की जा सकती है। कई बार एक मुख्य भाषा से असंख्य मिश्रित भाषाऐ निकलती है और यह मिश्रण वाचिक परम्परा की मुख्य विशेषता है। इसमें भाषा और शब्दों के विविध प्रयोग के दर्शन होते है। जहां तक अवधी और भोजपुरी भाषा के वाचिक परम्परा की चर्चा करें तो यह पूर्णतः समृद्व और सुसंस्कृत है। इन दोनो ही भाषाओं में शब्दो और अभिव्यक्ति की कल्पना सामर्थ्यशील है। अवधी में ''इ'' इकार क्रिया की परम्परा है।[4] जैसे जाइब, खाइब, नहाइब आदि। अवधी और भोजपुरी परम्परा के साथ-साथ लोकगीतों की पदरचना लोककथाओं की गद्य रचना भी सम्मलित है। गद्य व पद्य मिश्रित अन्य विधाएं जैसे लोकोक्तियां, लोकगाथा, लोक मुहावरे, लोक सुभाषित आदि परम्परा भी सम्मलित है।

अवधी और भोजपुरी दोनो ही भाषा के

वाचिक मौखिक परम्परा के साथ लिखित साहित्य भी अत्यन्त समृद्व है जैसे अवधी भाषा के लेखकों में गोस्वामी तुलसीदास, मलिक मोहम्मद जायसी, मुल्ला दाउद, कुतुबन मंझन, रहीम, कबीर, आदि की कृतियां मिलती है। इन वाचिक और लिखित परम्परा में कई चीजे वाचिक परम्परा से लिखित परम्परा में तथा कुछ लिखित परम्परा से वाचिक परम्परा में हस्तांतरित हुयी है।

वर्तमान समय में लगभग हर भाषा समृद्व है फिर भी लेखकों के विवरण व साक्ष्य को देखकर यह कहना गलत नही होगा कि लोक भाषाओं में जितनी समृद्व अवधी और भोजपुरी भाषा है उतना और कोई नही। डा. ग्रियर्सन, डा. हार्नले, बीम्स, डा. उदय नारायण तिवारी, डा. कृष्णादेव उपाध्याय, श्री डब्लू सी. आर्चर, शान्ति पीटर, नौरंगी, डा. सत्यव्रत सिन्हा, पं. गणेश चौबे, श्री दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह आदि विद्वानों ने अपनी कृतियों में लोक भाषा भोजपुरी को अत्यन्त समृद्व और सुसंस्कृत माना।[5]

अवधी और भोजपुरी दोनो ही बोली को हिन्दी भाषा की उपभाषा में प्रमुख स्थान मिला। जहां जननी एक हो वहां कुछ समानताएं होना स्वाभाविक है अतः अवधी और भोजपुरी दोनो ही भाषा के उच्चारण में तालव्य 'श' के स्थान पर दन्त्य 'स' का ही प्रयोग होता है इसी प्रकार भोजपुरी की प्रमुख वाचिक परम्परा में 'ल' क स्थान पर 'र' का प्रयोग होता है जैसे थाली को थारी, काजल को काजर, आदि। भोजपुरी के अस् प्रत्ययान्त देखस, देखलस, देखतस जैसे क्रिया पदों में अर्धमागधी से उत्पन्न अवधी से बहुत कुछ समानता है।

लोकगीतों की गायन परम्परा और बदलता स्वरूप

लोक शब्द अंग्रजी के फोक का पर्यायवाची है लोक शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थो में हुआ जैसे जाति, क्रिया विशेष समुदाय, राष्ट्र व वर्ग विशेष के सन्दर्भ में किया गया।

लोकगीतों व लोक साहित्य के संकलन व विकास के क्रम में अनेकों भारतीय व विदेशी विद्वानों का योगदान सराहनीय रहा। देवेन्द्र सत्यार्थी, सुधान्शु, डा. कृष्ण देव उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी आदि भारतीय साहित्यकारों का अतुलनीय योगदान से लोकगीत व लोकसाहित्य के अनेकों ग्रन्थों के संस्मरण प्राप्त होते है। लोकगीतों की परिभाषा देते हुये पं. रामनरेश त्रिपाठी कहते है कि ग्राम्यगीत प्रकृति के उद्गार है इनमें अलंकार नही केवल रस है, छन्द नही केवल लय है, लालित्य नही केवल माधुर्य है। ग्रामीण समुदाय के स्त्री पुरूषों के मध्य हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्रामगीत है। विद्वानों ने लोकगीतों को इनकी प्रवृत्ति के अनुसार श्रेणीवद्व किया है जो निम्न है।

लोकगीतों का वर्गीकरण

डा. कृष्णादेव उपाध्याय के अनुसार

1. संस्कार सम्बन्धी गीत
2. ऋतु सम्बन्धी गीत
3. व्रत सम्बन्धी गीत
4. जाति सम्बन्धी गीत
5. श्रम सम्बन्धी गीत
6. विविध गीत

पं. रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार ग्रामगीतों का वर्गीकरण 11 अन्य श्रेणियों में विभाजित है।

1. संस्कार सम्बन्धी गीत
2. धर्म सम्बन्धी गीत
3. खेती सम्बन्धी गीत
4. मेले सम्बन्धी गीत

5. वीर गाथा
6. अनुभाव के वचन
7. चक्की और चरखें के गीत
8. ऋतु सम्बन्धी गीत
9. भिखमंगी के गीत
10. जाति के गीत
11. गीत कथा

संस्कार संबंधी गीतों में हिंदू रीतिरिवाज़ व परंपराओं के गीत जैसे मुंडन, जन्म, यज्ञोंपवीत, जनेऊ, विवाह, और मृत्यु के गीत आते है। ऋतु संबंधी गीतों में कजरी, चैती, बारहमासा, होरी आदि के गीत मिलते है। व्रत संबंधी गीतों में नागपंचमी के गीत, छठी माता, बटसावित्री के गीत मिलते है। इसी प्रकार जाति संबंधी जैसे अहिर जाति के लोकगीत 'अहिरा', धोबीजाति समुदाय का 'धोबिया' लोकगीत आदि आते है।

लोकगीतों की गायन परंपरा के उद्‌गम के विषय में इतिहास और मनुष्य दोनों मौन है। वैसे ही जैसे संगीत की उत्पत्ति के हज़ारों मत है उसी प्रकार लोकगीतों की गायन परंपरा के भी हज़ारों मत है। किंतु मानव मन के किसी भी भावतिरेक स्थिति से लोक गीतों ने जन्म लिया होगा। दैनिक आचरण व क्रिया कलाप सुख-दुःख व हर्ष विषाद की स्थिति में बिना स्वर ज्ञान के धुनों का प्रकटन हुआ होगा और इन धुनों के माध्यम से भवनाएँ व्यक्त की गई होगी। ऐसी ही धुनों का हस्तांतरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर हुआ होगा और लोकगीतों का रूप बना होगा। ऐसी ही धुनों का हस्तांतरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर हुआ होगा और लोकगीतों का रूप बना होगा। तभी तो बिना संगीत ज्ञान के इतना रस माधर्य लोकगीतों में है। एक बार इन धुनों के काम में पड़ते ही ये धुने हमारी अपनी भावनाओं से एकीकृत हो जाती। समूह में गाते ही ये धुनें लोक रागिनी में बदल कर आनंद की पराकाष्ठा को कब लांग जाती है पता ही नहीं चलता है। कई पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है कि आधुनिक कालीन राग गायन की पद रचना की जननी लोक साहित्य व लोक भाषा है काफ़ी हद तक यह सही भी है ज्यादातर बंदिशों की भाषा भोजपुरी, अवधी, ब्रज भाषा में मिलती है कई बार एक बंदिश के पद में कई भाषा या बोली के दर्शन होते है।

आधुनिक काल में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तीनों पक्ष गायन वादन और नृत्य समृद्ध है। समृद्धि और संस्कृति दोनों ही पक्षों का प्रभाव लोकगीतों पर पड़ना निश्चित था तो पड़ा भी। हालाँकि लोकजीवन व लोक संगीत दोनों सभ्य संप्रदाय के साथ-साथ असभ्य भी है। क्योंकि लोक का अर्थही है समाज में व्याप्त समस्त प्रकार के बिंदु को देखना अर्थात् लोक सभ्य और सुसभ्य, शिष्ट और अशिष्ट दोनों का द्योतक है। लेकिन हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत पूर्णतया शिष्ट और सभ्य है। लोकगीतों की रसाभिव्यक्ति में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के सौंदर्यात्मक तत्व जैसे मीड, खटका, कण, मुर्की आदिका लोकगीतों में भी प्रयोग होता है किंतु इनकी व्याख्या केवल संगीतज्ञानी ही कर सकता है ग्राम्य समुदाय नहीं। आधुनिक समय में लोकगीतों को, नए मुकाम तक पहुँचाने में लोकगीत प्रख्यात गायिका पद्‌म भूषण शारदा सिन्हा जी पद्‌मश्री मालिनी अवस्थी जी लोक गायक मनोज तिवारी आदि महान गायकों ने लोक संगीत को नया आयाम दिलाया है।

लोक संस्कृति विकास व बदलता स्वरूप–

लोक संस्कृति में लोक जीवन, लोक संस्कार, लोक विश्वास व मिथक, लोक साहित्य, लोक

संगीत, लोक चेतना सब कुछ समाहित है। लोक संस्कृति अत्यंत व्यापक है लोक है व्याप्त प्रत्येक शिष्ट क्रियाकलाप लोक संस्कृति में समाहित है किंतु लोक संस्कृति से हटकर जब लोक परंपरा की बात आती है तक कुछ अशिष्टता भी जन्म ले लेती है जैसे गालियां। गालियां लोक में प्रचलित है और दैनिक जीवन में इसका भरपूर उपयोग भी देखा गया है किंतु गालियां सभ्य संस्कृति के अंतर्गत नहीं बल्कि परंपरा है जो एक से दूसरे तक पहुँचता है। यहीं परंपरा जब शिष्टता से संस्कृति में प्रवेश करती है तो गालियों के स्थान उसे गारियां (लोकगीत गायन विधा) कहके संबोधित किया जाता है जो नई दुल्हन के ससुराल आने पर वर पक्ष की बहनों द्वारा व कन्या पक्ष द्वारा बेटी के ससुराल वालोंको दिया जाता है। जिसमें थोड़ी छींटाकशी के साथ-साथ शिष्टता सभ्यता और संस्कार सम्मिलित होता है। हमारे भारत देश से इतनी सारी लोक संस्कृतियाँ है जिनको कुछ पन्नों में समेट पाना अत्यंत मुश्किल है। लोक संस्कृति को साधारणतया लोग 'ग्रामीण संस्कृति' का पर्याय मानते है जबकि यह उन सभी लोगों की संस्कृति है जो किसी भी समुदाय का हिस्सा है, लोक संस्कृति में निरंतर बदलाव हो रहे है। इसी प्रकार जिस प्रकार आधुनिक रहन-सहन, पहनाव और परंपराओं में किंतु इन सारे जोड़ घटवके बाद भी उसी मूल सुगंध ज्यो की त्यो बनी है। कुछ पश्चिमी सभ्यताओं ने तेज़ी से पैर ज़रूर पंसारे और इनका प्रभाव भी लोक संस्कृति पर पड़ा है फिर लोक परंपरा पीढ़ी पर पीढ़ी चली आ चली है।

यह कहने में तनिक भी संदेह नहीं है कि मानव जीवन से जुड़े प्रत्येक अध्याय का सार लोक और लोक संस्कृति में है। लोक जीवन, लोक कथाएँ, लोक साहित्य, लोक संगीत का समग्र रूप लोक संस्कृति में समाहित है। लोक संस्कृति के विकास की सीढ़ी में प्रत्येक लेखकों के दृष्टिकोण भले ही अलग हो किंतु उनका मूल अर्थ जनसाधारण और उनके जीवन से जुड़े क्रिया कलाप ही रहे, यदि लोक संस्कृति को समझना है तो इसका ज्ञान पुस्तकों या पोथियों में नहीं बल्कि हमारे समाज से जुड़े व्यावहारिक ज्ञान से प्राप्त होगा। समय के बदलते स्वरूप के साथ लोक संस्कृति का रूप बदलना भी संभव है। लोक परंपरा में व्याप्त अश्लीलता को अलग कर लोक संस्कृति का सृजन भी बदलाव के स्वरूप की एक कड़ी है। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में लोक परंपरा के अंतर्गत आने वाली अश्लीलता और फूहड़पन को लोक संस्कृति में जगह नहीं मिली। लोक संस्कृति में व्याप्त अश्लीलता, आसमाजिक तत्वों और बुराइयों को निकाल कर लोक संस्कृति का विकास हुआ अर्थात लोक में जो कुछ भी है वह सब संस्कृति नहीं क्योंकि संस्कृति समाज में व्याप्त गुणों के रूप का नाम है।

लोक संस्कृति पुराने संदर्भो से निकल कर विकास के रास्ते पर चलने के लिए गतिमान है। विकास की राह में कभी किसी सभ्यता ने इसे प्रभावित किया तो कभी धूमिल किंतु इसकी मूल सुगंध आज भी बरकरार है। पश्चिमी और नवीन संभ्यता का जो असर आज देखने को मिल रहा है उसका वर्णन कई वर्षों पहले हमारे देश के विद्वान कर चुके है। अपने आप को उच्च और श्रेष्ठ साबित करने की होड़ मची हुई है। जो संस्कृति और सभ्यता हमारी नींव है उसे हम गवाँरपन कहकर पीछे छोड़ रहे है। जो लोग पश्चिमी सभ्यता की नकल कर उसे उच्च और सभ्य संस्कृति का नाम दे रहे है। वास्तव में वे इस बात से अनभिज्ञ है कि हमारी संस्कृति का नाम बदलकर पॉपुलर संस्कृति का नाम

दिया जा रहा है। वास्तव में आज लोक संस्कृति को दिखावे की नहीं बल्कि उसका उत्थान करने की आवश्यकता है। लोक संस्कृति को दर्शकों के मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि अपनी संस्कृति को नया जन्म देने की आवश्यकता है। लोक संस्कृति हमारे देश की आत्मा है इसका पालन-पोषण करना हमारा नैतिक कर्तव्य है। वर्तमान में आवश्यकता है लोक शब्द के वास्तविक अर्थ को सत्य करने की व्यक्तिगत नहीं समूह में अपनी संस्कृति को बचाने की। लोक संस्कृति को विराम की नहीं बल्कि नए आयाम की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बृहद्देशीय – प्रेमलता शर्मा एवं अनिल ब्यौहार
2. लोक साहित्य की भूमिका – उपाध्याय कृष्ण देव
3. राजस्थान के लोगगीत और उनमें प्रयुक्त वाद्य – डॉ. अनीता
4. सांस्कारिक लोकगीतों को शास्त्रीय अध्ययन – डॉ. जोशी गीता
5. भोजपुरी लोकगीतों के विविध आयाम – डॉ. सिन्हा ज्योति
6. अवधि ग्रंथावली खंड-1 – पीयूष जगदीश
7. लोक गीतों में नाद-सौंदर्य – डॉ. शर्मा पुष्पा
8. अवधी लोक संगीत विरासत – डॉ. सिंह विद्या बिंदु
9. अवधी लोक संगीत विरासत – डॉ. महेश अवश्थी
10. हिंदी भाषा का विकास – प्रो. रामकिशोर शर्मा
11. हिंदी भाषा – मीरा दीक्षित
12. संगीत मीमांसा – डॉ. मृदुला पुरी
13. सौंदर्य,रस एवं संगीत – प्रो. स्वतंत्र शर्मा
14. लोकगीतों में समाज – पूर्णिमा श्रीवास्तव
15. संगीत मणि (भाग-1) – डॉ. महारानी शर्मा
16. भारतीय संगीत (भाग-2) – डॉ. सीमा जौहरी
17. संस्कृति-समस्या और संभावना – गोविंद चातक
18. भोजपुरी लोक संस्कृति एवं हिंदुस्तानी संगीत – संजय कुमार सिंह
19. भारत का लोक साहित्य – कृष्ण देव उपाध्याय

संगीत एवं दर्शन का अन्तः सम्बन्ध

प्रो. ऋचा कुमार, ज्योतिर्मयी मिश्रा

सार संक्षेप

भारतीय संगीत अध्यात्मिक अभिव्यक्ति का प्रबल साधन है। संगीत कला आत्मा को तुष्ट करती है, तृप्त करती है तथा मोक्ष पर्यन्त परमतत्व से साक्षात्कार कराती हैं। दर्शन व संगीत दोनों वेद जनित विद्याएँ हैं। दोनों के ही मूल में आत्मा व ब्रह्म की जिज्ञासा निहित है। सभी सांगीतिक ग्रन्थों में आध्यात्मिक पक्ष पर विचार किया गया है जो दर्शन के ज्ञान के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। दार्शनिक चिन्तन हमारी भारतीय संस्कृति और ज्ञानधारा का प्रमुख चिन्तन है। दार्शनिक चिन्तन को ही आधार मानकर सभी विद्याएँ और सभी शिल्प प्रवर्तित हुए है। हर दर्शन किसी न किसी वेदवाक्य को ही आधार मानकर अपना सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जितने भी दर्शन के सिद्धान्त है सभी के मूल में वेद है। संगीत लोक विद्या भी है और अध्यात्म विद्या भी अर्थात् भुक्ति और मुक्ति दोनों का माध्यम है। अतः ये जो परम्परा है कि सभी शास्त्रों, कलाओं का मूल दर्शन है और दर्शन का मूल वैदिक वांगमय (वेद या उपनिषद) है, संगीत में भी स्पष्टतः परिलक्षित होता है। संगीत का दर्शन से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। संगीत में दार्शनिक तत्व भरे पड़े है। मूलरूप से योगदर्शन से सम्बद्ध होते हुए भी संगीत वांगमय में अन्य दर्शन यथा- सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त के सिद्धान्त अनुस्यूत हैं। इस शोधपत्र में इनका अध्ययनोपरान्त स्पष्ट विवेचन किया गया है। इस शोध पत्र का मूल उद्देश्य भारतीय संगीत में सन्निहित दर्शन के सिद्धान्तों व तत्वों पर प्रकाश डालना तथा इनसे पाठकों को अवगत कराना है।

सांकेतिक शब्द *- वाक्तत्व, प्रणव, नादानुसंधान, सत्कार्यवाद, परिणामवाद-विर्वतवाद*

संगीत ईश्वर के सुन्दरतम सृष्टि की मधुरतम अभिव्यक्ति है। यह स्वतन्त्र रूप से मानवमात्रा के हृदयगत भावों का उद्रेक है तथा स्थावर जंगम सभी के लिए सरसतम ग्राह्य है इसलिए कलाओं में श्रेष्ठ है।

मनुष्य के भावों की अभिव्यक्ति का प्रथम माध्यम स्वर है। इन्हीं भाव और स्वर के व्यवस्थित रूप का सामंजस्य ही संगीत की सृष्टि करता है। भारतीय संगीत प्राचीन काल से ही धर्म तथा अध्यात्म के कोण में पुष्पित पल्लवित हुआ। प्रारम्भिक काल से ही भारतीय संगीत को अध्यात्म से जोड़कर देखा गया, जहाँ अध्यात्म जुड़ता है वहाँ दर्शन स्वतः जुड़ जाता है अतः भारतीय संगीत का आधार पूर्णतः दार्शनिक है। दर्शन एवं संगीत में प्रत्यक्षतः तो कोई सम्बन्ध नहीं दिखता किन्तु परोक्षतः इनका एक-दूसरे से सम्बन्ध नितान्त अद्भुत है। संगीत रंजकता एवं माधुर्य से परिपूर्ण है जबकि दर्शन को गूढ़ गम्भीर, चिन्तनप्रधान एवं नीरस विषय माना गया है इतना विरोधाभास होते हुए भी ये परस्पर

*शोध निर्देशिका प्रोफेसर, महिला महाविद्यालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-221005

** शोधनछार्ता, गायन विभाग संगीत एवं मंचकला संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अनुस्यूत हैं क्योंकि इनका उत्स एक ही है, ये दोनों ही शास्त्र अथवा विद्याएँ वेद से निःसृत है। दर्शन एवं संगीत दोनों की उत्पत्ति का मूल वेद है। वेद को ईश्वर का निःश्वास कहा गया है, ये स्वयं ईश्वर द्वारा निर्मित है। वेद भारतीय ज्ञान तथा संस्कृति के मूलाधार हैं। समस्त भारतीय विद्याओं एवं कलाओं के मूल सिद्धान्त वेदो में प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार भारतीय परम्परा में दर्शन एवं संगीत का उद्गम भी वेदों से माना जाता है। सभी शास्त्रों एवं कलाओं के उत्पत्ति का स्थान एक ही है तथा इनका लक्ष्य भी एक है 'परमपुरूषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति' इस दृष्टि से ये आपस में किसी न किसी प्रकार से सम्बन्धित रहते ही हैं तथा एक शास्त्र का दूसरे शास्त्र पर प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता ही है। भारतीय संगीत एवं दर्शन भी ऐसे ही शास्त्र व कलाएँ है जिनमें परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट परिलक्षित होता है।

हमारे ऋषि-मुनियों ने अपने ग्रन्थों में संगीत को अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति का सहज सरल एवं सरसतम साधन बताया है जो पूर्णतः नादाधीन है। वेद से निकले हुए दर्शनादि जितने भी आगमशास्त्र हैं वे सब भी शब्द अथवा नाद पर ही प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार संगीत का परम प्राप्तव्य अभ्युदय निःश्रेयस अथवा मोक्ष है उसी प्रकार समस्त भारतीय कलाएँ एवं विद्याएँ विशेषतः भारतीय दर्शन आदि का भी अन्तिम लक्ष्य परमपुरूषार्थ अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति है। जब अन्तिम लक्ष्य एक ही है तो बात चाहे स्थूल तत्व की हो अथवा सूक्ष्मतम नादतत्व अथवा रसतत्व की खोज से हो, जीव और ब्रम्ह का शाश्वत सम्बन्ध भारतीय संगीतशास्त्र में होता ही है। भारतीय शास्त्रकारों की चेतना में अध्यात्म परम्परा इतनी घुली हुई है कि किसी भी विषय के निरूपण में कहीं न कहीं किसी रूप में परमतत्व अथवा नादब्रह्म की बात निहित रहती रही है। भारतीय संगीत एवं दर्शन दोनों का प्राप्तव्य एक होने से भारतीय संगीत दर्शन से पूर्णतः प्रभावित है। भारतीय संगीत एवं उसके शास्त्र में मुख्य रूप से वेदान्त मीमांसा, योग, सांख्य, न्याय, तन्त्र आदि दर्शनों का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है। भारतीय षड्दर्शन से संगीत का समन्वय इस प्रकार से देखा जा सकता है।

योगदर्शन एवं संगीत

संगीत की प्रत्येक क्रिया में योग के सिद्धान्त परिलक्षित होते हैं। जिस प्रकार संगीत क्रिया का क्षेत्र तथा आधार 'शारीरि वीणा' अर्थात् नरशरीर है वैसे ही भारतीय हठयोगी ने भी अपने प्रयोग का क्षेत्र नरशरीर को ही चुना है 'नरदेह' समग्र ब्रम्हाण्ड का ही लघु रूप है, 'यत् पिण्डे तत् ब्रम्हाण्डे' सूक्ति इस वाक्य को पुष्ट करती है। नरदेह ही पुरूषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ काम और मोक्ष का साधन है। इसी मानव देह को आधार बनाकर उसमें 'चेतन' की स्थिति कहाँ और कैसे है कि खेाज करते हुए जो अनुभूति की तथा जिन अपूर्व तथ्यों को पाया उन्हें इन योगियों ने सामाजिकों के कल्याणार्थ दे दिया। योगियों के स्वानुभूतियों के आधार पर प्राप्त उपलब्धियों में 'नाद तथा संगीत महत्वपूर्ण है, इस प्रकार भारतीय संगीत बहुत सीमा तक योग दर्शन का परिणाम माना जा सकता है क्योंकि नाद तथा संगीत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव तथा क्रियाओं को इतनी गहराई तथा सूक्ष्मता से समझना उसे अनुभूत करना यह योगक्रिया के माध्यम से ही सम्भव है। पं. शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर में नादोत्पत्ति की विधि, 'नाद' शब्द की व्युत्पत्ति नाद-भेद, नादों के स्थान श्रुति संख्या 22 होने के कारण

स्वर, स्वरों के वर्ण, कुल, देवता, ऋषि, छन्द और रस प्रकरण आदि का जिस प्रकार से निरूपण किया वह योग दर्शन का ही प्रभाव है। यथा-

आत्मा में 'मैं ध्वनि उत्पन्न करूँ, यह इनछा होने पर वह मन को प्रेरित करती है, मन देह में स्थित अग्नि पर आघात करता है जो मारूत (वायु) को प्रेरित करता हे, तब ब्रम्हग्रंथी में स्थित वायु क्रम से ऊपर को उठती है और नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख में ध्वनि का आविर्भाव करती है। यह ध्वनि अथवा नाद पाँच प्रकार का होता है, अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, अपुष्ट, पुष्ट और कृत्रिम जो क्रमशः पाँच स्थानों में स्थित होता है (ये स्थान है अतिसूक्ष्म नाभि में सूक्ष्म हृदय में अपुष्ट तालु में पुष्ट कंठ में और कृत्रिम मुख में) नाद में दो वर्ण हैं- 'न' और 'द'। 'न' प्राणवायु का और 'द' अग्नि का घोतक है। इन दोनों के यानीप्राण और वायु के संयोग से बना होने के कारण इसकी 'नाद' संज्ञा सार्थक होती है। सगीत के व्यवहार को 'मध्य' और मूर्धा में स्थित नाद को 'तार' कहा जाता है, जो क्रमशः दुगुने-दुगुने ऊँचे है। इस नाद के बाईस भेद है, जो सुने जाने के कारण श्रुति कहलाते हैं। हृदय और ऊर्ध्वनाड़ी (सुषुम्णा) से संलग्न बाईस नाड़ियाँ हैं, जो तिरछी है और ऊपर की ओर बढ़ध्ते हुए जिनकी लम्बाई क्रमशः घटती जाती है। उनके भीतर के आकाश में वायु द्वारा आघात होने पर श्रुतियाँ उत्पन्न होती हैं।

इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है। कि भारतीय संगीत-शास्त्र में बाईस ही श्रुतियाँ माने जाने का आधार स्थूल नहीं, अत्यन्त सूक्ष्म है। इन्हें वैज्ञानिक स्थूल उपकरणों की सहायता से तो अब भी सिद्ध करके इन्हें दार्शनिक शैली में प्रतिपादित भी किया था।[1]

योग के आठ अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि ये सभी संगीत साधक पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आरोपित होते हैं। संगीत-साधक अर्थात् नादोपासक भी योगी ही है उसमें योगी की अपेक्षा अतिरिक्त योग्यता है किन्तु मार्ग थोड़ा बदल जाता है, वहाँ की कई सिद्धियाँ यहाँ स्वतः सहजता से हो जाती है। संगीत साधक का प्राप्तव्य वही है जो योगी का है किन्तु प्राप्ति का मार्ग थोड़ा सरस और आनन्दात्मक है। संगीत में लोक से कटकर नहीं अपितु लोक से जुड़कर विषयानन्द के साथ परमतत्व को प्राप्त किया जा सकता है। नाद श्रोतृ का विषय है जो सबसे सूक्ष्म सबसे आनन्दात्मक है अतः यह विषयानन्द है, शुद्ध है। जब हम स्वरानन्द (नादानन्द) अनुभूत करते हैं तो सभी इन्द्रियाँ अपने विषयों से कटकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं अर्थात् बर्हिन्द्रिय व्यापार अन्तर्मुखी हो जाता है। यही शुद्ध विषयानन्द है और ये ऐसा विषय हे जो निर्विषय की ओर ले जाता है। नाद के भौतिक स्वरूप की उपासना करते हुए उसमें आनन्द का सृजन करते-करते हम नादब्रह्म तक चले जाते है।

योगदर्शन तथा संगीत में ही नाद को परमतत्व स्वीकार किया गया है। योग का मूल नादानुसंधान है अपने सुदीर्घ आध्यात्मिक अनुभवों से इन योगियों ने नादतत्व की शक्ति तथा उसके स्वरूप का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया है। किसी भी पदार्थ का पूर्णज्ञान प्रत्यक्षदर्शन से बढ़कर अन्य किसी साधन से नही हो सकता। प्रयोगात्मक होने से योग ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा चक्रभेदन और कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रियाओं के मध्य साधक योगी ने शब्द, ध्वनि, तथा स्फोट के सूक्ष्मभेदक तत्व को आकार-प्रकार वर्ण, रूप-रंग के साथ देखा है

तभी उसे नाद की संज्ञा प्रदान की। इस संदर्भ में योग के आधार पर स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, आज्ञा चक्र, सहस्रार चक्र आदि उनकी स्थिति, बीजमन्त्र, वाहन रंग, देवता, दल, शक्तियाँ इत्यादि का सामान्य वर्णन संगीत के ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में प्राप्त होता है। शरीर के साथ इन सूक्ष्म चक्रो का घनिष्ठ सम्बन्ध है जिस प्रकार दर्शन क्रिया, सूक्ष्म होती है किन्तु उसका आधार (आखें) स्थूल हैं, उसी प्रकार इन सूक्ष्म चक्रों का आधार शरीर में स्थित नाड़ियाँ और ग्रन्थियाँ है। एक योगी, तपस्वी और साधक ही इन चक्रों को देख सकता है व अनुभव कर सकता है।

संगीत और योग दोनों ही नादात्मक विद्या है। दोनों ही विद्याओं का मूल नाद की उपासना तथा नाद का अनुसंधान है। जहाँ संगीत में नाद का प्रभाव लोकरंजन है तो वहीं योग में नाद का प्रभाव भवभंजन है। मोक्षप्राप्ति में नाद सहायक है, इससे उपयुक्त पथप्रदर्शक अन्य कोई नहीं है क्योंकि इनमें रूप और श्रव्यता दोनों ही है (नाद के रूप को देखना योग के माध्यम से ही सम्भव है) योगी तथा संगीत साधक दोनों का ही परम उद्देश्य नाद की स्थूल मात्रा से क्रमशः सूक्ष्म मात्रा में होते हुए अमात्रक स्थिति में पहुँचना है अर्थात् नादब्रह्म में लीन होना है इस प्रकार दोनों विद्याओं का मूल विषय तथा प्रयोजन एक है। सप्रयोजन होने से योगदर्शन तथा भारतीय संगीत आपस मे स्वतः ही जुड़ जाते है अथवा ये कह सकते हैं कि भारतीय संगीत योग से सर्वथा अभिन्न है।

सांख्य दर्शन एवं संगीत

सांख्य दर्शन को सर्वाधिक प्राचीन दर्शन माना जाता है। इस दर्शन को सभी ललित कलाओं के अध्ययन का आधार माना जाता है। 'सांख्य शब्द' संख्या से व्युत्पन्न है, संख्या का अर्थ है सम्यक् ख्यान (ज्ञान) या विवेक ज्ञान। सांख्य सम्यक् ज्ञान का दर्शन है तथा 25 संख्या वाले तत्वों का दर्शन है। सांख्य के अनुसार 24 मूल तत्व होते हैं जिसमें 25 वाँ तत्व पुरूष है जो शुद्ध चौतन्य तथा आत्मतत्व है। 24 मूल तत्वों के पर्यन्त अन्तिम तत्व परमपुरूष चौतन्यस्वरूप तक पहुँचना ही इसका ध्येय है। इन चौबीस तत्वों में पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, अग्नि, वायु आकाश) हैं जिनकी पंचतन्मात्राएँ क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, तथा शब्द हैं इन्द्रियों से तो इनका ज्ञान प्रत्यक्ष होता है किन्तु इनका सूक्ष्म ज्ञान अनुमिति से ही सम्भव है। 'पृथ्वी का सबसे प्रमुख गुण (तन्मात्रा) गन्ध हैं'[2] अर्थात् जहाँ भी गन्ध है वहाँ पृथ्वी तत्व विद्यमान हैं। गन्ध के अतिरिक्त पृथ्वी में रूप, रस एवं स्पर्श गुण भी सम्मिलित है। पंचमहाभूतों में दूसरा तत्व है, जल जिसकी तन्मात्रा है 'रस' तथा इसकी इन्द्रिय है 'रसना। जहाँ भी रस है वहाँ जलतत्व विद्यमान है। जल में इसके अतिरिक्त रूप और स्पर्श गुण भी सम्मिलित है। तीसरा तत्व है अग्नि (तेज) जिसकी तन्मात्रा है रूप और जिसकी इन्द्रिय है चक्षु। चक्षु के द्वारा ही हमें किसी के रूप और आकृति का ज्ञान होता है। अग्नि अथवा प्रकाश के अभाव में यह इन्द्रिय निष्क्रिय है। रूप और आकृति का ज्ञान वहीं सम्भव है जहाँ अग्नि अथवा प्रकाशतत्व विद्यमान हो। अग्नि में स्पर्श का गुण भी है। पंचमहाभूतों में चौथा तत्व है 'वायु' जो गन्धहीन, रसहीन, रूपहीन है इसकी तन्मात्रा 'स्पर्श है, इसकी इन्द्रिय, त्वकेन्द्रिय अर्थात् त्वचा है। वायु को केवल स्पर्श के माध्यम से अनुभूत किया जा सकता है। उसमें ना गन्ध है, ना रस है और ना ही उसे देखा जा सकता है। (पाचवाँ तथा अन्तिम तत्व आकाश है जो अन्य चार

महाभूतों से सूक्ष्म है क्योंकि इसमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श कोई भी गुण नहीं है, इसकी तन्मात्रा है 'शब्द'[3] अर्थात् 'नाद' जो सबसे सूक्ष्मतम तथा अनश्वर है जिसे ब्रम्ह का पर्याय कहा गया है। जैसे प्रत्येक परवर्ती पंचमहाभूत की तन्मात्राएँ अपने पूर्ववर्ती से सूक्ष्म होती जाती है। अर्थात् स्थूल तत्वों से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होते हुए सूक्ष्मतम अर्थात् परम ध्येय, तक पहुँचती हैं उसी प्रकार संगीत में भी नाद के स्थूल रूप 'स्वर' से उसके सूक्ष्म रूप (नाद का रंग, रूप, रस) पर्यन्त उसके सूक्ष्मतम स्वरूप नादबिन्दु अर्थात् परमचौतन्य तक पहुँचा जाता है।

सांख्यदर्शन का एक सिद्धान्त है, 'सत्यकार्यवाद' इस सिद्धान्त के अनुसार कारण में कार्य प्रारम्भ से ही विद्यमान रहता है। जैसे- तिल में तेल का विद्यमान होना अथवा बीज से वृक्ष का होना। अर्थात् वही प्रकट होता है जो पहले से विद्यमान है उसका होना या ना होना निश्चित है इसी को सत्कार्यवाद कहा गया है। संगीत में भी यह सिद्धान्त लागू होता है। जैसे नाद के बिना स्वर सम्भव नहीं है। नाद का वायुमण्डल में सदैव ध्वनित होते रहने का सिद्धान्त इसी तथ्य का प्रतिपादन करता है। नाद का क्रमशः श्रुति, स्वर, ग्राम, मूनर्छना जाति व राग के रूप में हमारे समक्ष साकार होते हुए मन तथा आत्मा में रस का संचार करते हुए आनन्द की पराकाष्ठा तक ले जाते हुए अन्त में नादब्रह्म अर्थात् परमस्वरूप में मिल जाना सांख्यदर्शन के सत्कार्यवाद सिद्धान्त को ही परिलक्षित करता है।

सत्कार्यवाद के कार्य व कारण सिद्धान्त को एक अन्य दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि किसी संगीत साधक के अन्तःकरण में संगीत के संस्कार पहले से ही जन्मजात विद्यमान रहते है तभी वह संगीत कला में निपुण होता है अन्यथा सुयोग्य गुरू से भी शिक्षा प्राप्त करने पर संगीत कला का ज्ञान नहीं हो सकता, यह बात सत्कार्यवाद के सिद्धान्त 'तिल में तेल का होना' अर्थात् कार्य में कारण का पहले से विद्यमान होने को परिपुष्ट करता है।

न्याय दर्शन एवं संगीत

न्याय शास्त्र सभी भारतीय दर्शनों एवं उनचकोटि के भारतीय साहित्यों का प्रवेशद्वार है कोई भी साहित्य चाहे वह व्याकरण, आयुर्वेद, काव्य, अलंकार, या संगीत का शास्त्र ही क्यों ना हो उनका सम्पूर्ण अध्ययन बिना न्यायदर्शन के प्रारम्भिक परिज्ञान के सम्भव नहीं है। न्याय भाष्यकार वात्स्यायन के अनुसार 'प्रमाणैर्थं परीक्षण न्याय': अर्थात् प्रमाणों द्वारा अर्थ (सिद्धान्त अथवा तत्व) का परीक्षण ही न्याय है। न्याय दर्शन को प्रमाणशास्त्र भी कहते हैं क्योंकि प्रमाणशास्त्र यथार्थ ज्ञान को संदर्भित करता है अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही समझना। न्याय दर्शन में 4 प्रकार के प्रमाण हैं जो यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के साधन है अथवा जिनसे किसी घटना या वस्तु की स्पष्ट पहचान व व्याख्या की जा सकती है, ये प्रमाण इस प्रकार है–

प्रत्यक्ष प्रमाण

जो ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से अर्थात् इन्द्रियजन्य हो। जैसे- देखना, स्पर्श, श्रवण, स्वाद, गंध इत्यादि ज्ञान अपने इन्द्रियां से प्रत्यक्ष रूप से होता हैं इसलिए इसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

अनुमान

जो ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से सम्भव ना हो उसे अनुमान द्वारा प्राप्त किया जाए, उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं जैसे कहीं धुआँ दिखाई देने पर अग्नि के प्रत्यक्ष न होने पर भी हम अनुमान से

यह ज्ञान करते हैं कि वहाँ अग्नि भी अवश्य होगी, कि जहाँ धुआँ होता है वहाँ अग्नि अवश्य होती है।

उपमान

जहाँ यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति समान गुण धर्म के आधार पर तुलना के माध्यम से हो उसे उपमान प्रमाण कहते है जैसे- यदि कहा जाए माता सीता के चरण कमल के समान है तो इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि माता सीता के चरण में वही सौन्दर्य व सुकोमलता है जो कमल के पुष्प में है।

शब्द

इन तीनों प्रमाणों के अतिरिक्त जो कुछ भी हमें आप्तपुरूषों के वचनों के रूप में लिखित अवस्था में अर्थात् शब्द रूप में प्राप्त होता है, सभी को शब्द प्रमाण कहते है। जितने भी वेद, आगम ग्रन्थ यथा-दर्शन पुराणादि हैं सभी शब्द प्रमाण है। इसे आप्त प्रमाण भी कहते हैं। क्योंकि यह प्रमाण (ज्ञान) आप्त पुरूषों अर्थात् ऋर्षियों द्वारा स्वयं अनुभूत किया गया स्वप्रमाणित एवं सिद्ध होता है।

इस प्रकार से न्यायशास्त्र में इन प्रमाणों द्वारा तर्क के माध्यम से सही एवं स्पष्ट ज्ञान प्राप्त किया जाता है। न्यायदर्शन की सहायता से किसी प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि अथवा किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रमाणों एवं तर्क के द्वारा सही, स्पष्ट एवं सटीक रूप में किया जाता है।

सभी भारतीय प्रानय-विद्याओं के सिद्धान्त प्रतिपादन में न्यायशास्त्र का समावेश दृष्टिगत होता है। भारतीय संगीत शास्त्र के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, समवाय, अभाव आदि प्रमाणों का प्रयोग स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। संगीतशास्त्र ग्रन्थ वृहद्देशी के श्लोक संख्या 31 से 45 तक में स्वर श्रुति के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए उनमें तादात्म्य, विवर्तव्य, कार्य-कारण, परिणामिता, अभिव्यक्ति आदि सम्बन्धों का खण्डन-मण्डन निरूपण, न्याय-दर्शन के जाति-व्यक्ति, मुख दर्पण, मृत्पिंड-घट, दूध-दही, प्रदीप-घट आदि दृष्टान्तों तथा भ्रान्तिमान आदि अन्य विशिष्ट शब्दों का प्रयोग भली प्रकार से किया गया है।

वैशेषिक दर्शन एवं संगीत

न्याय दर्शन एक प्रकार से वैशेषिक सिद्धान्त की ही विस्तृत व्याख्या है यह कहा जा सकता है कि पूर्वांग वैशेषिक है तो उत्तरांग न्याय। वैशेषिक और न्याय दर्शन कार्य-कारण सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं जिसके अनुसार किसी भी कार्य का कारण अवश्य होता है जो कार्य के पूर्व में होता है। घड़े (कार्य) का कारण मिट्टी है तथा दही (कार्य) का कारण दूध है। संगीत में भी यह सिद्धान्त अनुभव किया जा सकता है जैसे-संगीत का कारण नादतत्व है। नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर, स्वर से सप्तक, सप्तक, से थाट, थाट से राग व राग से संगीत रूपी कार्यों की सृष्टि होती है इस प्रकार न्याय के कार्य-कारण सिद्धान्त के अनुसार ही संगीत का समस्त व्यवहार चलता है।

मीमांसादर्शन एवं संगीत

पूर्व मीमांसा में यज्ञ, अनुष्ठानों तथा कर्मकाण्डों का विवेचन है इसमें वेद विहित कर्मों से धर्म का निरूपण है, जिसके माध्यम से परमपद की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। संगीत के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ वृहद्देशी में मूछना तानों के नाम यज्ञों के नाम पर रखे गए हैं तथा इन यज्ञनामों वाली मूनर्छनाओं से वही-वही फल प्राप्त हो

सकते है जो फल तत् तत् यज्ञों के करने से प्राप्त होगें।

मीमांसा का प्रथम सूत्र है अर्थातो धर्म जिज्ञासा' (अर्थात् अब हम धर्म की जिज्ञासा करते हैं)। संगीत के माध्यम से हम ईश्वर के गुणों का गान करके धर्म को उपार्जित करते हैं। सामगान से लेकर सन्तकावियों के भक्तिमय पदों को गाते-गाते साधक ईश्वर भक्ति में लीन हो जाता है अर्थात् जो लाभ मीमांसा से प्राप्त होता है वही लाभ संगीत से भी प्राप्त होता है।

वेदान्त दर्शन एवं संगीत

वेदान्त दर्शन सभी वेदों का सार अथवा निष्कर्ष है चूंकि निष्कर्ष सदैव अन्त में होता है इसलिए इसे 'वेदों का अन्त' अर्थात् वेदान्त कहा गया । वेदान्त दर्शन ज्ञान तत्व पर आधारित भारतीय दर्शन की अमूल्य परम्परा है।

भारतीय संगीत में वेदान्त के तत्व मूल रूप से आते है। संगीत शास्त्र ग्रन्थों में वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त स्पष्ट रूप से दिखाई देते है यथा- पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय 'स्वरगताध्याय' के 'पिण्डोत्पत्ति प्रकरण' में जब शारंगदेव कहते है कि 'अस्ति ब्रम्ह' तब उनके इस कथन में वेदान्त का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस पूरे 'पिण्डोत्पत्ति प्रकरण में पिण्ड का निरूपण वेदान्त दर्शन के अनुसार बताया गया है। वेदान्त दर्शन के अनुसार ही ब्रह्म के स्वरूप का और ब्रह्म के मनुष्य शरीर में संक्रमण करने के क्रम का निरूपिण किया गया है। 'ब्रह्म' का अंश ही 'जीव' है अर्थात् जीव और ब्रह्म में अंश-अंशीभाव हैं। जीव आत्मा से भिन्न नही है तथा 'आत्मा जगत से भिन्न नहीं है जैसे- सोने से बने आभूषण अन्ततः सोना ही होते हैं सोने से भिन्न नहीं। इस प्रकरण में शारंगदेव ने वेदान्त के दो मतों परिणामवाद और विवर्तवाद का भेद दिखाते हुए आत्मा और जगत् का ऐक्य सिद्ध किया है आत्मा और जगत् में अवास्तविक परिणाम को विवर्त तथा वास्तविक परिणाम को परिणाम कहा गया है। विर्वतवाद को बताते हुए रज्जु और सर्प का बहुत सुन्दर दृष्टान्त दिया है। एक दृष्टि में देखा जाए तो संगीत-रत्नाकर इस पूरे पिण्डोव्यक्ति प्रकरण के श्लोक संख्या 4 से 12 तक में वेदान्त के परमात्मा, जीव और जगत् के सम्बन्ध को सार-रूप में प्रस्तुत किया गया है।[4]

इन सभी तथ्यों से यह भली भाँति ज्ञात हो जाता है कि भारतीय संगीत सभी दर्शनशास्त्रों से न्यूनाधिक अभिन्न रूप से जुड़ा है। दर्शन के धरातल पर ही भारतीय संगीतशास्त्र के सभी सिद्धान्त प्रतिष्ठित हैं। दोनों के ही उद्गम वेद हैं तथा दोनों का ध्येय भी 'परमपुरूषार्थ' की प्राप्ति है केवल प्राप्ति का मार्ग थोड़ा भिन्न है इस प्रकार 'साधन' अपेक्षाकृत पृथक होते हुए भी 'साध्य' एक होने से दोनों शास्त्र परस्पर अर्न्तसम्बन्धित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शारंगदेवकृत संगीत रत्नाकर प्रथम स्वरगताध्याय, तृतीय प्रकरण, श्लोक सं. 3-9 उद्धृत- श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग, निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय हाथ रस उ.प्र., द्वितीय सं. 1989, पृ. सं. 321
2. गुप्त, डॉ. शिवशंकर, तर्कसंग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, द्वितीय संस्करण 2012।
3. वही
4. अस्ति ब्रह्म चिदानन्द, रज्जुर्भुजंगमम्। शारंगदेवकृत संगीत रत्नाकर, पिण्डोत्पत्ति प्रकरण श्लोक सं. 4-12, सरस्वती व्याख्या सहित, अनुवादकर्ती-डॉ. सुभद्रा चौधरी, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000

संगीत में राग यमन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

आकाश कुमार, डॉ. विशाल जैन

सार संक्षेप

भारतीय संगीत का आधार मूल तत्व राग होता है। संगीत के अन्तर्गत आने वाली हर विधा (शैली) चाहे शास्त्रीय संगीत हो, उपशास्त्रीय संगीत हो या चाहे सुगम संगीत हो सभी में राग किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। राग के स्वरों में वह शान्ति होती है जो उसके शुद्ध रूप से मुखरित (ध्वनि) उत्पन्न होने पर मनुष्य पर आशातीत प्रभाव डालती है। 'राग' में गायक अथवा वादक का प्रभाव श्रोतागण के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। इसी प्रकार संगीत में राग यमन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव जानने हेतु इस विषय पर चिन्तन या कल्पना करने से पूर्व मनोविज्ञान के बारे में भी जानना जरूरी है। मनोविज्ञान का अर्थ-मन का विज्ञान अर्थात् मन के अन्दर जो भी प्रेरणा होती है उसे मन कहा जाता है और जब संगीत में मनोविज्ञान को सहायक या समकक्ष मानकर अध्ययन करते हैं तो संगीत को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझते हैं उसी प्रकार यमन राग का मनोवैज्ञानिक प्रभाव उसके स्वर, स्वर संगीत, लय एवं ताल से सजी भावविभोर कर देने वाली कला व्यक्ति के सुन्दर कल्पनाओं पर आधारित है।

मुख्य प्रपत्र में राग यमन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किये जायगें है।

मुख्य शब्द *- मन, भाव, लय, राग यमन, स्वर संगीत, माधुर्य*

हिन्दुस्तानी संगीत का आधर मूल तत्व राग होता है। संगीत के अन्तर्गत आने वाली हर विधाा चाहे शास्त्रीय संगीत हो, उपशास्त्रीय संगीत हो या चाहे सुगम संगीत हो सभी में राग किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। राग के स्वरों में वह शान्ति होती है जो उसके शुद्ध रूप से मुखरित (ध्वनि) उत्पन्न होने पर मनुष्य पर आशातीत प्रभाव डालती है। इसी प्रकार संगीत में राग यमन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव जानने हेतु इस विषय पर चिन्तन या कल्पना करने से पूर्व मनोविज्ञान के बारे में भी जानना जरूरी है। मनोविज्ञान का अर्थ हातो है मन का विज्ञान अर्थात् मन के अन्दर जो भी विचार या प्रेरणा होती है उसे मन कहा जाता है और जब संगीत में मनोविज्ञान को सहयोगी या समकक्ष मानकर अध्ययन करते हैं तो संगीत को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझते हैं उसी प्रकार यमन राग का मनोवैज्ञानिक प्रभाव उसके स्वर संगीत, लय एवं ताल से सजी भावविभोर कर देने वाली कला व्यक्ति या मनुष्य के सुन्दर कल्पनाओं पर आधारित है।

मनोविज्ञान की परिभाषा- मनोविज्ञान शब्द यूनानी भाषा के Psyche और Logs के सहयोग से मिलकर बना है, Psyche का अर्थ आत्मा से है और Logs का सम्बन्ध ज्ञान से है। अतः Psychology मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ-आत्मा

* इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज प्रयागराज उ.प्र.

** संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज

का ज्ञान या विज्ञान से है और अन्य विद्वानों ने मनोविज्ञान को अलग-अलग परिभाषित किया। बोरिग लागफील्ड एवं वेल्ड (1943) ने मनोविज्ञान की उपयुक्त परिभाषा दी है कि मनोविज्ञान अनुक्रिया में दिखाई पड़ने वाले व्यवहार और अनुभव में पाई जाने वाली चतना से सम्बन्धित है। मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें मन की चेतना और अचेतना क्रियाओं को देखकर दृष्टिकोण अनुभूति द्वारा मनुष्य की बाह्य क्रियाओं का अध्ययन करता है। संगीत मानव के मन में स्थित विभिन्न मनोभावों की अभिव्यक्ति करता है। अतः संगीत एक मानव व्यवहार है। जिसका उद्देश्य केवल मानव के व्यवहार को स्वर और ताल के माध्यम से अभिव्यक्त करना है और इस क्रिया से व्यक्ति तनाव मुक्त होकर सन्तुलित व्यवहार की ओर प्रेरित हातो है।

इसी प्रकार भारतीय संगीतकारों ने भी संगीत के द्वारा मनोविज्ञानिक प्रभाव की खोज की है। शास्त्रीय गायक पं. ओमकार नाथ ठाकुर जी ने अपने शिष्यों के साथ एक अनोखा प्रयोग किया था उन्होंने एक ही तरह के दो पौधे को लिया और दोनों पौधे को अलग-अलग स्थान पर स्थापित किया और जिसमें से एक पौधे को रोज संगीत सुनाते रहे 10 से 20 दिन के बाद उन्होंने एक आश्चर्यजनक प्रभाव देखा कि जिस पौधे को रोज संगीत सुनाते थे वह दूसरे पौधे की अपेक्षा तेजी से बढ़ रहा था। इसी प्रकार और भी कई सारे प्रयोगों को सिद्ध किया जा चुका है। विद्वानों के द्वारा किया गया प्रयोग से गाय या भैंस को दुहते समय संगीत सुनाया जाये तो वो और अधिक मात्रा में दूध देती है। इसलिए कहने का तात्पर्य है कि संगीत का प्रभाव न केवल मनुष्य पर पड़ता है बल्कि जीव-जन्तुओं पर भी पड़ता है, वैष्णव सम्प्रदाय को भागवत धर्म भी कहा गया है। रागों के प्रकृति के अनुसार रागों के रस एवं मनोअभिव्यक्ति का निर्धारण इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत दखे मिलता है। जिसमें रागों को निम्न क्रम में इंगित किया गया है -

ठन्डे राग का प्रभाव - राग ललित, राग बिहागड़ा, राग मालकौंस आदि ठन्डे रागों का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार गरम रागों का प्रभाव राग में रागांगों के प्रमुख रागांग राग दरबारी कान्हड़ा आदि का मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभाव मिलता है।

शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत राग रागिनी वर्गीकरण का उल्लखे लिखित ग्रन्थ संगीत मकरन्द में निम्न प्रकार से वर्णन मिलता है—

जिसमें पुरूष राग की संख्या	-	20
स्त्री राग की संख्या	-	24
नपुंसक राग की संख्या	-	13

भारतीय राग दारी संगीत के अन्तर्गत राग के रस एवं रंग का वर्णन मिलता है जिसका सीधा प्रभाव मनोवैज्ञानिक रूप से देखने को मिलता है। जैसे - भैरव राग में गम्भीर एवं भक्ति रस की निष्पत्ति होती है। जबकि इसके विपरीत राग आड़ना में चंचल प्रकृति की छाया दिखती है। इसी क्रम में रस की अभिव्यक्ति मिलती है जो कि निम्न है -

स्वर		रस
षड़ज	-	वीर, अद्भुत, रौद्र
ऋषभ	-	वीर, अद्भुत, रौद्र
गन्धार	-	करूण
मध्यम	-	श्रृंगार, हास्य
पंचम	-	श्रृंगार, हास्य
धैवत	-	वीभत्स, भयानक
निषाद	-	करूण

इसी प्रकार राग यमन के मनोवैज्ञानिक प्रभाव के बारे में चर्चा करते हैं तो सबसे पहले हमारे भारतीय संगीत पद्धति के रागों का इतिहास

क्रम से आधुनिक युग तक आते-आते यह इतिहास पं. भातखण्डे जी के समय तक सीमित होगा क्योंकि परमपूज्य पं. भातखण्डे जी का वर्ष 1860 से वर्ष 1936 ई. का माना जाता है और इस दौरान रागों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन स्वयं भातखण्डे जी का योगदान माना जाता है। इसका विवरण इनकी पुस्तक श्री मल्ललक्ष्य संगीतम् तथा अभिनव राग मंजरी में किया है। रागों के वर्गीकरण में दस थाटों का उल्लेख किया है। थाट के नाम इस प्रकार हैं—बिलावल, खमाज, काफी, आसावरी, मारवा, पूर्वी तोड़ी, भैरवी, भैरव तथा कल्याण है। अब कल्याण थाट या कल्याण अंग बोलते ही हमारे मन मस्तिष्क में जो राग सर्वप्रथम उत्पन्न हातो है वह कोई राग नहीं बल्कि राग कल्याण अथवा यमन ही है। कल्याण अथवा यमन राग अत्यन्त लोकप्रिय राग है और यह राग श्रोताओं के हृदय में शीघ्र ही अपना स्थान स्थापित कर लेता है और इस राग को प्रारम्भिक राग भी मानते हैं। इस राग में जिस प्रकार की स्वर या स्वर संगीत की निर्मिती लय एवं ताल से सजी भावविभोर कर देने वाली कला व्यक्ति के सुन्दर कल्पनाओं पर आधारित है। संगीत में राग यमन को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखना चाहते हैं तो इसके कुछ महत्वपूर्ण पक्षों को समझना आवश्यक है। मानवीय व्यवहार के पहलुओं को तीन वर्गों में बाँट सकते हैं। (1) ज्ञानात्मक, (2) क्रियात्मक, (3) भावात्मक। ये तीनों वर्ग आपस में एक प्रकार से बन्धे हुए होते हैं और जब ये व्यवहार में आते हैं तो ये कहना अनुचित न होगा क्योंकि व्यवहार ही इन तीनों पहलुओं का सम्मिश्रण है।

ज्ञानात्मक पहलू में यमन राग की पूर्ण जानकारी होना। राग यमन के कुछ महत्वपूर्ण स्वर संगीतयाँ होती हैं क्योंकि यह राग सम्पूर्ण-सम्पूर्ण जाति का राग है। इस राग में अभ्यास कर विस्तार करने की पूर्ण स्वनछंदता होती है और जब इस राग को मनुष्य या व्यक्ति आत्मसाध्य कर लेता है तो वह अपने भाव के द्वारा राग को व्यक्त करता है, अर्थात् कहने का तात्पर्य है प्रत्यके मनुष्य के मन अपने कुछ न कुछ भाव अवश्य होते हैं और उस भाव को व्यक्त करने में मनुष्य क्रियात्मक कला का सहारा लेता है और यह क्रियात्मक कला तब ही सफल हो पायेगी जब मनुष्य अपने भावात्मक पहलू को अनछे तरीके से व्यक्त करने में हो पायेगा, इसलिए ये पहलू एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

जब गायक या वादक कलाकार राग यमन की सुन्दर रागाभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। जिसमें राग की स्वर संगीतयों का प्रयोग अपने भाव के द्वारा व्यक्त करता है तो प्रक्रिया में राग का प्रभाव असीम है राग में कभी स्वरों से तो कभी लयों से और कभी गम्भीरता से तो कभी चंचलता से अपना मनावैज्ञानिक प्रभाव श्रोता पर डालता है। क्योंकि जब कोई कलाकार राग का आवाह्न करता है तो राग का आधार स्वर षडज को स्पष्ट व स्थिरता से प्रयोग करने की क्रिया में आँखें बन्द सी हो जाती हैं और इधर-उधर के दृश्य निष्क्रिय हो जाते हैं और एकाग्रता अर्न्तनिहित हो जाती है। परन्तु यमन राग एक ऐसा राग है जिसकी शुरूवात निषाद स्वर से होती है। जैसे-नि, रे, ग स्वर संगीत का प्रयोग होते ही एक स्थूल भाव करूण रस निर्माण होता है इसी प्रकार कल्याण अथवा यमन राग रागवाचक स्वर समुदाय और स्वर संगीतियों से विद्वान कलाकार अपनी कल्पना शक्ति व विचारों से अलग-अलग भाव के रंगों को दिखाते हैं और फिर आलाप स्वर संगीत की गीत लय में परिवर्तित हो जाती है। लय की बात करें तो क्रियाओं के मध्य विश्रांति लय कहलाती है। पं.

शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर के तालाध्याय में लय की व्याख्या की है।

"क्रियान्तर विश्रांतिर्लयः"

अर्थात् क्रियाओं के मध्य की विश्रांति लय है परन्तु क्रियाओं की समान विश्रांति ही लय कहलाती है जो सौन्दर्य के मौलिक तत्वों में से एक है। लय कई प्रकार की होती है परन्तु व्यवहारिकता में सौन्दर्य भाव की रंजकता सहजता आदि की दृष्टि से भारतीय संगीत में तीन प्रकार की लय मानी जाती है (1) विलम्बित, (2) मध्य, (3) द्रुत। इन लयों में अलग-अलग प्रभाव प्रभावित होते हैं यदि रागयमन के स्वरों को विलम्बित प्रयोग करते हैं तो इसमें गम्भीर प्रकृति स्थापित होगी और यदि इसी राग के स्वर को द्रुत लय में प्रयोग गाने में करते हैं तो चंचलता का भाव उत्पन्न होगा। अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि राग की प्रकृति एव लय के अनुसार राग का भाव एवं रस स्थापित होता है जो मनोवज्ञानिक प्रभाव का अनुभव करता है जब राग बन्दिश को सुनने वाले पर प्रस्तुत करने वाले का प्रभाव पड़ता है तो दोनों लीन हो जाते हैं तो उनके साथ कुछ शारीरिक क्रिया होना शुरू हो जाती है। जैसे सुनकर ताल देना, हाथ का चलना, स्वयं थिरकना आदि कलाकार अपनी कला में जितना रस स्वयं लेता है, उतना ही रस व श्राते देना चाहता है।

बन्दिशों के आधार पर यमन राग की मनाअे भिव्यक्ति-

यमन राग ख्याल गायन में रागों की प्रस्तुतीकरण का एक प्रमुख एवं प्रभावशाली माध्यम बन्दिशें होती हैं। बन्दिशो में स्वर संगीत, पद और ताल से सजी हुई एक सुन्दर रचना होती है, जिसमें शब्द और स्वर दोनों प्रभावित करते हुए राग में निहित रस एवं भाव को श्रोताओं के समक्ष प्रतिपादित करती है। जब गायक और श्रोता के बीच में भावात्मक सामंजस्य स्थापित हातो है, तो असीम एवं परितोष आनन्द की स्थिति उत्पन्न होती है जिसे रसावस्था कहते हैं। इस प्रकार राग यमन की बन्दिश में रस एवं भाव की चर्चा-

(1) **स्थाई-** सदा शिव भज मना निसदिन रिधि सिधि दायक विनत सहायक
नाहक भटक फिरत अनवरत।

अन्तरा- शंकर भोला पार्वती रमण सित तन पंनग भूषन अनुपम काहे न सुमिरत भटकत तू फिरत।।

भावार्थ- इस बन्दिश में मुख्यतः भगवान की भक्ति सदा शिव भज मना...आराधना का सौन्दर्य रूप वर्णन है जिसमें भक्ति रस की निष्पत्ति हो रही है।

(2) स्थाई- सखी ऐरी आली पिया बिन कलना परत मोहे घड़ी पलछिन दिन।

अन्तरा- जब से प्रिया परदेस गवन की नो
रतिया कटत मोहे तारे दिन गिन।।

भावार्थ- इस बन्दिश में सखी जब पिया से दूर रहती है और उसके आने की प्रतीक्षा में एक-एक पल व तारे गिन कर बिताती है तो सखी और पिया के बीच वियोग रस का भाव उत्पन्न होता है। जोकि उसकी मनोअभिव्यक्ति सार्थकता पूर्ण प्रदर्शित होती है। अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि राग एक ही एक परन्तु उस राग में अलग-अलग मनोभाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है। अतः राग में जो भी स्वर एवं स्वर संगीत, लय एवं ताल से रची हुई रचना श्रोताओं

को भाव-विभारे करती है। यह सुन्दर कला व्यक्ति के विचार एवं कल्पनाओं पर आधारित होती है।

निष्कर्ष

मनोविज्ञान और संगीत में रागों का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से हम देखते हैं तो पता चलता है कि मनोविज्ञान राग संगीत से सम्बन्धित नहीं है बल्कि संगीत में राग का मनोवैज्ञानिक से सम्बन्ध है। संगीत में राग का उद्‌गम स्थल ही मन है। संगीत में राग की मनोस्थिति से कलाकार एवं श्रोता दोनों पर शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

(1) संगीत एवं मनोविज्ञान - डा. किरन तिवारी
(2) भारतीय संगीत का आध्यात्मिक - डा. राजीव वर्मा, स्वरूप डा. नीलम पारीक
(3) संगीत एवं रस - प्रो. स्वतंत्र शर्मा
(4) संगीत चिकित्सा - प्रो. संगीता पण्डित
(5) संगीत रत्नाकर - पं. शारंगदेव
(6) क्रमिक पुस्तक मलिका- भाग-1, पं. वी.एन. भातखण्डे
(7) मधुर स्वरलिपि संग्रह, भाग-1, हरिश चन्द्र श्रीवास्तव

भारतीय संगीत में कण्ठ संस्कारः एक परिचयात्मक विवरण

अंकुर श्रीवास्तव, डॉ. विशाल जैन

सार संक्षेप

साधना शब्द सामने आते ही स्थूलरूप में यह विचार आता है कि किसी क्रिया के सुपरिणाम को बार-बार अभ्यास द्वारा सिद्ध किया जाये कि उस विषय पर दक्षता प्राप्त की जा सकती है।

कण्ठ संस्कार में संस्कार शब्द के कई अर्थ प्रयोग में लिये जाते हैं-संस्करणं सम्यक्करणं वा संस्कारः (मीमांसा दर्शन) अर्थात् परिष्कार करना अथवा भली प्रकार निर्माण करना ही संस्कार है। संगीत में कण्ठ संस्कार के विषय में देखें तो भारतीय शास्त्रीय संगीत के बेहतर प्रस्तुतिकरण हेतु विद्यार्थी का कण्ठ संस्कार होना अत्यधिक आवश्यक है। इस शोध प्रपत्र में कण्ठ संस्कार के विषय में की गयी है।

प्रमुख शब्द- *साधना, कण्ठ संस्कार, अभ्यास, वर्ण व उनचारण।*

भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति के विषय में दो विचारधारायें देखी जाती हैं- जिनमें प्रथम है भारतीय दार्शनिक विचारधारा व द्वितीय है आधुनिक विज्ञान संबंधी विचारधारा।

प्रथम विचारधारानुसार सृष्टि के रचना परमेश्वर द्वारा हुयी एवं द्वितीयक के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति जड़ प्रकृति के संयोग से हुयी।

प्राचीन ग्रंथो एवं वैदिक साहित्य के अनुरूप कहा जाता है कि संगीत की उत्पत्ति ओंकार से हुयी। ऐसा कहा जाता है कि संसार में जब कुछ नहीं था अर्थात् आकाश आदि पंचभूतों का अस्तित्व नहीं था तब भी ओंकार (प्रणव) की विद्यमानता थी। ओंकार की ध्वनि ही ईश्वर की स्वरमयी आदि वाणी है जो कि शब्द व स्वर दोनों ही है।

द्वितीय विचारधारा के अनुसार कहा जाता है कि मनुष्य अविकसित बुद्धि का प्राणी था, जो आपस में संवाद करने के लिये विभिन्न प्रकार के संकेतों व ध्वनियों का प्रयोग करता था। यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि पशु-पक्षियों की बोलियाँ, बादलों की गर्जना व झरनों की ध्वनियों से प्रेरणा ग्रहण कर मनुष्य अपने मुंह से विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकालने लगा होगा। इससे यह भी देखा जा सकता है कि मनुष्य अपने कण्ठ को एक विकसित रूप देने में सफल हुआ। भारतीय विचारधारा के अनुरूप यह कहा जाता है कि सृष्टि के चेतन जगत में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अन्य जीवों की अपेक्षा निजी भावाभिव्यक्ति को प्रकट करने हेतु तीन अत्यन्त प्रभावशाली शक्तियों

*एम.ए. (यू.जी.सी. नेट), संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज,
email : ankurdevsrivastava@gmail.com

**असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

को जन्म से पाता है-

1. वाक्
2. प्राण
3. मन

वाक् अर्थात् आवाज निकालने की विधि। इसमें वाणी की नादात्मक शक्ति व वर्णात्मक शक्ति (A lphabet pronouncement) दोनों का समावेश है।

प्राण मनुष्य के भीतर की क्रिया शक्ति है, जो कि मूल है। मन का स्थान अंतर इन्द्रिय माना जाता है कभी-कभी कुछ ऐसी भी क्रियाऐं हाते सीधे मन से प्रभावित होते हैं।

वैदिक समय में 16 संस्कारों का विधि पूर्वक निभाने का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। वैदिक साहित्य में गुरूकुल व ऋषिकुल पद्धति सुचारू रूप से चलने के संकेत पर्याप्त रूप से उपलब्ध हैं परन्तु कण्ठ संस्कार जैसी योग्यता के विषय का सीधा-सीधा वर्णन नहीं मिलता। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि उस प्रकार के कण्ठ संस्कार के दर्शन विद्या ग्रहण की अवधि में किये जा सकते थे। वैदिक गान तीन स्वरों तक सीमित था। एक स्वर में गान आर्चिक, दो स्वर में गान गाथिक व तीन स्वर में गान सामिक। आर्चिक का प्रयोग ऋचाओं के उनचारण में, गाथिक का प्रयोग गाथा गान में व सामिक का प्रयोग सामगान में प्रयोग होता था। स्वरों की संज्ञा को उदात्त, अनुदात्त व स्वरित से संबोधित किया गया। उदात्त का अर्थ ऊँचा, अनुदात्त का अर्थ नीचा व स्वरित का अर्थ उस स्वर से था जिससे उदात्त व अनुदात्त का मेल हो। वैज्ञानिक भाषा में कहें तो उदात्त अर्थात् ऊँचा तारता पूर्ण आवाज, अनुदात्त अर्थात् उतरी हुयी तारता वाली आवाज व स्वरित का अर्थ यथाक्रम तारता पूर्ण (Normal Pitch Voice)

उदात्त, अनुदात्त व स्वरित जैसी क्रियाओं द्वारा कण्ठ का संस्कार स्वतः ही हो जाया करता था क्योंकि यह विधि सामगान की आर्चिक संहिता से संबंध रखती थी, जहाँ उनचारण इन तीन स्वरों तक सीमित था।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन वादन नृत्य तीनों का समावेश है परन्तु तीनों ही विधाओं को एक प्रमुख अवश्य सूत्र में जकड़ रखा है, जो कि सूत्र है 'स्वर'। संगीत के सभी तत्वों में स्वर को ही प्रधानता दी गयी है। स्वर के उद्गम स्थान शास्त्रकारों ने दो ही माने हैं प्रथम है- मानव कण्ठ व दूसरा है वीण या बांसुरी। शास्त्रीय गायन हेतु कण्ठ को उपयुक्त स्तर तक साधने की आवश्यकता पड़ती है। शास्त्रकारों ने कण्ठ को शारीरिक वीणा तथा वाद्य को दारवी वीणा कहा है। संगीत की तीनों विधाओं में प्रधानता के क्रम में देखे तो प्रथम है गायन, द्वितीय है वादन व तृतीय है नृत्य अर्थात् शास्त्रीय संगीत में गायन का स्थान सर्वोपरि है। प्रत्येक व्यक्ति के पास कण्ठ है और कण्ठ को शास्त्रीय गायन हेतु तैयार करने के लिए उपयुक्त साधना की आवश्यकता पड़ती है। जिस क्रिया का नाम कण्ठ साधना या कण्ठ संस्कार रखा गया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इस क्रिया पर प्रकाश नहीं डाला जाता जबकि यह संस्कार सिर्फ गुरू शिष्य परम्परा द्वारा ही फलीभूत हो सकती है। कण्ठ साधना कहें या कण्ठ संसकार या पाश्चात्य में इसी को वॉयसकल्चर कहें तीनों ही एक दूसरे के पर्याय हैं। कण्ठ साधना एक प्रकार की तपस्या है जिसके बल पर गायक आत्म विश्वास अर्जित करता है।

गायक के कण्ठ संस्कार के फलीभूत होने से गायक न्यूनतम परिश्रम से ही ध्यान एकाग्र करते हुये राग के समूह को इच्छानुसार प्रस्तुत कर सकता है। संगीत एक प्रदर्शनकला

(Performing Art) है। गायक को अच्छे प्रस्तुतिकरण हते साधना की अनवरत् आवश्यकता पड़ती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के मध्ययुग की बात करें तो गायक व उस्ताद शिष्य को सर्वप्रथम ओम का उनचारण व सालों-साल गले की तैयारी पर बल देते थे। खरज साधना से स्वरों में चमक व ओज विद्यमान होता है। आज के वर्तमान युग में भी गिने चुने कलाकार ही हैं जिन्होंने वास्तव में कण्ठ साधना जैसे गूढ़ विषय पर बल दिया है। जिस प्रकार से कण्ठ साधना शब्द 'साधना' की ओर संकेत करता है, उसी विचारधारा के अनुसार कण्ठ संस्कार शब्द संस्कार को इंगित करता है। कण्ठ संस्कार की अंतरआत्मा सम्पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति से बंधी हुयी है। हमारे वैदिक युग के साहित्य में संस्कार शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता रहा है। मीमांशा दर्शन में कहा गया है कि-संस्करणं सम्यकरणं वा संस्कारः अर्थात् परिष्कृत करना या निर्माण करना ही संस्कार है।

वास्तव में देखा जाये तो संस्कार वह रीति है जो योग्यता प्रदान करती है तथा संस्कार द्वारा शास्त्रेक्त कल्पित गुणों के समीप पहुँचा जा सकता है तथा रीति से युक्त होने पर योग्यता का विकास किया जा सकता है। इस विधि द्वारा संस्कारित कण्ठ से यदि साधना की जाये तो निश्चय ही कम परिश्रम के यागे दान पर भी आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त होते है। संगीत गायन के प्रदर्शन हेतु वाणी का मधुर होना, सही प्रकार के नाद को व्यवहार में लाना व वर्णों का साफ उनचारण होना अत्यन्त आवश्यक है।

भातखण्डे जी द्वारा कण्ठ सस्कार के प्रमुख उपदशे :-

हिन्दुस्तानी क्रमिक पुस्तक मालिका के छठे भाग के अनुसार-95 प्रतिशत लोगों की आवाज गायन हेतु सुरीली बनायी जा सकती है, साधारण आवाज भी अभ्यास द्वारा सुरीली बनायी जा सकती है। भातखण्डे जी के अनुसार आवाज को सुरीला बनाने हेतु निम्न तीन बातों की आवश्यकता होती है :-

1. आवाज ठीक प्रकार से निकलना
2. आवाज की स्थिरता
3. श्वास का नियंत्रण या श्वांस पर अधिकार।

भातखण्डे जी के अनुसार कण्ठ संस्कार हेतु आवाज को खुले आकार की गायकी में प्रतिपादित किया जाना चाहिये।जब ओम का रियाज बेहतर तरह से हो जाये तब इकार, उकार, ओंकार की आवाज में स्वरों का अभ्यास करना चाहिये। भातखण्डे जी कहते हैं कि कण्ठ संस्कार पल्लवित होने से आवाज में स्थिरता, श्वास पर नियंत्रण व स्वरों पर ठीक रूप से अधिकार होने लगता है जिससे गायक अपनी इनछानुसार राग को प्रदर्शित करने में सक्षम होता है।

तानसेन द्वारा कण्ठ संस्कार की युक्ति के उपदेश

ध्रुपद गायक तानसेन के समय में कण्ठ संस्कार जैसे विषय के बारे में उल्लेख नहीं मिलता जबकि इस विषय को सुद्धबानी कहकर संबोधित किया गया है। कलाकार के गुण-दोषों हेतु सुद्धमुद्रा कहकर संबोधन दिया गया है। तानसेन

द्वारा रचित ध्रुपद की रचनाओं में कहीं-कहीं कण्ठ संस्कार के संकेत मिलते हैं जो कि निम्नवत् है:-

संगत समुद्र सौ भेद उक्ति युक्ति साधै पानी।

प्रथम अकार भूमि साधै, सप्त सुर तीन ग्राम, रे ग म प ध नी कण्ठ वर्ण बनाये 'तानसेनी'।

यह उदाहरण हमें कण्ठ संस्कार का नाम तो नहीं ले रहा परन्तु उसके समीप ले जा रहा है।

कण्ठ संस्कार विधि में वर्णों के उनचारण का स्थान-

कण्ठ संगीत में शब्द व नादात्मक ध्वनि की ही अहम भूमिका रहती है। आवाज ही नाद का रूप धारण कर लेता है और वही नाद, स्वर या सांगीतिक स्वर कहलाता है। वर्णों का साफ व उचित रूप से उनचारण कण्ठ संस्कार में अत्यधिक महत्व रखता है। मुख के वे भाग जिनका प्रयोग वर्णों के उनचारण हेतु किया जाता है अथवा वर्णों का उनचारण करते समय जिह्वा मुख के अंदर के जिन भागों को स्पर्श करती है या वायु, मुख के अंदर के जिन भागों के टकराकर निकलती है, वह भाग वर्णों के उनचारण स्थान कहलाते हैं।

गायन हेतु सात प्रमुख अंग उनचारण में प्रयुक्त किये जाते है- कण्ठ, जिह्वा, तालु, मुर्धा, दंत, ओष्ठ व नासिका। गायन में केवल निम्न प्रकार की ध्वनि व्यवहार में ली जाती है- अ आ इ उ ऐ (a, e, i, o, u) जिन्हें अंग्रेजी में (Vowels) कहते हैं। ये कण्ठ संस्कार के प्रमुख अवयव है।

कण्ठ संस्कार में खरज साधना का स्थान-

प्राचीन काल से ही संगीत शिक्षा की यह प्रथा रही है कि शिक्षार्थी महीनों तक षडज साधना करता रहता है। इसकी विधि यह है कि शिक्षार्थी अपनी आवाज को एक स्थान पर बांध लगातार स्वर का उनचारण करता है जिससे धीरे-धीरे वह स्वर उसके गले में बैठ जाता है। वही उसके कण्ठ का स्वरित या षडज होता है।

किसी भी कार्य को करने से पहले आधार की आवश्यकता पड़ती है तत्पश्चात् कार्य को आगे बढ़ाया जाता है, ठीक उसी प्रकार से खरज साधना से गायक का गला तैयार होता है एवं उसे तीनों सप्तकों में विचरण करने हेतु सहजता मिलती है। ''नीवं बेहतर होगी तो ईमारत भी अनछी खड़ी होगी'' यह कहावत यहाँ बेहतर तरीके से समझी जा सकती है।

कण्ठ संस्कार के विषय में सप्तपदी नाम की व्याख्या मैत्रेय मुनि ने दी है। सप्तपदी के अन्तर्गत सात पादों में यह विधि बतायी है। इस विधि को समझकर साध लने से स्वरों पर ठहराव, श्वास पर नियंत्रण एवं तीनों सप्तकों में आसानी से गायक विचरण कर सकता है।

कण्ठ संस्कार का विद्यार्थी जीवन में महत्व-

आज के वर्तमान युग में प्रत्येक विद्यार्थी शीघ्रता से ऊँचाईयों तक बिना किसी परिश्रम के पहुँचना चाहता है। गायन पद्धति में सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुतिकरण हेतु लम्बी साधना की एवं कठिन परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। विद्यार्थी अपने कण्ठ में यदि स्वरों का स्थान, स्वरों का उचित लगाव एवं ढंग आदि का ज्ञान परिमार्जित कर ले तो वह अपने गायन में रस उत्पन्न कर सकता है। कण्ठ संस्कार के पल्वित होने से विद्यार्थी के गायन में विलक्षण प्रतिभा नजर आती है। कण्ठ संस्कार के फलीभूत होने से विद्यार्थी को अपने गले पर नियंत्रण एवं श्वास पर नियंत्रण हो पाता है।

ग्रन्थों के अनुसार गायक के गुण एवं दोष

नारदीय शिक्षा नारद जी द्वारा लिखित ग्रन्थ है जिसमें गान के 10 गुण व 14 दोष बताये है।

गुण - रक्त, पूर्ण, अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विकृष्ठ, श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार, मधुर।

दोष - शंकित, भीत, उद्घृष्ट, अव्यक्त, अनुनासिक, काक स्वर, शिरसिगत, स्थानविवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषम आहत, व्याकुल, तालहीन।

भरतकृत नाटय शास्त्र में गायक के छः गुण एवं पाँच दोषों का वर्णन मिलता है।

गुणः- श्रावक, घन, स्निग्ध, मधुर, विधानवान, त्रिस्थानशोभी।

दोषः- कपिल, अव्यवस्थित, संदष्टक, काकी, तुम्बकी।

रत्नाकार द्वारा रचित ग्रथ संगीत रत्नाकर में गायक के 22 गुण एवं 25 दोष बताये हैं।

निष्कर्ष :-

भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक अनोखी विशेषता है कि एक सुघड़ संगीतकार अपनी प्रस्तुतिकरण के दौरान प्रत्येक क्षण नयी-नयी रचना बुनने में लगा रहता है, लेकिन गले पर नियंत्रण, श्वास पर नियंत्रण, स्वरों का सटीक लगाव इस प्रकार का चमत्कार सिर्फ संगीत साधना द्वारा ही संभव है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में कण्ठ संस्कार की विधि में क्षेत्र काकु का विशेष स्थान है। (काकु-स्वर, राग, अन्य राग, देश, क्षेत्र, यंत्र-रत्नाकार के अनुसार)। कण्ठ संस्कार पर (Voice Culture) शोध बी.आर. देवधर जी का प्राप्त होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. आवाज साधना शास्त्र-प्रो. बी.आर. देवधर।
2. ध्वनि और संगीत-प्रो. ललित किशोर सिंह।
3. भातखण्डे संगीतशास्त्र भाग-1, भाग-2, भाग-3 -विष्णु नारायण भातखण्डे।
4. स्वर विज्ञान एवं गणित-कांता प्रसाद मिश्रा।
5. हिन्दुस्तानी क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-1 एवं भाग-6-विष्णु नारायण भातखण्डे।
6. संगीत जिज्ञासा एवं समाधान- डॉ. तेज सिंह ताक।

संगीत में समय का महत्व

प्रोन्नति तिवारी, प्रो.पं. विद्याधर प्रसाद मिश्र

सार संक्षेप

प्रस्तुत शोध पत्र जिसका शीर्षक है - 'संगीत में समय का महत्व' इस कार्य में भारतीय संगीत का समय से अन्तरसम्बन्ध स्थापित किया गया है। संगीत की तीनों विधाओं गायन, वादन तथा नृत्य को प्रचीन से आधुनिक काल तक वर्णित करनें का प्रयास किया गया है।

गायन में समय के अनुसाार राग का प्रयोग, ऋतुओं के अनुसार राग गायन, वादन में काल की उपयोगिता, काल की मापन इकाई, लय महत्व तथा नृत्य में प्रस्तुति का क्रम। संगीत के किसी भी कार्यक्रम को देखें तो प्रारम्भी मे विलम्बित लय और समाप्ति के समय द्रुत गति का प्रदर्शन होता है। पाश्चात्य संगीत में इलेक्ट्रानिक उपकरण में Metronome वाद्य यंत्र समय को समझनें का अनछा नमूना है। अभ्यास और अपनी लय में निपुण होने के लिए पहले के समय में इसका प्रयोग किया जाता था। आधुनिक उपकरणों में इलेकट्रानिक लेहरा, स्वर पेटिका आदि नें विकसित रूप धारण कर लिया है। रियाज का समय से सम्बन्ध है। सही दिशा में व सही रियाज के माध्यम से एक संगीत साधक कलाकार तक का सफर तय करता है। समय बलवादन है और परिवर्तनशील भी जहाँ एक ही व्यक्ति से आन्दोलन हुए वही समय अस्तित्व में आ गया। संगीत में समान चाल या गति लय को इंगित करता है अतः संगीत में समय का समत्वपूर्ण स्थान है।

प्रमुख बीजकः- *काल, लय, मेट्रोनोम, समय शिद्धान्त, रियाज।*

संगीत और समय में अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण करते हैं तो हमें ज्ञान होता है कि संगीत सम्पूर्ण सृष्टि में विद्यमान है और सृष्टि के निर्माण के साथ-साथ समय का प्रारम्भ हुआ। समय वास्तव में परिवर्तन का नाम है। संगीत, न केवल मानव जीवन, पशु, पक्षी, जड़, चेतन बल्कि सर्व सृष्टि के कण-कण में वर्तमान है।

भारतीय संगीत का इतिहास अनुमानतः 4000 वर्ष प्राचीन है। भारतीय विद्वानों ने हृदयगत भावों का सफल साधन 'संगीत' को ही माना है, जिससे इसे धर्म, कर्म, मोक्ष, अर्थ अदृश्य सत्ता या परंबह्म की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय भी बताया है।

वराहोपनिषद में पंक्तिबद्ध है -

"संगीततालालय वाद्यवंश गतापि
मौलिस्थ्यकुम्भ परिरक्ष गधीर्नटीव।।"

आविर्भाव की दृष्टि से 'सम्यक् गीतम्' का ज्ञात होने पर प्रचार के अन्तर्गत 'संगीत', गीत, वाद्य तथा नृत्य के अभिन्न सहचारिता का बोधक रहा है।

*एम.ए. (यू.जी.सी. नेट), संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
**आचार्य (गायन) एवं विभागध्यक्ष संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

संगीत का युगीकरण -

संगीत में समय विभाजन और समय के अलग-अलग पर्याय दृष्टिगत होते हैं। जैसे सर्व मैतक्य संगीत के सबसे प्राचीन ग्रन्थ भरत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र और आगे संगीत पर पूर्ण रूप से आधारित ग्रंथ शारंगदेव कृत 'संगीतकार रत्नाकर' अवलोकित होता है। इस प्रकार विशेष परिवर्तन परिलक्षित होने की दृष्टि से संगीत के निम्नलिखित युग माने गये हैं -

- प्राचीन युग (1ली. शताब्दि से 8वीं शताब्दि तक)
- मध्य युग (800 ई. से 1800 ई. तक)
- आधुनिक युग (1800वीं ई. से अब तक)

1. प्राचीन युग में सांगीतिक सामग्री (1लीं शताब्दि से 8वीं शताब्दि तक)

भारतीय संगीत के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वैदिक काल को अति प्राचीन समय माना गया है। जिसमें चार वेदों- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, व अथर्ववेद में से सामवेद को सांगीतिक वेद माना गया इसका उपवेद 'गन्धर्वेद' कहलाया, जिसके प्रणेता नारद माने गए। इसके उपरान्त भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' सर्वविदित ग्रन्थ है। पाणिनि रचित 'अष्टाध्यायी इसी युग की देन है। पौराणिक काल के अन्तर्गत रामायण, महाभारत आदि महाकाव्य के जाति गायन, श्रुति, ग्राम, मूनर्छना, ध्रुवाएँ, प्रबन्ध, मार्गी व देशी संगीत के रूप का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता है।

मतंग कृत 'वृहद्देशीय' ग्रन्थ में जाति गायन के स्थान पर 'राग' शब्द का सूत्रपात हुआ। इसके पश्चात नारद ने (7वीं से 8वीं शताब्दी) अपनी ग्रन्थ 'संगीत मकरन्द में रागों को समय के अनुसार वर्गीकृत कर तीन भागों में बाँटा -

1. सूर्याश राग
2. मध्यान्ह राग
3. चंद्राश राग

प्रातः काल में गाए जाने वाले राग 'सूर्याश राग' - भैरव, अहिर भैरव, कालिंगड़ा, विभाष गुणकली आदि। दिन के समय 'मध्यान्ह' राग में- वृंदावनी सारंग, मध्यमार्ग सारंग, बडहंश सारंग का तथा रात्रि के समय 'चन्द्रांश राग' गाए जाने का प्रावधान हुआ। आज इसी पद्धति का अनुसरण कर पूर्वांगवाद राग और उत्तरांगवादी राग का प्रचलन है।

2. मध्य युग की सांगीतिक रूप तालिका (800वीं ई. से 1800वीं ई. तक)

मध्ययुग में प्रचलित एवं संगीत की पद्धति में भरत के उपरान्त संगीत को नया आयाम शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ में मिला। यह सप्ताध्यायी ग्रन्थ, मार्गी व देशी संगीत की विस्तृत विवेचना करनें वाला सम्पूर्ण सांगीतिक ग्रन्थ मान्य हुआ है। इसके अतिरिक्त पार्श्वदेव कृत 'संगीत समयसार', जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' आदि प्रमुख ग्रन्थ हुए। इस युग के मध्य में उत्तर और दक्षिण भारतीय संगीत में विभाजन होना प्रारम्भ हो गया था। जिसके अन्तर्गत उत्तर भारतीय संगीत पर मुगलों के श्रृंगारिक प्रवृत्ति का प्रभाव देखनें को मिलता है। जबकि दक्षिण में उत्तर की अपेक्षाकृत अध्यात्मिकता के दर्शन मिलते हैं। संगीत के प्रत्येक वर्ग में घरानें की परम्परा प्रारम्भ हुई।

3. आधुनिक युग का अभ्युदय (1800वीं ई. से अब तक)

आधुनिक समय में अनेक अर्वाचीन प्रबन्ध के रूप में ध्रुपद, धमार, ठुमरी, टप्पा आदि का प्रचलन हुआ। मोहम्मद शाह 'रंगीले' के दरबारी कवि सदारंग और अदारंग की ध्रुवपद व ख्याल रचनाएं प्रसिद्ध हुई। इसके उपरान्त अंग्रेजो के

आगमन से संगीत की अवनति होनी प्रारम्भ हुई। जिन मुगलो व राजाओं ने संगीतज्ञों को आश्रय दिया तो उन्हें आश्रयदाता बननें का परिणाम वहन करना पड़ा। ब्रिटिश काल में घरानेदार परम्परा बलवती हुई, जिससे संगीत की सुरक्षा होती रही और कलाकारों और शिष्यों का संगीतार्जन होता रहा। इसी युग में संगीत के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन करनें वाले पं. विष्णु नारायण भातखण्डे व पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का नाम विख्यात हुआ। इन महान संगीत सेवकों ने उत्तर भारतीय संगीत की पद्धतियों का निर्माण किया, जिनसे साधारण व संगीत प्रेमी विद्यार्थी तक संगीत की विद्या सुलभ प्रेषित हो सके।

अतंतोगत्वा प्राचीन काल से वर्तमान समय तक संगीत के प्रगति में अनेकोनेक विघ्न परिलक्षित हुए, किन्तु संगीत अपनी क्षमतानुसार कभी तीव्र गति से तो कभी मन्द गति से विकसित होता रहा है। आधुनिक काल में संगीत, अनेंक नए आयामों से परिचित हुआ, जिसमें प्रयोगात्मक पक्ष व तथ्यात्मक पक्ष भी स्पष्ट किया गया।

गायन में समय की गुरूत्वता :-

रागों के गायन समय का वर्णन सर्वप्रथम नारद कृत 'संगीत मकरंद' ग्रन्थ में प्राप्त हुआ। उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में रागो का प्रयोग काल 24घण्टे में बाँटा गया है, जिन्हे दो भागो में विभाजित किया गया, जिसमें -

1. दिन के 12बजे से रात्रि के 12बजे तक (पूर्वांगवादी राग)
2. रात्रि के 12बजे से दिन के 12बजे तक (उत्तरांवादी राग) की व्यवस्था की गयी है।

समय की दृष्टि हिन्दुस्तानी संगीत पद्यति में रागों को बाँटा गया। यानि एक समय सिद्धान्त स्थापित हुआ, जिसमें उन रागों को तीन वर्ग मानकर उनका विभाजन किया गया।

1. सन्धि प्रकाश राग (कोमल रे - ध वाले - राग) :- सन्धि प्रकाश का समय प्रातः व सायं 4बजे से 7बजे तक निर्धारित है। सन्धि प्रकाश का अर्थ जब सूर्योदय की लालिमा और सूर्यास्त की लालिमा अर्थात् गोधुली बेला हो। प्रातः कालीन सन्धि प्रकाश राग में- भैरव, रामकली, कालिंगड़ा आदि। सायं कालीन सन्धि प्रकाश राग में- पूर्वी, पूरियाधनाश्री, मारवा आदि।

2. शुद्ध रे - ध वाले राग :- इसका गायन समय दिन व रात्रि 7बजे से 10बजे निर्धारित किया गया है। इसके अन्तर्गत हिण्डोल, देश, तिलक कामोद, खमाज आदि रागें गाए जाते हैं।

3. कोमल ग - नि वाले राग :- इसका समय विद्वानों ने 10बजे से 4बजे दिन एवं 10बजे से 4बजे रात्रि का अनुबंधित किया है। इसके अन्तर्गत, तोड़ी, आसावरी, भैरवी और काफी राग आते हैं।

इसी प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत में रागों का समय-चक्र चलता रहता है। इसके अतिरिक्त रात-दिन होने का प्रभाव रागों के चलन एवं उनकी बन्दिशों पर भी दिखता है। प्रातः काल में भैरव राग में 'जागो मोहन प्यारे...', 'प्रातः भयो अब...' तथा रात्रि के राग यमन में 'रतिया कटत मोरी...' जैसे समय इंगित करनें वाले शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

ऋतुओं के अनुसार समय का महत्व :-

समय की इकाई में रात-दिन से आगे बढ़े तो वर्ष भर में आने वाली ऋतुओं का भी चक्र दृष्टिगम्य होता है -

1. ग्रीष्म ऋतु - दरबारी कान्हड़ा,
2. बसन्त ऋतु - मल्हार राग,

3. बहार ऋतु - बहार, बसन्त, पीलू राग,
4. हेमन्त ऋतु - यमन, कल्याण राग,
5. शीत ऋतु - कलावती राग, मालकौंश, बिहागड़ा (जयपुर घरानें से)
6. शिशिर ऋतु - रागेश्वरी राग आदि।

वादन में काल की उत्तमत्ता -

संगीतात्मक नाद एवं गति को प्रकट करनें के साधन को 'वाद्य' कहा जाता है। मानव कण्ठ भी ईश्वर निर्मित वाद्य माना जाता है अवनद्ध वाद्यों में ताल के दस प्राण में समय की महत्वपूर्ण भूमिका है। ताल की रचना का प्रथम तत्व/प्राण काल ही है। भरत ने काल को पाँच निमेश को एक मात्रिक काल माना है। सारंग देव कृत - संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में 5 लघु अक्षरों उनयारण काल को एक मात्रिक काल कहा है। काल मापन के लिए मुहूर्त, पल, निमेश, कला, तृष्टि, तत्पर, विपल, काष्ठा, काकपद आदि स्वरूप सेमात्रकाल के रूप में वर्णित किया है। वराहमिहिर ने 'वृहत्संहिता' में तथा भाष्कराचार्य ने अपने ग्रंथ 'सिद्धान्त-शिरोमणि' में जिस प्रकार काल मापन का उल्लेख किया है, उसके अनुसार क्रमशः पाँच निमेशकाल = 16/15 सेकंड का एक मात्रकाल तथा पाँच लघु-अक्षरोच्यारण काल = 1 सेकंड का एक मात्र-काल होना परिलक्षित होता है।

'संगीत-समयसार' ग्रंथ में पार्श्वदेव ने क्षण-लव काष्ठादि को मनोगा तथा आवापादि क्रिया काल को हस्तगा कहकर, हस्तगा कालमान को ताल संदर्भ में मान्य किया है। वासुदेव शास्त्री जी के अनुसार- काल मापन निम्नलिखित है-

प्राचीन समय में काल का मापन			**आधुनिक समय में काल का मापन**		
8 क्षण	=	1 लव	अणुद्रुत	=	1 मात्र काल
8 लव	=	1 काष्ठ	द्रुत	=	2 मात्र काल
8 काष्ठ	=	1 निमेष	लघु	=	4 मात्र काल
8 निमेष	=	1 कला	गुरू	=	8 मात्र काल
2 कला	=	1 अणुद्रुत	प्लुत	=	12 मात्र काल
2 अणुद्रुत	=	1 द्रुत	काकपद	=	16 मात्र काल
2 द्रुत	=	1 लघु			
2 लघु	=	1 गुरू			
3 लघु	=	1 प्लुत			
3 लघु	=	1 काक पद			

वर्तमान में षड़ांग (काल के छः अंग) का प्रयोग दक्षिण भारतीय संगीत में प्रयुक्त होता है। जिसमें सप्त सूलादी ताल में लघु, द्रुत व अणुद्रुत का ही प्रयोग दृष्टिगम्य है। क्रिया, ताल का अन्य प्राण है, सिसमें दो भाग हुए जो भौतिक रूप से समय के क्रम को संकेतित करते हैं - 1. सशब्द क्रिया, 2. निशब्द क्रिया। समय की समान गति को लय कहा जाता है। संगीत में 'लय' शब्द समय का ही पर्याय है। यह ताल के दस प्राणों में से एक है। अमरकोष में लिखित श्लोक -

तालः काल क्रियामानं लयः साम्यमथास्त्रियाम्।

का अर्थ है कि - ताल के अन्तर्गत क्रिया और काल की प्रमाणिकता ही लय है। प्राचीन काल में लय के मुख्यतः तीन प्रकार थे -

1. द्रुत
2. मध्य
3. विलम्बित

उपरोक्त को लय की गतियाँ मानें तो लय के दो प्रकार है, जिसमें - 1. सीधी लय,
2. टेढ़ी लय आएगें।

सीधी लय में, द्रुत, मध्य व विलम्बित लय तथा ठाह, अधगुन, दुगुन, चौगुन आदि आएगे। टेढ़ी लय में आड़ 3/2, कुआड़ 5/2 एवं बिआड 7/4 जैसे लयों को वर्तमान किया जाएगा। इसके अतिरिक्त दक्षिण ताल पद्धति एवं संगीत में

लय का क्लिष्ट कार्य देखनें को मिलता है, जिनमें सप्त सूलादि ताल का पंच जाति भेद के अनुसार 35 तालों को तथा गति भेद के अनुसार 175 तालों का निर्माण किया जाता है।

पाश्चात्य संगीत में भी समय को नापनें के लिए आधुनिक उपकरणों में मेट्रोनोम (Metronome) का नाम भी आता है, जिसे नियमित रूप से टिक-टिक ध्वनि द्वारा सटीक समय को इन्गित करनें के लिए निर्मित किया गया था। मेट्रोनोम (Metronom) के सन्दर्भ में- बोनस अपनें अनुसंधान में लिखिते हैं - performance practices became increasingly influenced by clockwork machines and Johann Maelzel's metronome most conspicuously-over the course of the modern age. Depicting how 'musical time' constitutes an ever-changing belief system in what 'time' means, this study charts the ascendance of a new musical-temporal ontology brought about by Western performance-culture's increasing reliance on metronomes. इसके अतिरिक्त पाश्चात संगीत में भारतीय संगीत के समान ताल में अधिक विकसित नही है। किन्तु वहा पर ताल के संदर्भ में टाइम सिग्नेचर शब्द मान्य है। जिसके मुख्य दो प्रकार मानें जाते हैं - 1- Simple Time तथा 2. Compound Time. पाश्चात्य संगीत में भारतीय संगीत के समान मुख्य 3 लय भी प्रचार में हैं। जो Duple, Triple तथा Quardruple नाम से जाने जाते हैं।

नृत्य में समय का महत्व -

कला शब्दों से ज्ञात होता है रसो की व्यंजना एवं भावों कि अभिव्यक्ति अर्थात मानव में कुछ भाव जन्म से ही उसमें उपस्थित होते हैं, किन्तु इन भावों का निरूपण मात्र कला द्वारा ही सम्भव है। संगीत को ललित कलाओ में सर्वोपरि कला का स्थान प्राप्त है। जिसमें नृत्य उसका एक महत्वपर्णू तत्व है।

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुनयते"

गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं का संगम 'संगीत' कहलाता है।

नृत्य में भी लय तत्व प्रधान होता है। नृत्य की प्रस्तुतीकरण श्रृंखला में अंग-संचालन हाव-भाव के साथ निश्निात अवधि में प्रदर्शन करने का महत्व है। कत्थक नृत्य में नर्तक ठाट, सलामी व आमद जैसे प्रारम्भिक प्रस्तुति तत्व के पश्चात ही टुकड़ा व गत भाव आदि पर आता है। नृत्य के सम्बन्ध में यह विदित है कि वही श्रेष्ठ नृत्यकार मान्य है जो अपनी प्रस्तुति से दर्शको को ज्यादा प्रभावित करता हो। यदि ऐसा कर पानें में वह असमर्थ है तो उसकी कला निर्बल व साधना अपूर्ण मानी जाती है।

रियाज का समय से अन्तर्सम्बन्ध -

कार्य सिद्धि के उद्देश्य को पाने के लिए संगीत में रियाज, अभ्यास, साधकम् व Practice शब्दों को प्रयोग में लाया जाता है।

'Practice Makes a Person Perfect'

जैसे कहा ही गया है, कि प्रत्येक व्यक्ति या जो व्यक्ति अभ्यासरत रहता है वह बेहतर होता जाता है।

कुछ मनीषियों व गुरूजनों का कथन है कि अभ्यास या साधना को सुचारू रूप से चलायमान रखनें के लिए चिल्ला भी प्रयोग किया जाता है। चिल्ला शब्द से तात्पर्य है कि शिक्षार्थी लगातार 40 दिनों तक एक समान रियाज करें। चिल्ला शब्द अनुष्ठान का पर्याय शब्द है।

प्रस्तुति के आधार पर समय का महत्वः-

यदि वाग्यकार या वादक के गुणों की चर्चा करे तो कलाकार में अपनी कला का पृकतिकरण एक आवश्यक तत्व हो जाता है। संगीत की किसी प्रस्तिुति को देखे तो पहले संगीतकार प्रारम्भ में विलम्बिल लय फिर मध्य व द्रुत लय का प्रदर्शन करता है। जैसे - द्रुपद-ख्याल गायक-वादक पहले आलापध्स्वर विस्तार करता है। इसके पश्चात बन्दिशों का प्रदर्शन मध्य लय में फिर आगे तराना झाला आदि लय की प्रस्तुति करके समापन करता है। नृत्य में भी लय का यही क्रम परिलक्षित होता है। जैसे भरतनाट्यम में नृत्यांगना अलारिपु, जातिस्वरम्, वर्णम्, शब्दम्, पदम् व तिल्लाना इस क्रम से अपना नृत्य प्रस्तुत करते हैं।

अंततः यह स्पष्ट है कि संगीत समय के कितने समीप है। सृष्टि की रचना के साथ-साथ समय का जन्म हुआ। समय निरन्तर परिवर्तनशील है, वह किसी के लिए रूकता नही, हमेशा गतिमान रहता है और संगीत के भी तीनों तत्वों में गति का पर्याप्त महत्व है। संगीत में भी युगों के अनुसार परिवर्तन हो गया है। वैदिक में संगीत का आध्यात्मिक पक्ष फिर पौराणिक काल में आध्यात्मिक रूप के साथ कुछ मनोंरंजक पक्ष उसके पश्चात मध्य युग में मुगलों के आगमन के उपरान्त संगीत का श्रृंगारिक पक्ष और अर्वाचीन अर्थात् वर्तमान की विकसित व स्वतन्त्र मनः स्थिति के अनुसार संगीत का चहुमुखी विकास देखा जा सकता है। यहाँ समय के क्रमिक (युग, ऋतु, माह व घण्टे प्रतिदिन) विकास का वर्णन करनें का प्रयास किया गया है। संगीत के बहुत से पक्ष हैं जो अप्राप्य होने के कारण अधिक मत-मतान्तर के आवरण से घिर जाते हैं, किन्तु अधिंकाश भाग का सौन्दर्य व रसास्वादन किया जा सकता है। संगीत में तीन प्रमुख तत्व होते हैं - स्वर, पद तथा लय। स्वर श्रुतियों से सम्बन्ध रखता है। पद रस और भौतिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। जबकि लय पर्ण रूप से समय का पर्याय कहा जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मराठे मनोहर भालचन्द्र, ताल वाद्य शास्त्र, शर्मा पुस्तक सदन ग्वालियर, 1991।
2. मिश्री आबान ई., पखाबज और तबला के घरानें एवं परम्पराएं।
3. गुप्ता निशी, ताल शास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष, कनिष्क पब्लिशर्स नई दिल्ली, 2010।
4. टाक तेज सिंह, संगीत, जिज्ञासा और समाधान।
5. शर्मा स्वतन्त्र, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2014।
6. परांजपे शरचन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, 2015।
7. जौहरी रेनू, संसमरण (तबला के जादूगर पद्मभूषण पं. सामता प्रसाद जी की स्मृति में), अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2015।
8. सिंह ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2016।
9. मिश्र लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, 2019। 10. जौहरी रेनू, साम (संगीत परख लेख) ।

व्याख्यान

मराठे स्वप्ना - 'दस थाट एवं रागों का समयानुसार महत्व का सिद्धान्त'
वासुदेव शास्त्री - 'व्याख्यान'

शोध

Bonus, Alexander Even, The Metronomic Performance Practice: A History of Rhythm Metronomes, and The Mechanization of Musicality.

हवेली संगीत

डॉ. हर्षित वैयर

सारांश

पुष्टि सम्प्रदाय के अष्ठछाप भक्तों का भक्ति-संगीत हवेली संगीत के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें देश के समस्त पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में श्रीकृष्ण की दैनिक पूजा-अर्चना में संगीत के माध्यम से प्रातः से सायं तक आठ दर्शनों की झांकियाँ प्रस्तुत होती है। यह संगीत विशेष रूप से वैदिक मंत्रों और पौराणिक श्लोकों के स्थान पर उपयोग में आते हैं। आठों दर्शनों की झांकियों में अलग-अलग कीर्तनकार होते हैं और वे निर्धारित वाद्यों और रागों में गायन प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक गायन में श्रीकृष्ण के दर्शन का परिचयात्मक विवरण होता है। जिसका आनन्द प्रत्येक दर्शनार्थी आँखों देखा हाल का अनुभव करता है। यह नाम 'हवेली संगीत' आकाशवाणी के निदेशक एन.एन. शुक्ला ने ईसा की 19-20वीं शताब्दी में रखा। इसी खास कारण से पुष्टिमार्गीय मन्दिर के नाम से नहीं बल्कि हवेली संगीत के नाम से इसे जाना जाता है।

***मुख्य शब्द** : 1. संगीत, 2. हवेली संगीत, 3. पुष्टि सम्प्रदाय, 4. ध्रुपद-धमार शैली, 5. पुष्टिमार्गीय संगीत*

भारतीय संगीत के इतिहास में **'हवेली संगीत'** का नाम सुविख्यात रहा है। इस संगीत की ख्याति हमारे देश के जन-जीवन में उत्तरोत्तर इसलिए बढ़ी है कि यह संगीत जहाँ अपने मूल उद्देश्य से बंधा हुआ रहा है, वहाँ इसने भारतीय जीवन में जिस अनुरंजनात्मकता की आवश्यकता रही है, उसकी परिपूर्ति में भी बढ़ चढ़कर अपनी भूमिका निभाई है। अतएव इसके योगदान को भारतीय संगीत में एक सुदृढ़ नींव माना जाता है। इसके मूलरूप का विकास अकबर के शासनकाल से हमारे जीवन में निरन्तरता के साथ बढ़ता हुआ देखा जाता है। इस सुदीर्घ काल में इस संगीत के नाना रूप विकसित हुए हैं। इसकी मधुरिमा ने न केवल हमारे जीवन को प्रभावित किया है, बल्कि भारतीय जीवन को संगीत के क्षेत्र में एक सुदृढ़ विकास की भूमिका भी प्रदान की है।

इतिहास बताता है कि इस संगीत का उद्भव ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर, जो वि.सं. 1543 से 1573 के बीच में रहे। इसका आविष्कार किया था। राजा मानसिंह तोमर न केवल कुशल शासक थे, अपितु अपने समय के भारतीय संगीत के उद्भट विद्वान भी थे। उन्होंने अपने समय की भारतीय संगीत की विलुप्त होती हुई जटिलताओं से ऊबकर सरल संगीत को जीवन देने का संकल्प किया था। अपने उस संकल्प को देश में सुप्रचारित करने की धारणा लेकर ब्रजभाषा के काव्य के माध्यम से ध्रुपद-धमार शैली का आविष्कार किया था। यही कारण है कि राजा मानसिंह को ध्रुपद-धमार

सहायक आचार्य, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, ई-मेलः ितींपजअंलंत/हउंपसण्बवउ

शैली का आविष्कारक माना जाता है।[1]

ध्रुपद-धमार शैली के इस संगीत की विशेषता यह रही है कि इस संगीत ने मुगल शैली के विकासोन्मुख संगीत की स्पर्धा में आकर अपने संगीत को स्वदेश प्रेम के रूप में विकसित कर संगीत के मूल उद्देश्य को, अर्थात् ईश्वर की आराधना की, केन्द्र में लाकर सुप्रचारित करने के अपने मूल मन्तव्य से जोड़ा। फलस्वरूप भविष्य में इसका अभूतपूर्व विकास महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गीय भक्तिसंगीत में एकरूप होता दिखाई दिया।

राजा मानसिंह तोमर के शासनकाल में ही जहाँ सर्वश्रेष्ठ ध्रुपद गायक स्वामी हरिदासजी अपने सुमनोहर संगीत की तरल तरंगें वृन्दावन में फैला रहे थे, वहाँ सम्राट अकबर के दरबार का तानसेन जैसा धुरन्धर संगीतज्ञ देश के कौने-कौन में अपनी सुमधुर गायकी से देश के जन-जीवन को अनुरंजित कर रहा था। अतः यह माना जा सकता है कि उस समय ग्वालियर, आगरा, मथुरा और वृन्दावन का फैला हुआ क्षेत्र विशाल रूप से 'ध्रुपद' गायकी से प्रभावित रहा था।[2] पुष्टिसम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदासजी, राजा मानसिंह तथा पुष्टिसम्प्रदाय के अमर गायक कुंभनदास आदि संगीत के ज्ञाता और प्रेमी समकालीन ही थे, और इस कारण वह समय भारतीय संगीत के क्षेत्र में एक प्रकार से ध्रुपद गायकी का ही था। अकबर के दरबार में भी तब ध्रुपद-धमार गाने वाले संगीतज्ञ विशेष रूप से विद्यमान थे, तो उस संगीत को सुनने वाले और सराहना करने वाले श्रोता भी कम नहीं थे। वह समय संगीत की दृष्टि से राज्याश्रित था, तो सबसे बड़ा उसे आश्रय ईश्वर की आराधना का भी मिला था।

ध्रुपद और विष्णुपद

ध्रुपद-धमार शैली का यह हवेली संगीत प्रारम्भ में ध्रुपद अथवा ध्रुवपद एवं विष्णुपद संगीत के नाम से जाना जाता था। संगीतज्ञों का मानना है कि यह प्रचार-प्रसार गीत अथवा गायन के बोल को लेकर माना गया है। स्मरणीय है कि ध्रुपद और विष्णुपद का यह अलग-अलग बोध खासकर भिन्न-भिन्न विषयों के कारण किया जाता रहा। शाहजहाँनामा में आया है कि ग्वालियर के राजा मानसिंह ने आसानी से गाए जाने वाली और श्रोता को आसानी से समझ में आने वाली जिस नये ढंग की इस गायकी का आविष्कार किया था, उसके तीन खण्ड बनाए गये थे -

1. पहले खण्ड के गीतों को विषनपद या विष्णुपद कहा गया। इसमें श्रीकृष्ण की प्रशंसा की जाती रही।
2. दूसरे प्रकार के वे गीत रहे, जिनमें देवताओं और बड़े आदमियों की प्रशंसा की जाती थी।
3. इसी तरह तीसरे दर्जे के वे गीत या पद हैं, जिनमें स्नेह और प्रेम-प्रीति की बातें रहती थीं।[3]

इस प्रकार यह विषय-बोध होने पर भगवान श्रीकृष्ण को लेकर रचे गए गीत अथवा पद संगीत के संदर्भ में विष्णुपद कहे गऐ और ध्रुपद में आने वाले गीत या पद वे माने गए, जिनमें अन्य देवताओं या मनुष्यों के प्रेम-प्रीति का विशेष विवरण रहता था।

इस तरह के जो पद श्रीकृष्ण की स्तुति में गाए जाते रहे, वे विष्णुपद माने गए और जिन पदों में अथवा गीतों में सामान्य मनुष्यों के स्नेह और प्रेम-प्रीति का वर्णन मिलता है, वे ध्रुपद

गायकी के माने गए। देखा जाए तो यह ध्रुपद-धमार का भेद न होकर गीत या पद में वर्णित विषय के बोल की भिन्नता के कारण हुआ है। इसीलिए ध्रुपद-धमार में गाए जाने वाले संगीत को पुष्टिमार्गीय कीर्तन अथवा अष्टछाप संगीत के नाम से जाना जाता है।

हवेली संगीत

वस्तुतः विष्णुपद और ध्रुपद अथवा ध्रुवपद एक ही गायन शैली के दो नाम हैं। इस संगीत का प्रचार-प्रसार विक्रम की 15वीं शताब्दी में महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा संस्थापित अष्टछाप संगीत के कारण हुआ। वल्लभाचार्य एवं उनके द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथजी ने अपने-अपने समय में पुष्टिमार्गीय भक्ति-संगीत को लेकर जो व्यवस्था प्रदान की, वह इतनी मजबूत व्यवस्था रही कि आज भी भारत में पुष्टिमार्ग के जितने मंदिर हैं, उनमें सुबह से शाम तक भगवान श्रीकृष्ण की जो आठ झांकियाँ दर्शनार्थ प्रस्तुत की जाती हैं, उन आठों झांकियों में अलग-अलग आठ भक्त कवि अपना संगीत प्रस्तुत करते हैं। मूलतः इन संगीतज्ञों को वल्लभाचार्य तथा उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथजी ने निम्नानुसार कर्तव्य सौपा था[4] -

1. मंगला	-	परमानन्ददास
2. श्रृंगार	-	नन्ददास
3. ग्वाल	-	गोविन्द स्वामी
4. राजभोग	-	कुंभनदास
5. उत्थापन	-	सूरदास
6. संध्याभोग	-	चतुर्भुजदास
7. संध्या आरती	-	छीतस्वामी
8. शयन	-	कृष्णदास

इन आठों मूल संगीतज्ञों के दिवंगत हो जाने पर उनकी जगह नये संगीतज्ञों की नियुक्ति की परंपरा रही है।

हवेली संगीत का नामकरण

हवेली संगीत के उद्‌भव और विकास की चर्चा में यह जानना भी आवश्यक है कि पुष्टिमार्गीय भक्ति संगीत को हवेली संगीत क्यों कहा गया, जबकि मूलतः पुष्टिमार्गीय संगीत ध्रुपद-धमार का ही विकसित रूप रहा। इस संदर्भ में इस नाम को लेकर डॉ. सत्यभान शर्मा के शोध-ग्रंथ ''पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा'' का उल्लेख करना यहाँ प्रासंगिक होगा। उनका इस विषय में गहन अनुसंधान के बाद जो स्पष्टीकरण सामने आया है, वह बड़े महत्त्व का है। वे लिखते हैं कि हवेली शब्द फारसी का है। इसका अर्थ है - भव्य एवं सुख सुविधा की दृष्टि से बना हुआ सुन्दर आवास। एक ओर जो बड़े-बड़े राजमहल होते हैं और दूसरी ओर जो सामान्य मनुष्यों के घर होते हैं, उनके बीच का निवास हवेली कहलाता है। यही शब्द पुष्टिमार्गीय मन्दिरों के लिए गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र में और अब तो सम्पूर्ण भारत में बने पुष्टिसम्प्रदाय के मन्दिरों के लिए भी प्रयुक्त होता है। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि यह मन्दिर अन्य मन्दिरों की तरह शिखरबंद नहीं होते।

जब पुष्टिसम्प्रदाय के मन्दिरों को हवेली कहा जाने लगा तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक रहा कि इन वैष्णव मन्दिरों में जो संगीत प्रचलित है, उसे क्या कहा जाए? इस समस्या का निदान श्री एन.एन. शुक्ल (चीफ प्रोड्यूसर आकाशवाणी दिल्ली) ने किया उनके अनुसार इस संगीत का नाम 'हवेली संगीत' रखा जाना उचित होगा। इस नामकरण में जहाँ डॉ. डी.जी. व्यास तथा पुष्टिमार्गीय विशिष्ट संगीतकार श्री लक्ष्मणप्रसाद चौबे का परामर्श भी मिला और उन्होंने अपनी सहमति भी दी। तभी से भारतीय आकाशवाणी केन्द्रों से यह नाम प्रचारित होता गया और ज्यों-ज्यों समय बीता, पुष्टिमार्गीय यह संगीत

'हवेली संगीत' के नाम से रूढ़ हो गया।[5] अब न तो इस संगीत को पुष्टिमार्गीय भक्ति संगीत कहा जाता है और न ही ध्रुपद-धमार संगीत। इस संगीत का श्रोता न केवल अपने सम्पूर्ण मनोरंजन से जुड़ता है, बल्कि उसे ईश्वर की अद्‌भुत अनुभूति भी होने लगती है। अतएव यह संगीत मानव कृत होकर भी भावनात्मक संगीत है।

हवेली संगीत का महत्त्व

आज इस हवेली संगीत का महत्त्व भारतीय संगीत के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ संगीत के रूप में माना जाता है। एक ओर इस संगीत का उपयोग ईश्वर की आराधना में होता है, तो दूसरी तरफ मनोरंजन की भूमिका में भी यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहता। इस संगीत की एक और भी जो विशेषता है, वह इसका उपयोग भक्ति के रूप में तो होता ही हे, ईश्वर की आराधना के क्षेत्र में भी इसे उस स्तर का स्वीकार किया गया है, जो प्राचीन समय में ईश्वर की उपासना के लिए वेदमंत्रों अथवा पौराणिक श्लोकों या स्तुतियों का होता था। अतः कीर्तनकार जब अपना कीर्तन प्रस्तुत करते हैं, तब वह केवल संगीत का अर्थ नहीं रखता, अपितु ठाकुरजी की उस प्रस्तुति की झांकी भी उसमें निहित होती है और दर्शक या भक्त उस प्रस्तुति की अभिव्यक्ति में खोकर अथवा उस संगीत की धुन में अभिभूत होकर इस संसार से थोड़ी देर के लिए विस्मृत हो जाता है।

वस्तुतः यह संगीत देव-उपासना का एक अद्‌भुत माध्यम है और इसी कारण प्रत्येक दर्शनार्थी इस कीर्तन को अपने हृदय में उतारकर तन्मय हो जाता है। हवेली संगीत की एक ओर जो विशेषता है, वह सांगीतिक इतिहास को लेकर भी जानी जा सकती है। जब मुगलकालीन शासन के प्रभाव से भारतीय संगीत नाना प्रकार के घरानों से जुड़ रहा था, तब अथवा उससे कुछ समय पूर्व वल्लभाचार्य जी ने इस संगीत को देवालयों का संगीत बनाकर, हमारे संगीत को वह उन्नति प्रदान की थी, जिसके कारण इस हवेली संगीत की आवाज आज तक भी उसी तरह जन-जीवन में गूँज रही है, जैसे 15वीं सदी में गूँजी थी। इस प्रकार हवेली संगीत भारतीय संगीत के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ संगीत के पद पर सुशोभित है, यह कहने में कोई संकोच नहीं।

यह संगीत वल्लभाचार्य का स्मरण तो दिलाता ही है, ग्वालियर के राजा मानसिंह के संगीत-प्रेम को भी इस युग तक खींच लाया है। यह संगीत मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार कराता है। इस विषय में श्रीकृष्ण का कथन याद आये बिना नहीं रहता -

नाऽहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदयेऽ पिवा।
मद्‌भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।
(पदम् पुराण)

(Footnotes)

1. डॉ. सत्यभान शर्मा, पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा, राधा पब्लिकेशन, 1999, पृ. 43.
2. वही, पृ.43-44.
3. वही, पृ.45.
4. वही, पृ.71.
5. वही, पृ.42-43.

संगीत संचार में सम्प्रेषण माध्यम

हेमलता कुमारी

शोध - सार

वैदिक शिक्षा भारत की सबसे प्राचीन व्यवस्था है। भारत में अतीत से ही वैदिक शिक्षा का प्रचलन था, एस समय शिक्षा नाम की कोई चीज नहीं थी। वैदिक शिक्षा ''गुरूकुल'' से हुआ करती थी। यह शिक्षा नकेवल सामाजिक थीं बल्कि शिष्य गुरू के सानिध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त किया करते थे। यह शिक्षा केवल सामाजिक ही नहीं बल्कि अस्त्र, शस्त्र, संगीत, राजनीति, ज्योतिष, खगौल आदि से भी जुड़ा हुआ था। शिक्षा व्यक्ति का सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए अनिवार्य तत्व है। गुरू अपने शिष्य को अपना सानिध्य देते थे और शिक्षा प्रदान कराते थे। वैदिक शिक्षा भारत की अपनी मौलिक शिक्षा व्यवस्था थी। ऐसे श्रेष्ठ वैदिक शिक्षा गुरूकुल का प्रमाण कहीं और देखने को नहीं मिलती। भारतीयों का दृष्टिकोण शुरू से ही अध्यात्मिक रहा है। इसलिए उन्होंने शिक्षा में अध्यात्म का समावेश किया है। शिक्षा मानव को मोक्ष, मुक्ति का मार्ग है।

गुरूकुल परम्पराः- गुरूकुल का शाब्दिक अर्थ कुछ इस प्रकार लगाया जा सकता है - ''वह स्थान या क्षेत्र जहाँ गुरू का कुल यानि परिवार निवास करता था। प्राचीन काल में शिक्षक को शिष्य समर्पित (पुरी तरह) होते थे। वैदिक काल में शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी। गुरू-शिष्य प्रणाली में गुरू-शिष्य के आपसी संबंध बहुत ही मधुर तथा पिता-पुत्र तुल्य होते थे। मध्यकालीन ''मुस्लिम'' काल मुस्लिम आक्रमण के प्रभाव के परिणाम स्वरूप भारतीय संगीत की प्रकृति में बदलाव आया। भारतीय संगीत इस व्यवस्था से आहत हो गया और इसके दो प्रमुख भाग (उत्तर भारतीय संगीत/हिन्दुस्तानी संगीत और दक्षिण भारतीय संगीत/कर्नाटकी संगीत) हो गया। हिन्दी इस्लामी संस्कृति शब्द मिश्रित संस्कृति के विकास का सूचक है।

इस्लाम धर्म द्वारा संगीत कला वर्जित थी, परन्तु भारतीय संगीत में तुर्की शासकों पर प्रभाव डाला जिसके फलस्वरूप बलवन, उसका पुत्र बुगरा खाँ, अलाउद्दीन खिलजी, मोहम्मद बिन तुगलक जैसे मुसलमानों ने संगीत को संरक्षण प्रदान किया। मध्यकालीन शिक्षण में जनसामान्य शिक्षा का अभाव था। मानसिक योग्यता का अभाव, अध्यात्मिक पक्ष को अवहेलना, अरबी, फारसी, भाषाओं की बहुलता, स्त्री-शिक्षा की अवहेलना, कठोर दंड, केवल मुसलमानों के लिए शिक्षा, अध्ययन में कठिनाई।

गुण :- निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था। मध्यकाल में मदरसों एवं मक्तबों में शिक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्ति को शिक्षा प्रदान की जाती थी, एवं छात्रवास एवं खाने-पीने की व्यवस्था भी थी। इस काल में शिक्षा पर व्यय का

उत्तरदायित्व शासक एवं उनचवर्गीय व्यक्तियों पर था। विभीन्न काल-कौशल की प्रगति मुस्लिम शिक्षा की प्रमुख व्यवस्था थी।

आधुनिक कालः- संगीत के आश्रय दाताओं की संख्या बढ़ गई, क्योंकि यह धन वाला वर्ग था। धीरे-धीरे समाज में संगीत को बढ़ावा मिलने लगा। संगीत में निःपूर्ण होना एक अतिरिक्त योग्यता मानी जाने लगी।

घरानें शिक्षणः- एक विशेष स्थान घराना होता था जिसका तात्पर्य व्यक्ति विशेष द्वारा प्रवर्तित संगीत की रिति या शैली से है। इसी परम्परा से संगीत की प्राचीन परम्परा सुरक्षित रही। दसू री आरे एकांतवासी संगीतज्ञ भी प्रशंसा के पात्र हैं जिन्होंने भौतिक सुख-सुविधाओं से दूर रहकर संगीत साधना की। इस घरानेदा पद्धति के अस्तित्व के कारणों में जो गुरू शिष्य के आपसी संबंध पर आधारित है। बहुत सारे गुण होते हुए इसमें कुछ अवगुण भी था। घराना के अन्तर्गत गुरू अपनी लगन एवं साधना से बनाई गई अपनी गायकी को शिष्य के कंठ में उतारने के लिए प्रयत्नशील रहता था। अंध-भक्ति के कारण ही शिष्य अपने गुरू का अनुकरण करने की अपेक्षा अंधानुकरण करने लगते थे, जिससे शिष्य की बौद्धिक परिपक्वता, संगीत प्रज्ञा एवं प्रतिभा की अवहेलना होती थी।

अभी के आधुनिक समय में आधुनिक यंत्रें, आधुनिक प्रसारण, दूरदर्शन, चलचित्र आदि से शिष्य आजादी से केवल गुणवत्ता शिक्षा ले रहा है। शिक्षण संस्थानों में कई प्रकार के गुरू आशीर्वाद मिलते रहते हैं।

शब्द कुँजी :- भौतिक, राज्याश्रित, अस्तित्व, एम्पलीद्युड, ऐमेज्योर, बुलेटिन, संगरक्षण

मुख्य बिन्दु :- संचार के अनेक उपकरण हैं, जिसमें प्रमुख रूप से समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकों, रेडियो, दूरदर्शन और केवल टी.वी आदि सम्मिलित हैं। मुख्य रूप में इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - मुद्रित माध्यम और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम।

मुदित माध्यम को प्रकाश में आये लगभग पाँच सौ वर्षों से अधिक हो चुके हैं जबकि इलेक्ट्रॉनिक माध्यम बीसवीं शदी की देन है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के आविष्कार के साथ ही संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व गति आयीं।

मुद्रित माध्यमः- सन 1450 ई. में जर्मनी में जॉन गुटेनवर्ग के मुद्रण का आविष्कार करते ही शिक्षित समुदाय के लिए संचार वरदान बन गया। विकसित देशों में समाचार पत्र जीवन के आवश्यक जुरूरतों में गिना जाता है। अमेरिका में 95 प्रतिशत लोग समाचार पत्र पढ़ते हैं, प्रेमियों के गणना में रूसी अखवार प्रथम है। भारत में सन 1780 ई. से अखवार का पदार्पण हो गया था। आज देश के प्रांत, क्षेत्र और भाष में दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तेजी से हो रहा है। अधिक से अधिक जानकारी हासिल करने के उद्देश्य से समाचार पत्र भी प्रत्येक वर्ग के लिए, उनकी इनछाओं के अनुरूप सामग्री मुद्रित कर रहे हैं। खेल, फिल्म, कला, बाजार, राजनीति, उठा-पटक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से संबंधित समाचार पत्रें के माध्यम से प्रदर्शित किये जाते हैं। समाचार पत्रें में प्रकाशित विज्ञापन भी संचार का प्रमुख अंग है, जो विभिन्न उत्पादों के संबंध में जानकारियाँ देते हैं। सामाजिक विज्ञापन, घातक रोगों से बचाव, सामाजिक प्रदुषणों के परिहार और एड्स से बचाव, टीकाकरण और स्वस्थ पेयजल को अपनाने की प्रेरणा। ध्रुमपान, नशीली दवाईयों का सेवन को त्यागने की मनसा सामाजिक विज्ञापन के उदाहरण हैं। देश के स्वतंत्रता-संग्राम में समाचार पत्रों का योगदान याद करने योग्य है। समाज-सुधार का हर

आन्दोलन समाचार पत्रों का हर आन्दोलन को अपना प्रवक्ता बनाता है। फिर भी प्रेस की अपनी सीमाएँ हैं। समाचार पत्र का संदेश निरक्षर लोगों तक नहीं पहुँच पाता। दूर-दराज के गाँवों तक भी समाचार पत्रों की पहुँच न हो पाना संदेश का पूरा संचार संभव नहीं हो पाता।

रेडियों :- इलेक्ट्रॉनिक संचार-माध्यमों में रेडियो अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है। यह एक ऐसा माध्यम है जो अदृश्य विद्युत तरंगों के द्वारा संदेश को एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेषित करता है। सूचना, मनोरजन, शिक्षा आदि के प्रसारण क्षेत्र में इस माध्यम ने विशेष ख्याति अर्जित की हैं। जवरीमल्ल पारीख के अनुसार रेडियों निरक्षरों के लिए भी एक वरदान है जिसके द्वारा वे सिर्फ सुनकर अधिक से अधिक सूचना, ज्ञान, और मनोरंजन हासिल कर सकते हैं। रेडियों की कीमत भी ज्यादा नहीं होने के कारण कमोबेस साधारण जनता के पास सुलभ हो पाती है। इसलिए पूरी दुनियाँ के देशों में रेडियों का अपना महत्व आज भी कायम है। 1895ई. में इटली के इंजीनियर गुगली एलमो मारकोनी ने रेडियो टेलीग्राफ के माध्यम से पहला संदेश प्रसारित किया। सन् 1864ई. में स्कॉटलैण्ड के भौतिकशास्त्री जैम्स क्लार्क मैक्सवेल ने रेडियो तकनीक के प्रारंभिक प्रयोग किया। इसके बाद 1888ई. में जर्मन भौतिक शास्त्री हेनरिच हट्र्स ने चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करके उन्हें स्थानांतरित करने में सफलता प्राप्त की। 1901ई. में पहली बार रेडियों तरंगों द्वारा पोर्थ कार्नवाल ने न्यू फाउण्डलैण्ड की 2000 मील की दूरी तक संदेश प्रेषण में सफलता प्राप्त की। सन 1906ई. में कनाडा के रेजिनाल्ड एच. फेसेन्डन सर्वप्रथम मानव की आवाज का प्रसारण किया। 1935 ई. में तत्कालीन देशी रियासत मसै : में एक स्वतंत्र रेडियों स्टेशन की स्थापना हुई जिसका नाम आकाशवाणी रखा गया। 1934 ई. में ग्रामीण मंच प्रसारण प्रारंभ किया गया। इकाई रेडियो कार्यक्रम ने आकाशवाणी जगत में नई हलचल मचा दी। आकाशवाणी ने भू-स्थिर संचार उपग्रह इन्सेट-2 बी की सहायता से इस कार्यक्रम का आरंभ किया था। इस तकनीकी से अनेक केन्द्रों के प्रसारण को पूरे देश में सूना जा सकता था। आज आकाशवाणी से अनगिनत चौनल हिन्दी समाचार बुलेटिन प्रसारित किये जाते हैं। इनमें से कई अन्तर्राष्ट्रीय चौनल पर प्रसारित होते हैं। वर्तमान समय में होम रेडियो, एमेनयोर द्वारा विश्व के दूसरे एमेनयोर रेडियो से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

रेडियो संचार व्यवस्था विद्युत तरगं ों के माध्यम से कार्य करती है।

रेडियो तरंगों पर संदेश भेजने के लिए दो तरीके प्रयोग में लाये जाते हैं -

'एम्पलीट्यूड माडुलेशन' (ए. एम) और 'फ्रीक्वैन्सी माडुलेशन' (एफ.एम.) ये दोनों लय के उतार-चढ़ाव के माध्यम हैं। प्रसार के उनच तकनिकी, स्पष्ट और मधुर आवाज, नियंत्रित लय, फ्रीक्वैन्सी माडुलेशन कहलाती है। प्रत्येक रेडियो स्टेशन तक प्रसारण करती है। संगीत संचार में सम्प्रेषण माध्यम अभी के दौर में विद्यार्थियों के लिए सबसे आसान एवं सुविधाजनक साधन है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. इण्टरनेट
2. शर्मा, पूजा, संगीत, पृष्ट संख्या - 3
3. मिश्र, डॉ. चन्द्र प्रकाश, संगीत में संचार-माध्यम, पृष्ट संख्या - 144 4. वहीं, पृष्ट संख्या - 146
5. वहीं पृष्ट संख्या - 147

विद्यालयीन शिक्षण में संगीत का अन्य विषयों के साथ अंतः संबंध : एक विश्लेषण

सोनम कुमारी

सारांश

संगीत शिक्षण में मात्र ज्ञानात्मक पक्ष का विकास करना मुख्य उद्देश्य नहीं है, बल्कि उसमें गत्यात्मक कुशलता का विकास भी आवश्यक है। प्राचीन काल में ज्ञान का विस्तार सीमित तथा संकुचित होने के कारण सभी विषयों का अलग अस्तित्व था किन्तु आधुनिक काल में शैक्षिक दर्शन तथा चिन्तन के विस्तार के संग सभी विषयों के पारस्परिक संबंध की अवधारणा को स्वीकारा जाने लगा। विद्यालयीन संगीत-शिक्षण में संगीत भी अन्य विषयों के साथ पारस्परिक संबंध बनाये हुए है। कुछ विषयों के साथ संगीत की निकटता को सहज ही देखा जासकता है। आगे इसकी चर्चा की गयी है।

संगीत का जिन विषयों के साथ विद्यालयीन शिक्षण के अंतर्गत प्रचलित है, उनका संतुलित प्रयोग किया जाना चाहिए। विद्यालयीन या विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षकों को सह-संबंध की उपादेयता एवं महत्व को ध्यान में रखते हुए सभी विषयों के सहअस्तित्व की भूमिका की सामान्य जानकारी रखना आवश्यक है, क्योंकि संगीत का क्षेत्र व्यापक है, असीम है। सह-संबंध वास्तव में कोई शिक्षण-विधि नहीं है, अपितु शिक्षा-दर्शन की विचारधारा है।

बीज शब्द- *संगीत, समाज, संस्कृति, ध्वनि, सांगीतिक, साहित्य, अंतःसंबंध।*

स्वतंत्रता के पश्चात् संगीत को पल्लवित और पुष्पित करने का श्रेय संगीत सम्मेलनों, संगीत की शिक्षण संस्थाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन, संगीत नाटक अकादमी, संगीत के ध्वन्यांकित रिकार्ड तथा कैसेट्स, सी.डी., पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि को जाता है। संगीत के शास्त्र और क्रियात्मक दोनों पक्षों के उत्थान के लिए विद्यालयीन शिक्षा को महत्वपूर्ण माना जाता है। संगीत शिक्षण में मात्र ज्ञानात्मक पक्ष का विकास करना मुख्य उद्देश्य नहीं है अपितु उसमें गत्यात्मक कुशलता का विकास भी आवश्यक है। प्राचीन काल में ज्ञान का विस्तार सीमित तथा संकुचित होने के कारण सभी विषयों का अलग अस्तित्व था। किन्तु आधुनिक काल में शैक्षिक-दर्शन तथा चिन्तन के विस्तार के संग सभी विषयों के पारस्परिक संबंध की अवधारणा को स्वीकारा जाने लगा। विद्यालयीन संगीत-शिक्षण में संगीत विषय भी अन्य विषयों के साथ पारस्परिक संबंध बनाये हुए है। कुछ विषयों के साथ संगीत की निकटता को सहज ही देखा जा सकता है।

संगीत और मनोविज्ञान का अंतःसंबंध- संगीत के अंतर्गत मनोविज्ञान के कुछ शब्दों का महत्व अधिक है, इन शब्दों में स्मृति, कल्पना, चिन्तन/ध्यान, रुचि को जानना आवश्यक है[1]-

स्मृति :- स्मृति के कारण ही सुन्दर प्रस्तुति

विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

हो पाती है। यदि रागों के लगने वाले स्वरों में यदि धोखे से भी कोई सुर गलत लग गया तो संपूर्ण प्रस्तुतिकरण का आनंद ही धूमिल हो जायेगा। इस प्रकार स्मृति के लिए स्मरण-शक्ति की भूमिका सांगीतिक प्रस्तुति के लिए परमावश्यक है।

कल्पना :- रागों की प्रस्तुति में सुर-लगाव का ढंग, बोल तानों का प्रयोग, मीड़ कण आदि का कलात्मक प्रयोग कल्पना के माध्यम से ही संभव हो पाता है।

चिन्तन या ध्यान :- चिन्तन या ध्यान भी मनोविज्ञान के अंतर्गत मानसिक प्रक्रिया है। श्रेष्ठ-गायन के लिए ध्यान की आवश्यकता होती है। यदि इस ध्यान में थोड़ी भी त्रुटि होती है तो रागों के स्वरूप में प्रतिकूल प्रभाव पड़ जाता है और प्रस्तुति स्तरहीन समझी जाती है। ध्यान-चिन्तन से ही अच्छे संगीतात्मक ज्ञान का अर्जन संभव है।

सीखना :- सीखने की दो प्रविधियाँ हैं- (1) समझ कर तथा (2) रटकर। किसी भी राग को नियमानुकूल सीखने के लिए उसमें प्रयुक्त होने वाले स्वर, वादी स्वर, संवादी स्वर, वर्ज्य स्वर आदि को पहले समझना पड़ता है, तत्पश्चात् हम रागों की बंदिश को रटकर सीख पाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान की मानसिक प्रक्रिया तथा सांगीतिक उपदान एक-दूसरे पर आश्रित हैं।

इस प्रकार मनोविज्ञान मानव के व्यक्तित्व-संबंधी विज्ञान का लेखा-जोखा है, तो संगीत ईश्वरप्रदत्त एक ललित कला का उपहार।

समाजशास्त्र और संगीत का संबंध

समाज की परिस्थितियों के अनुरूप संगीत बदल जाता है, जैसे वैदिक कालखंड में संगीत का सर्वाधिक रूप से प्रयोग ईश्वरोपासना के लिए किया जाता था किन्तु कालान्तर में समाज की रुचि के अनुसार यह विलासिता एवं मनोरंजन का साधन बन गया। आज संगीत का प्रयोग समाज के कल्याण के लिए, ख्याति अथवा यश के लिए, धनार्जन के लिए किया जाता है। आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो संगीत आज व्यक्ति और समाज दोनों के लिए एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक संस्कार के साथ संगीत जुड़ा हुआ है। यह हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। समाजशास्त्र और संगीत का अंतः संबंध संगीत और समाज के उत्स से लेकर अद्यपर्यंत है। समाज को अच्छी तरह जानने के लिए तत्कालीन संगीत को जानना आवश्यक है और संगीत की स्थिति को जानने के लिए तत्कालीन संगीत विषय को जानना भी आवश्यक है।

संगीत और विज्ञान का अंतः संबंध

संगीत और विज्ञान को ध्वनि-विशेष के परिप्रेक्ष्य में देखकर इसकी वैज्ञानिकता को समझी जा सकती है। ध्वनि के माध्यम से ही विभन्न भावों को प्रकट किया जा सकता है और विभिन्न भावों को प्रकट करने वाली ध्वनियाँ ही संगीत में व्यवहृत स्वरों का रूप धारण करती हैं और इसके परिणामस्वरूप सांगीतिक सात प्रमुख स्वर 'सा, रे ग, म, प ध नि' को जन्म देती है। विज्ञान ने ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार दी है- ''Sound is the effect on the ear of a wave like motion of an elastic medium cased by vibration. The vibrations impringe on the ear of human being or animal and set up a nervous disturbance which we call sound.[2]''

'ध्वनि' का अध्ययन भौतिक विज्ञान के अंतर्गत आता है। भौतिक विज्ञान में ध्वनि को

एक ऊर्जा मानते हैं। इसे यांत्रिक ऊर्जा का रूपान्तर रूप माना जाता है। हमारे शरीर में किसी प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करने में हमारा मस्तिष्क, ध्वनि-यंत्र (स्तलदग), कर्ण-यंत्र और फेफड़े की प्रमुख भूमिका होती है। पूरा श्वसन-तंत्र (Repiratory System) अपनी संपूर्ण मांसपेशियों के पेट से लेकर नाक तक ध्वनि उत्पन्न करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परन्तु इस कार्य में स्वर-यंत्र (Larynx) की भूमिका होती है। यह स्वर-यंत्र ग्रीवा के मध्य में स्थित श्वास नली की ऊपरी छोर में गले के पीछे न दिखायी देनेवाले हिस्से में रहता है। उसके ऊपर एक उपजीभ होती है, जो ढक्कन का काम करती है। यह मस्तिष्क के द्वारा संचालित होती है। स्वयंत्र के भीतर एक पत्ती (Reed) होती है, इसे स्वर तंतु (Vocal Cord) कहा जाता है। ध्वनि उत्पन्न करते समय इसमें कंपन होता है और ध्वनि या नाद उत्पन्न होता है।

इस प्रकार सुरमयी संगीत के अंतःसंबंध को देखा जाता है। चाहे वह वाद्य संगीत हो या कंठ संगीत दोनों ही ध्वनि पर अवलंबित है और ध्वनि-विज्ञान का उपादान है। अतः संगीत और विज्ञान का अंतः संबंध एक तरह से अविच्छिन्न है। अब तो बाजार में कई प्रकार के वैज्ञानिक सांगीतिक उपकरण मिलने लगे हैं, जैसे- सिन्थेसाइजर, इलेक्ट्रिक तानपुरा, ऑक्टोपैड इत्यादि।

संगीत और साहित्य का अंतःसंबंध

संगीत और साहित्य के अंतःसंबंध से हमारा तात्पर्य कंठ संगीत या गायन पक्ष से है; क्योंकि वाद्य संगीत केवल स्वरों पर आधारित होता है, और नृत्य मात्रा ताल, भाव, लय और अभिनय पर आधारित होता है। गायन और साहित्य का अंतः संबंध अत्यंत ही प्रगाढ़ होता है। बिना किसी भाषा के संगीत और साहित्य निर्जीव है। किसी भी भाषा पर ही कोई साहित्य आधारित होता है, चाहे वह संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली कोई भी। जब साहित्य सांगीतिक रूप गढ़ने लगता है, तो उसमें कोई-न-कोई भाषा माध्यम बनती है। इस प्रकार संगीत और साहित्य के बीच भाषा एक सेतु रूप में अपनी भूमिका निभाती है। भक्तकालीन कवियों में कबीर, सूरदास, तुलसीदास, रहीम, मीरा आदि ने साहित्य को तो समृद्ध किया ही, साथ ही सांगीतिक ज्ञान रहने के कारण संगीत को भी अपनी रचनाओं के माध्यम से समृद्ध किया।

जब किसी साहित्य में भाषा का स्तर ऊँचा होगा तो निश्चित रूप से उसका सांगीतिक स्तर और परिवेश भी उच्च स्तरीय होगा। चाहे संगीत में शास्त्रीय संगीत हो, सिनेमा का संगीत हो या सुगम संगीत हो, सभी में साहित्य के रूप में उत्कृष्ट साहित्यिकता अपना एक अलग विशिष्ट स्थान रखता है। किसी बंदिश, गीत, गजल या कव्वाली की लोकप्रियता का मुख्य कारण उनमें निहित भावनात्मक शब्दों के प्रयोग और दिल को छूनेवाले भाव के अभिनव छंदों के कारण होता है।

इस प्रकार, संगीत को उत्कृष्ट बनाने में साहित्य का और साहित्य को लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचाने में संगीत का महत्वपूर्ण योगदान है। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं और दोनों के बीच अंतःसंबंध सर्वस्वीकार्य है।

संगीत और चिकित्सा विज्ञान का अंतःसंबंध

अति प्राचीन काल से ही आयुर्वेद तथा गंधर्व वेद के माध्यम से सांगीतिक चिकित्सा प्रणाली विकसित हुई। शारीरिक या मानसिक थकावट या किसी प्रकार का मानसिक तनाव संगीत

सुनने के पश्चात् दूर किये जा सकते हैं। यह तो सर्वविदित है कि संगीत मन को आनंद और शान्ति प्रदान करने में सक्षम है। संगीत के प्रभावों को विश्लेषित करते हुए स्वामी प्रज्ञानंद जी ने कहा है- ''It should not be forgotten that music or musical culture is a true and surest means to purify the mind and hearts. The sweet tunes of the tones of music bring concentration and meditation in ones life easily.''[3]

संगीत में रोगी की संवेदनात्मक तथा बौद्धिक पहलुओं को उत्तेजित करने की शक्ति होती है। इसे सुनते ही रोगी की मनःस्थिति मौलिक कर्म से परिवर्तित हो जाती है। संगीत सुनने मात्र से रोगी में रक्तचाप प्रक्रिया आदि कई प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होने के साथ ही उसके ध्यान-भाव में वृद्धि होती है। सांगीतिक चिकित्सा के अंतर्गत कुछ मुख्य प्रभाव को इस प्रकार देखा जा सकता है- 1. तनाव में कमी, 2. एकाग्रता में बढ़ोतरी, 3. याददाश्त का बढ़ना, 4. ब्लडप्रेशर में कमी, 5. उतावलेपन में कमी, 6. चिड़चिड़ेपन में कमी। इन समस्याओं के निदान में संगीत की उपादेयता समझी जाने लगी है।

सन् 1962 में मानसिक रोगियों पर संगीत चिकित्सा के अच्छे प्रतिवेदन अंतर्राष्ट्रीय चिकित्सा परिषद् सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया। 1936-1938 के करीब लाहौर के डॉ. जे. पाल संगीत द्वारा रोगियों की चिकित्सा करते थे और उनकी संस्था का नाम था ''Musical Medical Institute''. उन्होंने संगीत-चिकित्सा पर कतिपय प्रयोग किए और पुस्तक लिखी।''[3] इस प्रकार संगीत एवं चिकित्साशास्त्र के संबंधों के आदिकाल से आधुनिक काल तक के अनेक दृष्टांत है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि ये दोनों एक-दूसरे से भी सम्बद्ध हैं और पूरक भी।4

संगीत और गणित का अंतःसंबंध-

संगीत में 72 थाट से सप्तक एवं सप्तक से 484 रागों की रचना तालों की मात्राएँ तथा विविध लयकारियाँ, श्रुति-अंतराल आदि गणित के नियम पर आधारित होते हैं। वाद्यों का निर्माण, स्वर-निर्धारण, नृत्य के अंग-संचालन में लय का निर्धारण गणित पर अबलंबित होते हैं।

रागों एवं तालों की रचना गणितीय गणना के आधार पर की जाती है। इस प्रकार संगीत तथा गणित के संबंध के अनेक उदाहरण हैं। प्राचीन ग्रीस में संगीत और गणित संयुक्त रूप से पढ़ाये जाते हैं।[5]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है, संगीत का जिन विषयों के साथ सह-संबंध विद्यालयीन शिक्षण के अंतर्गत प्रचलित है, उनका संतुलित प्रयोग किया जाना चाहिए। विद्यालयीन या विश्वविद्यालयीन संगीत-शिक्षकों को सह-संबंध की उपादेयता एवं महत्व को ध्यान में रखते हुए सभी विषयों के सहअस्तित्व की भूमिका की सामान्य जानकारी रखना आवश्यक है, क्योंकि संगीत का क्षेत्र व्यापक है, असीम है। सह-संबंध वास्तव में कोई शिक्षण विधि नहीं, अपितु शिक्षा-दर्शन की विचारधारा है।

संदर्भ सूची-

1. कुलकर्णी, वसुधा, भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, पृ.- 65-66, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1990
2. वेणु, डॉ. वनिता, वर्ष-1, अंक-2, अनहद लोक, पृ.- 192, संपादक : शुक्ला मधुरानी, व्यंजना, आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी, इलाहाबाद।
3. Prajnanada Swami, Music of Nations, p. 215ए स्रोतः अनछद लोक, वर्ष-1, पृ.- 23, संपादक : शुक्ला मधुरानी, व्यंजना, आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी, इलाहाबाद।
4. झा, मोहनानंद, संगीत शिक्षण के मूल तत्त्व, पृ. - 41-42, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, 2011
5. वही, पृ.- 41

रवींद्र संगीत पर शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत का प्रभाव

सुगंधा वर्मा

सार

ललित कला में सर्वोच्च 'संगीत कला' मानव जीवन के साथ प्रारंभ से ही जुड़ी रही है। यह भावाभिव्यक्ति का एक प्रमुख साधन है जो समय के प्रवाह के साथ ही विकासशील एवं गतिमान रही है तथा आज अपने वर्तमान स्वरूप में स्थापित है। किसी भी देश की संस्कृति एवं कला उसके सभ्यता का परिचायक होती है, इसी प्रकार भारतीय सांस्कृतिक परंपरा विभिन्न जातियों, धर्मों तथा विभिन्न संप्रदायों से संग्रहित हो, काल क्रमानुसार राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक कई उतार-चढ़ावों एवं परिवर्तनों को समेटे हुए एक विशेष संस्कृति एवं कला का चित्र प्रस्तुत करती है। विश्व में अग्रणी भारतीय सांगीतिक परंपरा रूपी वृक्ष समय के साथ विभिन्न पल्लवों से पल्लवित हो आज अपने वर्तमान स्वरूप में प्रतिष्ठित है। इसी क्रम में अपनी रचना में भावनात्मक प्रधानता तथा रचनात्मक गुणवत्ता लिए हुए बंगाल में विशेष रूप से प्रचलित 'रवींद्र संगीत' का नाम आता है जिसकी रचना का श्रेय कविरत्न एवं संगीतज्ञ के रूप में विख्यात 'रवींद्र नाथ ठाकुर' को है।

रवींद्र संगीत में भारतीय जनजीवन से संबंधित प्रत्येक पक्षों पर गीतों की रचना मिलती है तथा साथ ही इसमें शास्त्रीय संगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत, कर्नाटक, लोक संगीत, प्रांतीय संगीत व पाश्चात्य संगीत इत्यादि की विशिष्ट धुनों के आधार पर भी रचित गीत मिलते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में रवींद्र संगीत पर शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय संगीत के प्रभावों की उदाहरण के साथ चर्चा की जाएगी।

***उद्देश्य :** रवींद्र संगीत तथा शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत के संबंध के संदर्भ में उल्लिखित अवधारणाओं तथा विचारा के माध्यम से विषय से संबंधित उपयोगी तथ्यों एवं विचारों को प्रस्तुत करना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।*

***सूचक शब्द :** रवींद्रनाथ ठाकुर, रवींद्र संगीत, रचना, गीत, पद, शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत*

विषय प्रवेश

किसी भी सांगीतिक शैली में रचित गीतों में शब्द रचना, छद व स्वरांकन के साथ-साथ उसमें निहित भाव पक्ष एवं रंजकता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, जो संगीत को भावभिव्यक्ति के एक प्रबल माध्यम के रूप में स्थापित करता है। संगीत कला की इसी विशिष्टता के कारण मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक में जीवन का कोई भी सुख-दुःख का क्षण संगीत से अछूता नहीं रहा है, भले ही समय के साथ-साथ सांगीतिक अभिव्यक्ति की शैलियों में परिवर्तन हुए हों परंतु इसका उद्देश्य सदैव से ही भावों

गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, मो.नं. 9935989765,
ई-मेल : verma.sugandha13@gmail.com

से ही जुड़ा रहा है। भारतीय इतिहास पर यदि दृष्टि डालें तो विभिन्न बाह्य आक्रमणों के परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति पर बाह्य संस्कृति, साहित्य एवं कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है जिसने यहाँ के संगीत को भी पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। इन विभिन्न परिस्थितियों में भारतीय संगीत कभी अपने स्वर्णिम युग में रहा तो कभी इसका क्षरण भी हुआ। इसी कड़ी में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय संगीत एवं साहित्य को एक नई दिशा मिली 'रवींद्र संगीत' के रूप में।

''वह सुर ही तो है जो भोर के निःशब्द पक्षी के आगमन की सूचना देता है', यह शब्द कविरत्न 'रवींद्रनाथ ठाकुर' के हैं जिन्होंने संगीत की एक नई विधा को जन्म दिया, उस विधा का नाम है 'रवींद्र संगीत' जिसका प्रभाव समूचे पूर्वी भारत पर तो है ही अन्यत्र भी इसे गाया बजाया जाता है। सन् 1825 ई. को 'रवींद्रसंगीत' शब्द सर्वप्रथम प्रयुक्त किया गया।''[1]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा रवींद्र संगीत में रचित गीतों के बारे में जानने से पूर्व रवींद्र संगीत के आविर्भाव के संबंध में तथा इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालना आवश्यक है।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में यवनों के आक्रमण के परिणामस्वरूप उनकी संस्कृति एवं कला का प्रभाव देश के संगीत पर भी पड़ा। भारतीय सांगीतिक परंपरा में कई परिवर्तन हुए। मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से यहाँ के सांस्कृतिक, सांगीतिक एवं सामाजिक वातावरण में अध्यात्मिकता के स्थान पर शृंगारिकता (आमोद-प्रमोद) का साम्राज्य फैल गया। इन परिस्थितियों में भारतीय संगीत के संरक्षण हेतु संगीतज्ञों के पास एक मात्र साधन के रूप में 'राज्याश्रय' था। विशेष रूप से मुगल शासक अकबर के काल में भारतीय संगीत राज्याश्रय में पनपते हुए अपने स्वर्णिम युग में था परंतु इसके पश्चात सन् 1759 से 1896 के मध्य दिल्ली सल्तनत के विभिन्न उतार-चढ़ावों से उत्पन्न परिस्थितिवश दरबारी संगीतज्ञ राज्याश्रय त्याग कर अयोध्या, बेतिया, काशी नरेश तथा रीवा नरेश के दरबार में बस गए। 18वीं शताब्दी के अंत में कुछ संगीतज्ञ कोलकाता भी आए जिनमें तानसेन के वंशज ध्रुपद गायक उस्ताद बहादुर खान भी थे। उस्ताद बहादुर खान ने तानसेन की घराना परंपरा को अपने वंशजों तथा शिष्यों में प्रसारित किया था। इसी क्रम में ग्वालियर में सदरंग-अदारंग द्वारा प्रसारित ख़्याल गायन बंगाल की ओर भी प्रसारित हुआ तथा इस प्रकार बंगाल में शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार के साथ ही लोक साधारण के लिए सुगम रूप में भी संगीत की धारा प्रवाहित हुई जो 17वीं-18वीं शताब्दी में जात्रा, नाट गीत इत्यादि के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

18वीं तथा 19वीं शताब्दी में देश में राजनैतिक अस्थिरता की स्थिति थी। एक ओर मुगल शासन समाप्त हो रहा था तो दूसरी और अंग्रेज़ों तथा मराठा आदि शासकों में टकराव की स्थिति व्याप्त थी जो परिणामस्वरूप देश की संस्कृति को प्रभावित कर रही थी। भले ही कम ही रूप में परंतु पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ने लगा। इस समय कई लोग मातृभूमि तथा यहाँ की संस्कृति, साहित्य व कला इत्यादि की रक्षा के लिए संघर्षरत एवं प्रयासरत थे। स्वाधीनता के लिए चल रहे जन-आंदोलनों के प्रभाव से भारतीय संस्कृति को पुनः उच्चता की ओर अग्रसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। यह पुनर्जागरण का काल था। संगीत आदि कलाएँ भी जो बाह्य संस्कृतियों से संभवतः सबके अधिक प्रभावित हो, कई

वर्षों तक उपेक्षणीय रही थीं अब विकास की ओर उन्मुख हुईं।

भारत के इतिहास में 19वीं शताब्दी का उत्तरार्थ काल अत्यंत महत्त्वपूर्ण युग है क्योंकि 1850 से 1909 तक में ऐसे अनेक महापुरुषों का आर्विर्भाव हुआ जिन्होंने राष्ट्र के उत्थान हेतु विभिन्न कार्य किए एवं समर्पित रहे तथा साथ ही इनमें उत्साहवर्धन एवं ऊर्जा शक्ति के संचार हेतु विभिन्न कवि एवं संगीतज्ञ भी हुए। इसी काल में बंगाल की भूमि में जन्मे कवि रत्न एवं संगीतज्ञ–'रवींद्रनाथ ठाकुर' जिन्होंने अपनी रचनात्मक प्रतिभा से संगीत के क्षेत्र में एक नवीन आयाम स्थापित किया।

''श्रद्धेय गुरुदेव रवींद्रनाथ का जन्म 7 मई 1861, मंगलवार 2 बजकर 38 मिनट 37 सेकंड को उनके पैतृक भवन में हुआ। यह भवन द्वारकानाथ ठाकुर लेन चितपुर रोड पर स्थित है। वे महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर की चौदहवीं संतान (आठवें पुत्र) थे।''[2]

रवींद्रनाथ ठाकुर का जन्म जिस घर में हुआ वहाँ पही से ही सांगीतिक वातावरण था। उस्ताद बहादुर खान की ही शिष्य परंपरा से पखावज वादक जगतचांद गोस्वामी गुरुदेव रवींद्रनाथ के घर में संगीत शिक्षक के रूप में नियुक्त थे। रवींद्रनाथ के जन्म के पूर्व से ही ठाकुर परिवार शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार, सभ्यता एवं संस्कृति के साथ ही सांगीतिक तथा साहित्यिक रुचि व आर्थिक संपन्नता के कारण बंगाल के एक आदर्श परिवार के रूप में माना जाता था।

भारत में अंग्रेज़ी राज्य तथा कोलकाता में राजधानी की स्थापना के साथ ही ठाकुर वंश का भी अभ्युदय हुआ। ठाकुर वंश की दो प्रमुख शाखाएँ एक जोड़ासाँको में वह दूसरी पाथुरघाट में पनपने लगीं।

19वीं सदी में फैले नवजागरण का प्रभाव जोड़ासाँको ठाकुरबाड़ी पर भी पड़ा जिसका प्रमुख लक्षण धर्म संस्कार। था। इससे पूरे देश में राष्ट्रीयतावाद एवं देश प्रेम का विकास हो रहा था। इस धर्म चेतना का प्रभाव स्पष्टतः ठाकुरबाड़ी की संस्कृति में भी दिखता है जिसका श्रेय रवींद्रनाथ के पिता देवेंद्रनाथ को है जिन्होंने अपने परिवार में इस चेतना को लाने का सफल प्रयास किया।

स्वामी प्रज्ञानंद के अनुसार, "Calcutta particularly the poet's ancestral's place at jorasanko was the venue of the culture of classical music- Many leading and reputed Muslim and Hindu Musicians came at that time from Delhi and other places of North India and settled in Vishnupur, Hoogly and Calcutta etc"[3]

घर के संगीतमय वातावरण ने रवींद्रनाथ ठाकुर को संगीत के प्रति आसक्ति को प्रगाढ़ किया जिससे एक संगीतज्ञ के रूप में विकास हुआ।

रवींद्रनाथ कोमल भावनाओं के सम्राट थे। उन्होंने सूक्ष्म भावनाओं को प्रमुखता देते हुए अपने गीतों की रचना की। ईश्वरीय रचना, प्राकृतिक सौंदर्य इत्यादि विचारों एवं अनुभूतियों की गहराइयों को लेते हुए इन पर आधारित विभिन्न गीत रचे। रवींद्रनाथ ने प्राच्य से पाश्चात्य, देशी-विदेशी व विभिन्न क्षेत्रों इत्यादि स्रोतों से धुन ग्रहण किए व विभिन्न प्रांतीय गीतों के स्वरों को लेकर मूल गीतों के छंद व स्वर संगम को वैसा ही रखते हुए अपने कौशल्य से बांग्ला भाषा में गीतों की रचना कर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया। रवींद्रनाथ ने समाज के कल्याण एवं उत्थान से संबंधित विषयों के साथ-साथ जीवन से संबंधित लगभग सभी विषयों

पर गीत लिखे हैं। शांति देव घोष के अनुसार, ''मैंने कई बार देखा है कि गुरुदेव के अंतर्मन में जब गान रचना की प्रेरणा जागृत होती तब उसका क्या वेग था? एक के बाद एक गान की रचना करते ही चले जाते।''[4]

रवींद्रनाथ द्वारा रचित गीतों में वर्ण्य-विषय के आधार पर देखें तो प्रमुख रूप से पूजा से संबंधित गीत, प्रकृति से संबंधित गीत, स्वदेश प्रेम व प्रेम के गीत, अनुष्ठानिक गीत मिलते हैं तथा इनके अतिरिक्त मानव जीवन से जुड़े प्रायः सभी पक्षों व समाज के लगभग सभी विषयों पर रवींद्रनाथ द्वारा गीतों की रचना मिलती है।

पूजा से संबंधित गीत

रवींद्रनाथ द्वारा रचित पूजा से संबंधित गीतों में आत्मबोध, आध्यात्मिकता इत्यादि भावनाओं की प्रधानता रहती है। इसमें रवींद्रनाथ खैया, नैवेद्य तथा गीतांजलि के गीतों को रखा गया है, इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न उत्सवों यथा—वर्षा मंगल, शरदोत्सव, वसंतोत्सव, होली उत्सव, शिल्प उत्सव इत्यादि के लिए भी उन्होंने गीतों की रचना की।

प्रकृति प्रेम के गीत

जड़-चेतन दोनों का शब्द अलंकारणों द्वारा सुंदर चित्रण रवींद्रनाथ को एक महाकवि के रूप में स्थापित करता है। रवींद्रनाथ के प्रकृति संबंधी गीतों में पर्वत, सागर इत्यादि के उल्लेख के साथ ही प्रकृति का दृश्य-अदृश्य सौंदर्यात्मक वर्णन मिलता है।

''प्रकृति पर्व में गुरुदेव का पहला गीत 'विश्व वीणा राव मोहे विश्व जन' से प्रारंभ हुआ है। नृत्य, गीत और रूप एवं रस से भरे इस विश्व मंच पर नाट्योत्सव उनकी ऋतु रंगशाला है। ऋतुओं के भगौलिक गुण-दोषों के वर्णन एवं मानव स्वभाव को उनमें प्रतिबिंबित करते हुए उन्होंने उनमें मानव प्राण का संचार किया।''[5]

स्वदेश प्रेम संबंधी गीत

मातृभूमि के प्रति आस्था एवं प्रेम ही रवींद्रनाथ के देश प्रेम के गीतों का आधार है जिसमें सांप्रदायिकता का कोई स्थन नहीं है। सन् सन् 1902 में बंकिमचंद्र द्वारा लिखित गीत 'वंदे मातरम' का गुरुदेव द्वारा स्वरांकन व स्वीधीनता प्राप्ति के पश्चात देश का राष्ट्रगीत 'जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता' तथा 'आमार देशेर माटि तोमार परे ठीक माथा' व 'हे मोर पुण्य तीर्थ' इत्यादि गुरुदेव की उत्कृष्ट रचनाएँ उनके स्वदेश प्रेम के भावों को दर्शाती हैं।

प्रेम के गीत

रवींद्रनाथ ने अपनी रचना में मानव के प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा को अभिव्यक्त किया है। रवींद्रनाथ ने लिखा था कि ''जो सबसे नीच और अधम है वहाँ ईश्वर के युगल चरण विराजते हैं। जो इस सत्य को समीप से देख लेता है वह मानव मात्र के प्रति सच्चा प्रेम, निश्छल दया और भाईचारे की भावना रखता है।''[6]

रवींद्र के प्रेम काव्य वैष्णव धर्म की प्रेम भावनाओं से प्रभावित थे।

''बंगाल के प्रेम काव्य के महान रचनाकार नीधुबाबू, मधू खान और बिहारी लाल का रवींद्र गीतों पर गहरा प्रभाव माना जाता है।''[7]

अनुष्ठानिक गीत

विभिन्न अनुष्ठानों से संबंधित गीतों की रचना में रवींद्रनाथ ने नृत्य, नाट्य एवं गीतिनाट्य का प्रयोग विभिन्न कथाओं को प्रदर्शित करने केलिए

किया। चित्रांगदा, चंडालिका गुरुदेव की प्रख्यात रचनाओं में से हैं।

इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक, सामाजिक, वृक्षारोपण, मांगलिक पर्वों व जन्म-मृत्यु से लेकर मानव जीवन एवं समाज से संबंधित लगभग सभी विषयों पर उन्होंने लिखा है। वेद तथा उपनिषद के मंत्रों को बंगला में अनुवादित करउनका स्वरांकन करना तथासाथ ही कई रागों (लगभग 80) में भी रचनाएँ गुरुदेव जी द्वारा की गई हैं।

रवींद्र संगीत की रचनाओं पर शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत का प्रभाव

रवींद्रनाथ ने शास्त्रीय संगीत की विभिन्न गायन शैलियों का अनुसरण कर अनेक गीतों की रचना की। रवींद्रनाथ का मुख्य लक्ष्य संगीत के द्वारा भावों एवं अनुभूतियों की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति करना था। शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, कर्नाटक संगीत, लोक संगीत, पाश्चात्य संगीत इत्यादि सभी ग्रहीत विशिष्ट धुनों के आधार पर रवींद्र संगीत में रचित गीत मिलते हैं। विभिन्न सांगीतिक शैलियों की मूल रचनाओं को आधार बनाकर उनमें भाव पक्ष को प्रधानता देते हुए रवींद्र नाथ ने कई गीतों की रचना तो की परंतु गायन पद्धति अपनी ही रखी। शास्त्रीय संगीत के कई प्रचलित रागों तथा बंदिशों को आधार मानकर तथा उनकी गायकी अंग का पूर्णतः अनुसरण ना कर उनमें पदों को जोड़ते हुए गीत रचे जो 'रवींद्र संगीत' कहलाया। शास्त्रीय संगीत में ख़्याल व ठुमरी इत्यादि में रचित बंदिशों के साथ अलाप, तान, बोलतान, खटका, मुर्की इत्यादि कलाकार के कौशल्य के प्रतीक के रूप में है परंतु इन गीत शैलियों पर आधारित रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा रचित में इन गीत शैलियों पर आधारित रचनाओं में मुख्य पंक्ति जिसे 'टेक' कहा जाता है उसके साथ अन्य तीन पद जुड़कर 'पूर्णांग गीत' के रूप में स्थापित हुए।

रवींद्रनाथ की शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय संगीत पर आधारित रचनाओं में मुख्यतः पाँच गायन शैलियों—ध्रुपद, धमार, ख़्याल, ठुमरी तथा टप्पा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है जो इस प्रकार है—

ध्रुपद अंग

गुरुदेव रवींद्रनाथ के गीतों में ध्रुपद शैली का प्रभाव सबसे अधिक मिलता है। रवींद्रनाथ ने ध्रुपद गीत शैली को बचपन से ही आत्मसात किया इसीलिए उनको गीत रचनाओं में इसकी महत्ता एवं माधुर्य परिलक्षित होता है। रवींद्रनाथ ने कहा है ''हम बचपन से ध्रुपद को सुनते आ रहे हैं, उसका वैभव बहुत ही सीमा में अपनी मर्यादा की रक्षा करता है इस ध्रुपद गीत में हमने दो बातें पाई एक ओर उसकी विपुलता, गंभीरता एवं दूसरी ओर उसका आत्मादमन एवं सुसंगति के बीच अपने वचन की रक्षा करना।''[8] गुरु रवींद्रनाथ ने शास्त्रीय संगीत की विभिन्न गायन शैलियों का अनुसरण करके अनेक गीतों की रचना की है। ध्रुपद को रवींद्र संगीत में 'ध्रुपदांग' के रूप में जाना जाता है। रवींद्रनाथ ने कई उत्तरी ध्रुपद के गीतों को हिंदी से बंगला में अनुवादित कर उसके राग, ताल, छंद तथा रस आदि को पूर्ववत ही रखा परंतु उसमें कठिन लयकारी का प्रयोग नहीं किया। गीत के वर्ण्य-विषय में ईश्वरोपासना तथा प्रकृति संबंधी वर्णन इत्यादि मिलते हैं। अधिकतर ध्रुपद शांत रस से युक्त हैं। ऐसे गीत दो प्रकार के मिलते हैं एक तो वे हैं जो पुराने ध्रुपदों के गीतों के आधार पर है तथा दूसरे वे हैं जिनकी रचना ध्रुपद शैली के प्रभाव के कारण मौलिकता लिए हुए हैं। उदाहरणार्थ राग भूपाली में सुरफाक्ता

ताल में निबद्ध ध्रुपद की एक पुरानी बंदिश है—'प्रचंड गर्जन सजल वर्षा ऋतु' इसी पर आधारित राग भूपाली तथा सुरफाक्ता ताल में ही निबद्ध गीत है—'प्रचंड गर्जन आसिलो ए कि दुर्दिन'।

धमार अंग

भारत में ध्रुपद के समान धमार गायन भी बहुत प्रचलित रहा है जिसमें अधिकतर होली का वर्णन होता है तथा 14 मात्रा के धमार ताल में इसे गाते हैं। गुरुदेव रवींद्रनाथ ने इसके आधार पर भी कई गीतों की रचना की जैसे प्रचलित धमार 'डफ बाजत मोहन सब साजत नाचत' से मिलता जुलता गुरुदेव द्वारा रचित गीत है—'के रे ओइ डाकिछे'।

ख़्याल अंग

उत्तर भारतीय संगीत की ख़्याल गायन शैली का प्रभाव भी रवींद्र संगीत के 'ख्यालांग' गीतों के रूप में स्पष्टतः दिखता है। गुरु रवींद्रनाथ ने ख़्याल शैली की कुछ विशेषताओ को आत्मसात करते हुए भावभिव्यक्ति की प्रधानता को दृष्टि में रखकर गीतों को एक भिन्न एवं विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया, जिसकी चलन एवं धुन तो शास्त्री ख़्याल के समान है परंतु इनकी गान पद्धति रवींद्र संगीत की है। रवींद्र संगीत के इन ख्यालांग गीतों में शब्द, स्वर तथा भाव रस दोनों का समान महत्व होता है। शास्त्रीय ख़्याल से तुलनात्मक दृष्टि से इन गीतों में शब्दों के द्वारा भाव प्रदर्शन की प्रधानता रखते हुए जटिल अलंकारों, लयकारियों का प्रयोग न कर ताना का बोल तान के रूप में अल्प प्रयोग मिलता है। गुरुदेव द्वारा रचित ख्यालांग के गीतों व शास्त्रीय संगीत की प्रचलित बंदिशों में कुछ में तो पूरी समानता दिखती है परंतु इनके साथ ही कुछ ऐसे रचित गीत भी हैं जो ख़्याल शैली के मात्र नियमों का अनुसरण करते हैं। यह दोनों गायन शैलियों की भिन्नता को परिलक्षित करता है, उदाहरणतः शास्त्रीय संगीत में राग भूपाली की प्रचलित बंदिश 'बाजे रे मंदर बाजो' से मिलता जुलता गुरुदेव का ख्यालांग गीत 'ए की सुंदर शोभा' है, राग भैरव की प्रचलित बंदिश 'जागो मोहन प्यारे' के आधार पर 'मन जागो मंगल लोके', राग तोड़ी की 'कान्हा ना कर मोसे' बंदिश के आधार पर 'भव कोलाहल छाड़िए' तथा इसी प्रकार राग सहाना, राग रामकली, अड़ाना, बहार, भैरवी, बिलावल, समाज तथा मल्हार इत्यादि रागों की बंदिशों से मिलते जुलते कई ख्यालांग गीत हैं।

शास्त्रीय संगीत के ध्रुपद, धमार, ख़्याल के समान ही गुरुदेव रवींद्रनाथ की रचनाओं में टप्पा व ठुमरी गायन शैलियों का प्रभाव 'टप्पांगिक शैली' तथा 'ठुमरी मिलता है तथा वर्ण्य-विषय प्रकृति एवं पूजा से संबंधित होते हैं।

''बंगाल में पहुँचकर टप्पा दो अर्थों में प्रचलित हुआ एक तो गीत शैली जो 'टप्पा' कहलाई दूसरा मुरकियों व तानों का नाम 'टप्पा' हुआ। लोग रवींद्र संगीत सीखते समय यदि मुर्की या तान आदि का प्रयोग करना चाहते हों तो कहेंगे कि यहाँ 'टप्पा' लेना है।''[9]

गुरुदेव के टप्पांगिक रचित गीतों में 'ओ चाँद चोखेर जलेर लागलो जो आर' राग सिंधुरा में ताल दीपचंदी में निबद्ध उत्तरी टप्पा 'हो मियाँ जाने वाले' के आधार पर 'परवासैरवे के हाथ' राग पीलू 'बेनिजा जा रैन नींद' के आधार पर 'दिन जाए रे दिन' इत्यादि हैं।

उपशास्त्रीय संगीत की टप्पा शैली के पश्चात रवींद्रनाथ द्वारा रचित गीतों में विरह-व्यथा के भावमय वर्णन के रूप में ठुमरी शैली की अंतर्निहितता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

गुरुदेव के ठुमरी अंग के गीतों में 'खेलार साथी ववदाय द्वार खोला' राग खमाज में 'कई किछु कहरे' ठुमरी के आधार पर 'तुमिकीछू दिये जाओ' व इसके अतिरिक्त 'एरा पर के आपन करे', 'कि सुर बाजे आमार प्राणे' इत्यादि हैं।

गुरुदेव रवींद्र ने शास्त्रीय संगीत के ध्रुपद, धमार, ख़्याल व उपशास्त्रीय संगीत के टप्पा, ठुमरी इत्यादि शैलियों के अतिरिक्त तराना व सितार की गतों के आधार पर भी गीतों की रचना की है, उदाहरणार्थ राग बिहाग में 'चराचर सकलि मिछे माता—दारा दीम तनन' तराना के आधार पर यह रचित गीत तथा सितार की गतों पर जैसे राग देश में 'ऐसो श्यामल सुंदर', राग भैरवी में ''कोथाय छिली सजनी लो' इत्यादि हैं।

निष्कर्ष

भारत के इतिहास के पन्नों में संकलित युग-युगीन गाथाओं के आधार पर यह सहज रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय संगीतिक परंपरा रूपी सरिता में विभिन्न अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों ने भिन्न-भिन्न स्रोतों के रूप में काम किया चाहे वह भारतीय इतिहास का संक्रमण काल हो या नवजागरण काल। इन सभी परिस्थितियों से निर्मित अपनी विविधता के साथ भारतीय संस्कृति एवं कलाएँ आज विश्व में अग्रणी हैं तथा इनका एक विशेष स्थान है। संगीत ईश्वर प्रदत्त मानव को एक ऐसा वरदान है जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में सदैव ही मानव जीवन के प्रत्येक पक्षों से जुड़ा है तथा विभिन्न कालवधि के साथ तात्कालिक विविध तत्वों को आत्मसात करते हुए अपने विशिष्ट रूप में प्रतिस्थापित होता है जो इसकी विकासशीलता एवं परिवर्तनशीलता का प्रमाण है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण रवींद्र संगीत के रूप में भी मिलता है क्योंकि विभिन्न सांगीतिक विशिष्ट धुनों पर आधारित होने के बाद भी अपनी मौलिकता एवं रचनात्मकता को लिए हुए यह मानव जीवन से जुड़े विविध पक्षों के भावमय स्वरूप को संगीत को रूप में प्रस्फुटित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः—

1. वसंत, संगीत विशारद, सांगीत कार्याल, हाथरस उ.प्र. छब्बीसवाँ संकरण मार्च 2007, पृ. 680
2. सेन, डॉ. अनिता, रवींद्र संगीत, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल द्वितीय संस्करण 2005, पृ. 17
3. Prajnananan Swami, A Historical Study of Indian Music, p.382.
4. घोष, शांतिदेव, रवींद्र संगीत अनुवादक मदनलाल व्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण 1999, पृ. 19
5. वसंत, संगीत विशारद, सांगीत कार्यालय, हाथरस उ.प्र. छब्बीसवाँ संकरण मार्च 2007, पृ. 687
6. यमन, अशोक कुमार, संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन्स चंडीगढ़, प्रथम संस्कारण 2015, पृ. 592
7. वही
8. सेन, डॉ. अनिता, रवींद्र संगीत, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल द्वितीय संस्करण 2005, पृ 84
9. वही, पृ. 101

भारतरत्न पंडित भीमसेन जोशी : किराना गायकी में एक नया आयाम

Naval Kumar D. Jadhao

शोध सार

भारतीय अभिजात शास्त्रीय संगीत में किराना घराना शुरू से ही लोकप्रिय रहा है, जिसमें इस घराने के अनेक कलाकारों ने जैसे– उस्ताद अब्दुल करीम खान, उस्ताद अब्दुल वहिद खान, उ. फैयाज अहमद खान, उ. नियाज अहमद खान, सुरेश बाबू माने, हिराबाई बडोदेकर, सवाई गंधर्व आदी लोगों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 20वीं शताब्दी में भी अनेक प्रतिभावंत कलाकार होकर गए, जिनमें से पंडित भीमसेन जोशी ने इस घराने को प्रतिष्ठा दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐसा श्रोता वर्ग जो शास्त्रीय संगीत में रूचि नहीं रखता, उनको भी शास्त्रीय संगीत कि तरफ़ आकर्षित करने में पंडितजी सफल रहे तथा उन तक किराना घराने का नाम पहुँचाया। पंडितजी जिन-जिन गुरुओं से सीखे, उन सभी कि विशेषताओं को आत्मसात कर के उन्होंने अपनी नई गायन शैली विकसित की, जो किराना घराने की पारंपरिक शैली से भिन्नता रखती है। इस प्रकार पंडितजी ने किराना घराने को एक नया मोड़ देने का काम किया, यहीं स्पष्ट करने का प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा किया गया है।

शोध प्रविधी– *ऐतिहासिक एवं व्यक्तिवृत्त अध्ययन विधी।*

बीज शब्द– *किराना घराना, घरानेदार गायकी, भीमसेन घराना, गायकी-नायकी, भारतरत्न।*

भूमिका

भारतीय संगीत कि यह विशेषता है कि, यह शुरू से ही परिवर्तनशील रहा है। मुख्यता शास्त्रीय संगीत के पक्ष में देखा जाए तो समय-समय पर विभिन्न गेय विधाओ ने जन्म लिया है, जैसे– ऋचा गान, ध्रुवा गान, जाती गान, प्रबंध फिर धृपद तथा वर्तमान में खयाल। आधुनिक संगीत में ''ख़याल'' सर्वाधिक लोकप्रिय विधा बन गई है, यहाँ तक कि यह कहने में कोई दुविधा नहीं है कि, वर्तमान भारतीय शास्त्रीय संगीत ख़याल के ही नाम से जाना जाता है इसी ख़याल विधा में कुछ घराने (परंपराए) पाए जाते है, जिस में किराना घराना अपना एक प्रमुख स्थान रखता है। किराना घराने के गायन शैली कि कुछ असाधारण विशेषताओं ने श्रोताओं के हृदय में एक अन्यतम स्थान पाया है।

इसी घराने से अनेक प्रतिभावंत कलाकार होकर गए, जिन्होंने किराना कि गायकी को आसमान कि बुलंदीयो तक पहुँचाया, उन्हीं में से एक-'भारतरत्न पंडित भीमसेन जोशी'। पंडित जी ने किराना घराने की गायन शैली को एक अलग मोड़ देकर उसे सर्व सामान्य श्रोतावर्ग तक पहुँचाया।

MA-Music. UGC NET, Sangeet Visharad, Research Scholor, Sant Gadge Baba Amaravti University, Amaravti. , Address– At- Post Matargaon Bk., Tq-Shegaon, Dist- Buldhana, PIN-444304, Mobile No.-9011571597, Email ID- navalkjadhao@gmail.com

उन्होंने ने किराना धराने कि पारंपरिक शैली में कुछ बदलाव लाकर अपनी ख़ुद कि शैली का सृजन किया, जिस से ''किराना घराना अर्थात् पंडित भीमसेन जोशी ''ऐसा एक समीकरण सा बन गया है, यह उनकी प्रतिभा, कष्ट और साधना का उत्तम संकेत है।

किराना घराने की उत्पत्ति–

इस घराने की उत्पत्ति के बारे में निम्न मत-मतांतर पाए जाते है।

मत 1- इस घराने की शुरुआत सुप्रसिद्ध बीनकार बंदे अली खान से हुई, जो ग्वालियर घराने के सुप्रसिद्ध गायक उस्ताद हद्दू खान के शिष्य तथा दामाद थे। उस्ताद बंदे अली खान ने इसी गायकी को एक नया ढंग देकर ख़ुद कि शैली निर्माण कि, और उसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उस्ताद अब्दुल करीम खान तथा उस्ताद अब्दुल वहिद खान ने इस घराने को प्रतिष्ठा दिलायी, यहीं मत सर्वाधिक मान्य है।

मत 2- इस घराने के मूल पुरुष गोपाल नायक को माना जाता है, जो कि देवगिरी के राजा रामदेव के दरबार में दरबारी संगीतज्ञ थे। इन्हीं की शिष्य परंपरा में नायक धोंडू तथा नायक बन्नू आदि हुए, और इसी परंपरा से उस्ताद अब्दुल करीम खान और उस्ताद अब्दुल वहिद खान का संबंध जोड़ा जाता है। उस्ताद अब्दुल करीम खान उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर ज़िले के किराना नामक गाँव के मूल निवासी थे इसीलिए आगे उसको किराना घराने के नाम से जाना गया।

मत 3- उस्ताद अब्दुल करीम खान को ही इस घराने का मूल पुरुष माना जाता है।

किराना घराने की गायकी : स्वरूप एवं विशेषताएँ :-

मूलतः यह बिनकारो का घराना होने के कारण इसकी गायकी में लगाव, लोच और मींड का काम अधिक पाया जाता है। स्वरो का सुरीलापन इस गायकी कि मुख्य विशेषता रही है इसी कारण यह स्वर प्रधान गायकी कहलाती है। गायन में चैनदारी और धीमी बढ़त होती है। इस घराने के कलाकार आलापकारी और ठुमरी अंग में भी कुशल रहे है। स्वर उच्चारण के वैचित्र्य पर अधिक बल दिया जाता है परंतु ताल और लय के प्रति एक तरह कि उदासीनता पायी जाती है, अन्य घरानो कि भाती ताल पक्ष पर कम बल दिया गया है साथ ही लयकारी भी न के बराबर पायी जाती है। किराना घराने के गायको का सूर ऊँचा रहता है साथ ही उनका तार सप्तक कि तरफ़ झुकाव ज़्यादा देखने को मिलता है। बड़े-ख़्याल के गायन में लय अति विलंबित रखी जाती है, इस के साथ मध्य लय में एक से अधिक आवर्तन कि तानो का प्रयोग किया जाता है। इनकी तानकारी की कुछ विशेषताएँ है, जैसे– गले को हलका करके तार सप्तक में तान करना तान में गमक और खटके का प्रयोग कम और मुरकी तथा घसीट ज़्यादा होती है।

इस गायकी कि एक मुख्य विशेषता रही है जो है ''रेशम के समान मुलायम स्वराघात'' इसका उद्‌गम मुख्यता उस्ताद अब्दुल करीम खान से हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। उस्ताद जी के गायन में इसका प्रत्यक्ष दर्शन होता है, उनका गला पतला और बहुत ही मुलायम था, संभवता इन्हीं से इसका प्रारंभ हुआ होगा। इसी विशेषता को खान साहब के शिष्य परंपरा ने

आत्मसात किया तथा आगे बढ़ाया जिनमें– सुरेश बाबू माने, पंडित सवाई गंधर्व, फिरोज़ दस्तूर, गणपतराव गुरव आदि अनेक कलाकार शामिल है। इसी के परिणाम स्वरूप किराना घराने में अधिकतर गायको के गले पतले पाए जाते है, ऐसा कहा जा सकता है।

उस्ताद अब्दुल करीम खान साहब अपने भाई उस्ताद अब्दुल हक्क के साथ बहुत समय तक धारवाड (कर्नाटक) में भी रहे, वो कहा के कर्नाटकी संगीत शैली से भी प्रभावित रहे। उसी शैली कि कुछ विशेषताओं को खान साहब ने अपनी शैली में सम्मिलित किया।

पंडित भीमसेन जोशी : सांगीमिक आकर्षक लगाव साधना तथा सृजनताः-

पंडित जी का जन्म कर्नाटक कि माटी में, धारवाड ज़िले के ''गदग'' नामक गाँव में हुआ। पिता गुरुराज जोशी शिक्षक थे तथा माता रमा बाई भजन गायिका थी। घर में सांगीतिक माहौल होने के कारण पंडित जी को शुरू से ही संगीत में रूचि तथा उसके प्रति लगाव रहा। पंडित जी का संगीत कि तरफ़ खिंचाव इतना तीव्र और मज़बूत था जिसको निम्न दृष्टांत के तहत समझा जा सकता है।

पंडित जी को बचपन में जब कोई गाना सुनाई देता, बस उसी कि तरफ़ चल पड़ते। कई दफ़ा भजन मंडलियों के पीछे गाना सुनने के लिए जाते ओर घर का रास्ता भूल जाते, इसी तरह कई बार खो जाने पर उनके पिता उनको ढूँढ़ते हुए तंग आ चुके थे। फिर इस समस्या का समाधान करते हुए उनके पिता ने एक दिन सीधा उनके कुर्ते पर ही लिख दिया–''गुरुराजाचार्य को बेटा''। अब वह कही भी खो जाते तो कोई ना कोई उन्हें घर लाकर छोड़ देता।

गुरुओ कि खोज तथा संगीत के प्रति समर्पणः-

पंडित जी कि सांगीतिक यात्रा बड़ी ही कष्ट दायक रही है। उन्होंने संगीत कि प्रारंभिक शिक्षा श्री चानाप्पा से ली, कुर्तकोटी के निवासी थे, वहाँ उन्हें भैरव, भीमपलासी आदि रागो कि शिक्षा मिली उसके बाद पंडित श्यामाचार्य उनके दूसरे गुरु रहे जो बागलकोट के निवासी थे। श्यामाचार्य उत्तम शास्त्रीय गायक थे, जिन्होंने पंडित जी को गाने के साथ-साथ हार्मोनियम कि भी शिक्षा दी और साथ ही अपने एल्बम के कुछ गाने भी सिखाए जिनसे ही पंडित जी ने मंच प्रदर्शन कि शुरुआत कि।

दोनों गुरुओ से शिक्षा लेने पर भी संतुष्टि नहीं मिली। एक बार पंडित जी ने उस्ताद अब्दुल करीम खान साहब कि ''पिया बिन नहीं आवत चैन' यह झिंझोटी राग पर आधारित ठुमरी सुनी और इसी गाने ने उन्हें एक अच्छा गायक बनने के लिए प्रेरित किया, और वहाँ से पंडित जी अच्छे गुरु कि तलाश में घर से निकल पड़े। पंडित जी सर्वप्रथम ग्वालियर पहुँचे वहाँ उन्हें उस्ताद हाफिज अली खान कि सिफारिश से माधव संगीत विद्यालय में सिखने का अवसर मिला। फिर आगे वह कलकत्ता, लखनऊ, दिल्ली होते हुए रामपूर पहुँचे, वहाँ उस्ताद मुश्ताक हुसेन खान साहब से एक साल तक रामपूर सहेसवान घराने कि गायकी सीखी। बाद में वहाँ से चल पड़े ओर जालंदर पहुँचे, वहाँ उन्हें भक्त मंगतराम से धृपद गायकी सीखने का भी अवसर मिला। जालंदर में बाबा हरीवल्लभ संगीत समारोह आयोजित होता था (वर्तमान में भी हो रहा है), उस दौरान पंडित जी को अनेक ख्यातनाम गवैय्यो को सुनने का अवसर मिला, जिसमें उस्ताद अल्लादिया खान, उस्ताद फैय्याज खान, केसरबाई केरकर आदि लोग थे जिसका प्रभाव पंडित जी के गाने पर पड़ा। इसी समारोह

में एक बार पंडित जी कि मुलाकात ग्वालियर घराने के सुप्रसिद्ध गायक पंडित विनायकराव पटवर्धन से हुई, पटवर्धन जी कि सलाह लेकर पंडित जी किराना घराने के ख्यातनाम गायक तथा उस्ताद अब्दुल करीम खान के शिष्य पंडित सवाई गंधर्व (रामभाऊ कुंदगोळकर) कि तलाश में कुंदगोळ (धारवाड) जा पहुँचे। वहाँ गंडा बाँधकर गुरुकुल प्रणाली में पंडित जी कि तालीम शुरू हुई, और कुछ ही सालो में बड़े कष्ट ओर लगन से उन्होंने किराना घराने कि गायकी को आत्मसात किया।

पंडित जी कि गायकी : कंठ प्रकृति, विशेषताः-

पंडित जी कि आवाज़ अपनी शरीर प्रकृति के अनुरूप बलिष्ठ, दमदार तथा मोटी थी। उनकी आवाज़ में वजन तथा सुरो पर ठहराव अद्‌भुत था। उनके गले की ये विशेषतः थी कि जितनी भारी भरकम आवाज़ थी उतना ही तेज़ गला भी चलता था, जब वो अपने गायन कि शुरुआत करते तो कोई ये अंदाज़ा नहीं लगा सकता था कि इनके गले में तान है भी या नहीं (तान गा सकते है या नहीं) ओर जब वे तानकारी शुरू करते तो लोग ये भूल जाते कि ये वहीं गायक है जिसने इतनी ठहराव पूर्ण शुरुआत कि थी। पंडित जी कि दमसास के बारे में क्या कि कहना? अति विलंबित लय में एकताल, तीनताल जैसे तालो के 3-4 मात्राओं तक तथा मध्यलय/द्रुतलय के 4 से 7 आवर्तनो तक वो एक ही साँस में तान करते थे, संभवता ये उनकी शारीरिक कसरत का परिणाम रहा हो। हालाँकि पंडित जी ने शब्दों कि तरफ़ ज़्यादा ध्यान नहीं दिया क्योंकि, पारंपरिक मत के अनुसार उनकी भी यहीं मान्यता थी, कि शास्त्रीय संगीत में शब्दों कि तुलना में स्वर कि प्रधानता है, राग में वह सामर्थ्य है कि, वह शब्दों के बिना भी भावना को व्यक्त कर सकता है। पंडित जी का मंद्र सप्तक पर भी विशेष अधिकार था एक बार पाकिस्तान में एक सांगीतिक सभा के दौरान मारवा राग में अतिमंद्र सप्तक का धैवत लगाकर वहाँ के सभी गवैय्यो को चौका दिया था, तार सप्तक में भी पंचम तक कोई कष्ट न करते हुए जा सकते थे।

पंडित जी ने कई उस्तादो से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से तालीम ली थी जिनका प्रभाव उनकी गायकी पर दिखता है। शुरुआत के काल में पंडित जी धृपद भी सीखे उसका प्रभाव कुछ इस तरह हुआ कि जब वो खरज भरते है तो पूरी ताक़त के साथ खड़ी आवाज़ लगाते है जिस तरह धृपद गायकी में होता है। आलापी में बहुत जगह ''नोम-तोम'', ''रीना राना नोम'' का भी प्रयोग करते हुए नज़र आता है। उस्ताद अमीर खान साहब से भी पंडित जी बड़े प्रभावित थे, इसका खुलासा करते हुए वह ख़ुद बताते है कि ''अमीर खान साहब का असर हमारे गाने पर है''। पंडित जी डेढ़ साल तक उस्ताद मुस्ताक हुसेन खान साहब से रामपुर घराने कि भी तालीम लिए थे। जबकि पंडित जी ख़ुद कर्नाटक कि माटी से जुड़े थे तो जन्मतः ही उनके गायकी में कर्नाटक शैली कि कुछ विशेषताएँ जैसे कण, मुर्की तथा लोचशीलता आदि आ गई थी। उन्होंने अपने गायन में ठुमरी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया क्योंकि वह ठुमरी ही थी जिसने उन्हें गायक बनने के लिए प्रेरित किया। इन सबके अलावा उ. अल्लादिया खान, उ. फैयाज खान, केसरबाई केरकर, बेगम अख्तर आदि गायको का भी प्रभाव उनके गाने पर पड़ा। घराने कि नियमावली को शिथिल करते हुए वो कहते थे कि, ''अच्छा गायक एक अच्छा चोर होता है, जो सभी घरानो कि अच्छी चीज़ो को चुरा लेता है''।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है

कि, पंडित जी केवल किराना घराने तक ही मर्यादित नहीं थे।

किराना कि पारंपारिक गायकी तथा पंडित जी कि गायकी का तुलनात्मक विवेचनः-

किराना घराने में मुलायमता से आवाज़ लगाई जाती थी जब कि पंडित जी बड़ी कठोरता तथा ताकद के साथ आवाज़ लगाते थे। किराना के अधिकतर गायको के गले पतले और लचीले नज़र आते है, लेकिन पंडित जी का गला बिलकुल उनके विरुद्ध मोटा था। किराना में विलंबित के लिए एकताल, तीनताल अधिक प्रचलित थे उसी को पंडित जी ने आगे कायम रखा, उसी प्रकार किराना कि विलंबित लय को भी कायम रखा। ख़ास कर उ. अब्दुल करीम खान साहब के शिष्य गणो कि तानकारी में एक विशेषतः थी कि उसमें वज़न कम और धार ज़्यादा दिखती है तथा खटके का प्रयोग कम रखते हुए घसीट, लहक आदि चीज़े ज़्यादा दिखाई पड़ती है। (यह बिन अंग का प्रभाव मालूम पड़ता है)। किराना कि पारंपरिक शैली में तार सप्तक में गले को हलका (Falsetto) करके तान करने का प्रचलन था उसको पंडित जी ने हुबहू आत्मसात किया जबकि अपने गले की प्रकृति के अनुसार उनके लिए वह बहुत कठिन था परंतु उन्होंने लगन तथा साधना से ये हासिल किया। किराना में एक बात का बड़ा प्रचलन रहा कि—तीनों सप्तको में सहजता से गायन। परंतु पंडित जी का गला भारी (Bassfull) होने के कारण उनका झुकाव तार सप्तक कि तुलना में मंद्र सप्तक कि और ज़्यादा दिखाई देता है। किराना में सरगमो का प्रयोग अच्छी मात्रा में किया जाता था लेकिन पंडित जी ने उसे बहुत ही कम कर दिया। किराना कि गायकी स्वर प्रधान मानी जाती है और उसमें तालपक्ष कि तरफ़ उदासीनता पाई जाती है, लेकिन पंडित जी ने दोनों का सामंजस्य करते हुए अपनी कला को श्रोताओं के समक्ष रखा। किराने में लयकारी और तिहाईयो का प्रयोग नहीं किया जाता था परंतु पंडित जी ने उसको भी शामिल कर लिया।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि, पंडित जी ने किराना घराने कि पारंपारिक शैली में कुछ बदलाव करके अपनी नई शैली का सृजन किया।

पंडित जी का सांगीतिक योगदान तथा ''भीमसेन घराने'' कि संभावनाः-

शास्त्रीय संगीत के अलावा पंडित जी का फ़िल्मी संगीत में भी बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने कई फ़िल्मों में, कई भाषाओं में पार्श्वगायन किया, जिसके लिए आगे चलकर उन्हें National Award से भी नवाजा गया। भारत सरकार ने भारतीय राष्ट्रीय एकात्मता को बढ़ावा देने के लिए ''मिले सूर मेरा तुम्हारा'' इस गाने का निर्माण किया था जिसे पंडित जी ने गाया था तथा उसका संगीत निर्देशन भी ख़ुद ने किया था, परंतु प्रसिद्धि-लोकप्रिय के मोह को त्यागते हुए उन्होंने अपना नाम घोषित करने से इनकार कर दिया, यह उनकी स्वभाविक सरलता तथा नम्रता को इंगित करता है। जो भी हो इस गाने ने पंडित जी को देश के हर नागरिक के हृदय में स्थान दिलाया। और आज ऐसा कोई भारतीय नहीं होगा जो उनको न जनता हो।

पंडित जी श्रोताओ कि माँग, रूचि आदि से भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने सोचा कि, एक से डेढ़ घंटे तक एक राग सुनने कि क्षमता आज के श्रोताओ में नहीं रही है तथा सर्वसामान्य श्रोतावर्ग शास्त्रीय संगीत को समझने में सक्षम नहीं है और न ही वह उसमें रूचि रखता है। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए उन्होंने

मराठी भाषा में ''संतवाणी'' नामक कार्यक्रम कि शुरुआत कि। इसमें उन्होंने महाराष्ट्र के संत परंपरा के कुछ अभंग (भक्ति गीतो), भजनो को अलग-अलग रागो में संयोजित करके लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। जिसमें से कुछ प्रमुख अभंग है– माझे माहेर पंढरी, विठ्ठल गीती गावा, तीर्थ विठ्ठल क्षेत्र विठ्ठल। इस कार्यक्रम कि ख्याति इतनी हुई कि, एक बार दिल्ली से एक सरदार जी पंडित जी का गाना सुनने के लिए आए और उन्होंने फर्माईश कि–''पंडित जी एक विठ्ठल का गाना सुनाइए''। इस तरह से उनका यह प्रयोग लोगों को शास्त्रीय संगीत कि तरफ़ आकर्षित करने में सफल सिद्ध हुआ। इसी तरह एक प्रयोग उन्होंने कन्नड़ भाषा में किया जिसका नाम ''दासवाणी'' था।

पंडित जी के कुछ प्रिय राग रहे है जिन्हें उन्होंने ज्यादातर गाया जिनमें–शुद्ध कल्याण, मिया कि तोडी, पुरिया धनाश्री, मुलतानी, भीमपलासी, दरबारी, मालकंस, अभोगी, ललित, यमन, आसावरी तोडी, मिया कि मल्हार, रामकली आदि है। साथ ही उन्होंने कुछ रागो का सृजन भी किया, जिसमें– कलाश्री, ललत भटियार, मारवा-श्री आदि है। पंडितजी का गाया हुआ ''राम का गुणगान करिए'', ''बाजे रे मुरलिया बाजे'' हर भक्त गुनगुनाता है। पंडित जी कि इसी प्रतिभा को तराशते हुए सन् 2001 में उनको भारतरत्न पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

आज पंडित जी कि शिष्य मंडली उनकी परंपरा को आगे बढ़ा रही है जिनमें कुछ अग्रणीय नाम निम्न है– माधव गुडी
प्रो. बलदेवसिंग बाली,
नारायण देशपांडे,
श्रीकांत देशपांडे (सवाई गंधर्व के पौत्र)
उपेंद्र भट,
डॉ. हरीश तिवारी,
अनंत तेर्दल,
श्रीपाद पाडीगर,
श्रीनिवास जोशी (पंडितजी के पुत्र),
आनंद भाटे आदि।

पंडित जी के शिष्यगण जिस तरह से उनके शैली/गायकी को आत्मसात कर आगे बढ़ा रहे है, उससे यह संभावना नज़र आती है कि, भविष्य में भीमसेन जी का एक स्वतंत्र घराना प्रचलन में आ सकता है। उन्हीं के शिष्य पंडित उपेंद्र भट कहते है कि, ''लोग कहते है मेरा किराना घराना है बल्कि मैं यह कहता हूँ कि मेरा घराना–''भीमसेन घराना'' है। उनका यह कथन ही मेरे उपरोक्त कथन का आधार है।

आज समाज के सर्वसाधारण व्यक्ति के जुबान पर भी किराना घराने का नाम है, इस बात का संपूर्ण श्रेय पंडितजी को ही जाता है।

निष्कर्षः-

किसी भी घराने कि पारंपरिकता (मूल गायन शैली) को बनाए रखने के लिए नायकी (मूल गायन शैली) को बनाए रखने के लिए नायकी (गुरु का हुबहू अनुकरण) आवश्यक है। और नए घराने का सृजन करने के लिए गायकी (ख़ुद के शैली का विकास) आवश्यक है। किराना घराने में अनेक प्रतिभावंत कलाकार हो कर गए परंतु उन्होंने नायकी को अपनाया, पंडित भीमसेन जोशी जी ने किराना घराने को प्रतिष्ठा दिलाई इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन किराना कि पारंपरिक गायकी तथा पंडित जी कि गायकी में बहुत अंतर है अर्थात् हम यह कह सकते है कि उन्होंने गायकी को अपनाया। प्रायः वर्तमान में हम विश्वास के साथ कह सकते है कि पंडित जी ने किराना कि गायकी में एक नया आयाम जोड़ा है।

संदर्भ सूचीः-

(1) मिश्र, शंभुनाथ; (2014), हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की घराना परंपरा, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ-76
(2) देशपांडे, वा.ह.; (2019), घरन्दाज गायकी, मौज प्रकाशन, पृष्ठ-25
(3) टाक, डॉ. तेजसिंह; (2018), नेट संगीत, ल्यूमिनस बुक्स वाराणसी, पृष्ठ-98
(4) बसंत; (2020), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, पृष्ठ-384
(5) Biography of Pt. Bhimsen Joshi
(6) Pt. Bhimsen Joshi Documentary By Guljar
(7) पंडित जी के पूर्व संग्रहित साक्षात्कार

The Role of Design and Graphics to Enhance the Interest of Readers in the NewspApers (Print and Online Editions)

Sarveshwaram Krishnam and Dr. Kaushal Tripathi*

ABSTRACT

All the medium of mass communication has its own importance but a newspaper has its special signification. Due to reliability and objectivity people trust it more than other mediums. Although newspapers have always focused on in-depth reporting and background information, the emphasis of newspapers is now on news analysis as well. Resultant people wait for the newspaper next day to read the same news which they have already seen on other medium also.

Well – designed newspaper not only pleases the eyes and attract the reader but also guide the reader to read the newspaper in better way. The design has also helped newspapers to survive in this era of tough competition with audio-visual medium. Use of design elements makes a newspaper more attractive and meaningful. It helps the readers to understand the complex matter and they can be tied up with the newspaper for a longer time with the use of good design. Effect of the design is now so penetrating that use of design can't be ignored in the publication of a newspaper.

In the present paper, the role of design and graphics to enhance the interest of readers in the newspapers (print and online editions) has been analysed. The survey method has been used for this research. The survey has shown that colour page or visual attract the reader more. It was also revealed in the survey that main points of news in blurbs and bullet points help the reader. Most of the respondents in the survey were in agreement with this that the use of graphics, illustrations and animation changed the look of newspapers and a better designed newspaper can attract the reader more.

Key Words: *Newspaper, Design, Visual, Colour, Graphics.*

INTRODUCTION

The designing of newspapers not only makes it aesthetically good-looking or enhances its attractiveness but it also helps the readers in reading the newspaper properly. It guides the

Research Scholar, Bhaskar Institute of Mass Communication and Journalism, Bundelkhand University, Jhansi-284128 (UP)

*Assistant Professor, Bhaskar Institute of Mass Communication and Journalism, Bundelkhand University, Jhansi-284128 (UP)

readers to reach the content of their interest. More and more visuals are being employed to entice readers into a newspaper. With the help of design, important points of news or information could be highlighted which help the reader to understand the whole story in very less time. Elements of design create and maintain curiosity among readers. Some of its elements like picture, cartoon, etc., break the monotonous of black and white text and give happy, sad and anger feel to the newspaper reader. The readers may perceive newspapers that use spot color and soft – news pictures as more appearing than the ones that do not do so. (Morris & Haught, 2018) (Smith, 1989)

Graphics helps the readers to easily understand any incident or large volume of data which is quite difficult to understand with words. The researchers studied the role of design and graphics to enhance the interest of readers in the newspapers through the survey. Findings from the answers to the questions included in the questionnaire are being given in the analysis.

SIGNIFICANCE OF RESEARCH

This research will be of use to both – media educators and media practitioners; the former will benefit by getting the hindsight view of how design have been used over the years in response to market and technology needs while the latter will benefit by making themselves future ready for emerging demands for changes in the use of design.

LITERATURE REVIEW

Edgar Shaohua Huang in his article **Professionalizing Online News Photo Presentations** says that online newspapers can win over both photo – loving and text – oriented readers by manipulating "number, size, and location of photos, using linkable photos and photo galleries, and maintaining consistency of photo presentations". (Huang, 2003)

Xigen Li in **Web Page Design Affects News Retrieval Efficiency** suggests that readers will' be able to retrieve news more efficiently if their needs are integrated into the design of the online newspaper. (Li, 2002)

Pasternack and Utt analyzed the **Subject Perception of Newspaper Characteristics Based on Front Page Design** and noted that the more traditional papers were perceived more informative, responsible and professional whereas the more elegantly designed papers were perceived as more readable. However those using the modern format received higher overall quality ratings than those using more traditional formats and designs. (Pasternack & Utt, 1986)

Pasternack and Utt found in **A Study of America's Front Pages: How They Look** that 94.8% editors

were concerned with the look of their papers as they believed that a "good looking" newspaper was a differentiating factor in a competitive environment. They rated the "use of graphs and maps, placement of largest photograph and body type size as the elements most noticeable to readers". (Pasternick & Utt, 1983)

Chic Bain and David H. Weaver in **Readers' Reactions to Newspaper Design** found that a high story count on front pages is counter – productive. A newspaper is likely to get higher readership by keeping jumps to a minimum and running larger pictures. The study also shows that news stories are more read if they start and end on the same page. It was also found that larger photos attract more readers to accompanying stories. (Bain & Weaver, 1979)

Theresa G. Siskind studied **The Effect of Newspaper Design on Reader Preferences** and found that respondents preferred contemporary to traditional designs and well-designed pages to those of average design. The findings of his research study lead to the tentative conclusion that "in order to appeal to reader preferences, newspaper owners and staff members should be concerned with quality of design as well as contemporaneity". (Siskind, 1979)

OBJECTIVE

Objective of this paper is to study the role of design and graphics to enhance the interest of readers in the newspapers (print and online editions).

METHODOLOGY

The researchers used survey method for this objective. For conducting the survey, questionnaire has been prepared by the researchers. In selecting respondents Purposive Sampling technique a type of Non Random Sampling is used. Population for the survey study is eighteen plus individuals reading newspapers regularly and people from media fraternity. Survey based on structured closed end questionnaire has been done for collection of data. Further, online survey has been done for collection of data. In this survey, a total number of 204 responses have been received. After collection of data, editing and correction of the data have been done by the researchers. Out of that two responses have been excluded due to responses having been filled twice by two respondents. So one from each respondents included and one from each respondents excluded. On the other hand, two responses have not been found up to the mark and so these two responses also excluded. A total number of 200 responses have been kept for the analysis. Nominal data is collected from the survey. Mode is used for central tendency and cross tabulation analysis method is used.

Operational Definition

Online Edition: Online edition or online newspaper stands for website or portal of the newspaper. Online edition/newspaper does not mean E – paper of any newspaper.

ANALYSIS

Gender

Chart 1: Gender ratio of respondents

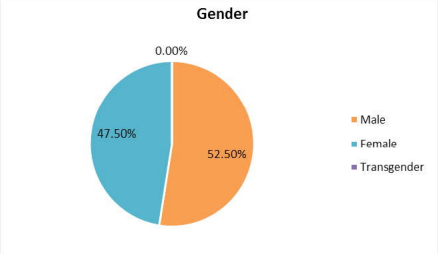

In the survey, out of 200 respondents 52.50% were male and 47.50% were female. Representation of transgender respondent was nil in the survey. Accordingly the number of male respondents was 105 and that of female respondents was 95.

Age Group

Chart 2: Age group ratio of respondents

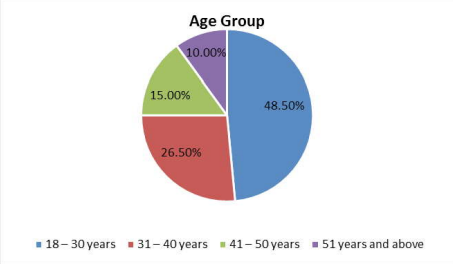

Out of a total of 200 respondents, 48.50% were in the 18 – 30 age group, 26.50% in the 31 – 40 age group, 15% in the 41 – 50 age group and 10% respondents were 51 years of age or above.

Educational Qualification

Chart 3: Educational qualification wise ratio of respondents

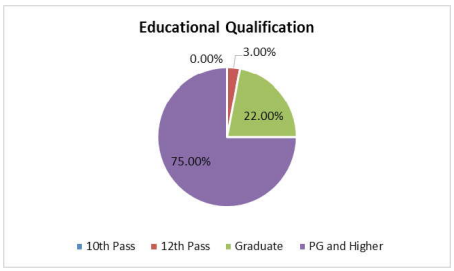

In the survey, out of total of 200, 75% respondents were possessing Post-graduate or higher qualification, 22% respondents were graduates, the percentage of 12th pass respondents ratio was 3% and no respondent participated below the 12th pass qualification.

Profession

Chart 4: Respondents ratio profession – wise

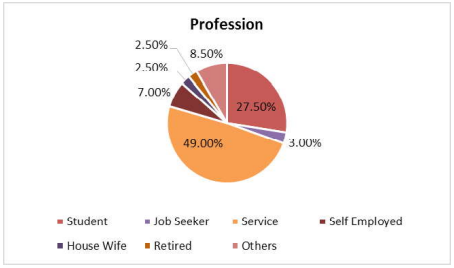

Researcher has divided profession in seven different categories for the survey. From the chart, it is clear that

27.50% respondents were from the student category, 3% respondents participated from job seekers category, 49% respondents belonged to the service class, 7% respondents were self – employed, housewives' share was 2.50%, the retired category respondents were 2.50% while other professions category of respondents stood at 8.50% of the total.

Newspaper reader edition-wise

Chart 5: Edition – wise newspaper reader ratio

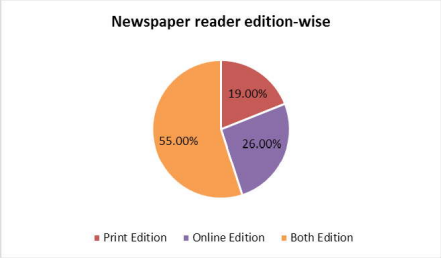

Options of respondents about three categories (namely print edition, online edition and both editions) were taken for dividing newspaper readers in different categories. When respondents were asked that which edition of newspaper they read, it was found in the survey that 55% respondents were reading both edition of the newspaper, 26% respondents reading only the online edition while the remaining 19% of respondents were reading only the print edition.

Newspaper reader sees/reads first in the newspapers

Chart6: Newspaper reader see/read first in the newspaper.

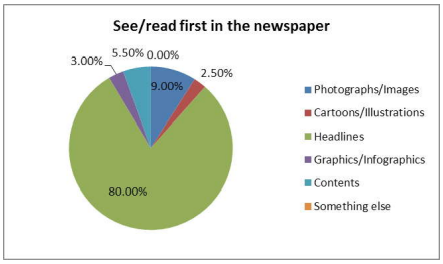

It was found that 80% respondents read headlines first in the newspaper, 9% readers see photograph/image first, 5.50% readers read content first, 2.50% readers see cartoons/illustration first and 3% readers see graphics/ infographics first in the newspaper. It is revealed from the survey that maximum number of readers see headlines first in the newspapers.

Elements attracts reader more in a newspaper

Chart 7: The elements, which attract more in a newspaper to the reader

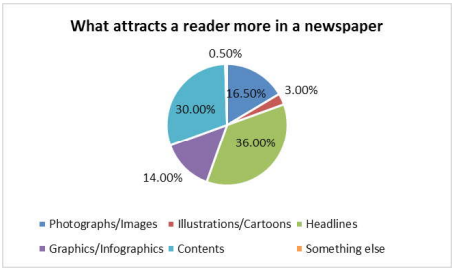

When respondents were asked that what attracts them more in a newspaper, there was mixed response. 16.50% said that photographs/images

attracts them more, 3% went for illustration/cartoons, 36% respondents, which was the highest, said that headlines attracts them more, according to 14% respondents graphics/infographics attracts them more, 30% said contents attracts them more and 0.50% respondents said that neither of above attracts them more and they selected something else as option.

Colour or black and white attract the readers more

Char 8: Kind of pages/visuals attract more in newspapers

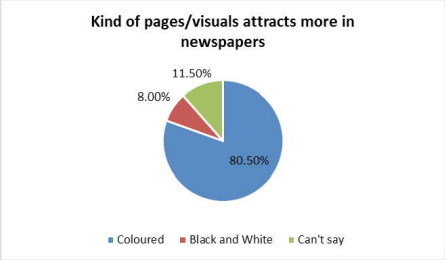

A large number of respondents accepted that colour page or visual attract them more in comparison to black and white, when they were asked as to which kind of pages/ visuals attract them more in the newspapers. An overwhelming 80.50% respondents, which is more than three – fourths of the respondents, said that colour page or visual attract them more while only 8% said that black and white attract them more and 11.50% respondents were undecided about this.

Main points of news in bullets or blurbs help more

Chart 9: Bullets and blurbs attract and help the reader

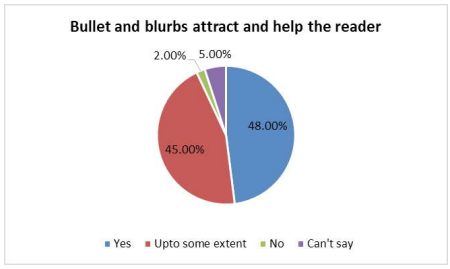

Respondents have accepted that main points of news in bullets or blurbs attract/help them more. Around half of the respondents i.e. 48% accepted that bullets and blurbs help them read more efficiently. Out of total 200 respondents, 45% accepted that it attract them up to some extent. Only 2% said that these elements are not attracting them at all while 5% were undecided on this question.

Use of graphics, illustrations and animation changed the look of newspapers

Chart 10: Graphics, illustrations and animation changed the look of newspapers

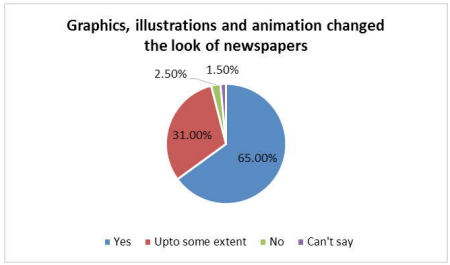

Most of the respondents agreed

with this that the use of graphics, illustrations and animation changed the look of newspapers. 65% of them clearly said 'yes' that these elements changed the look of newspapers while 31% were of the view that it was effective up to some extent. Only 2.50% were not in agreement with this. Among the total, 1.50% respondents were not in a position to decide and selected 'Can't say' option.

Different segments of news/ information on the home page helps the reader in searching of news/information easily

Chart 11: Different segments of news and information on home page helps the reader

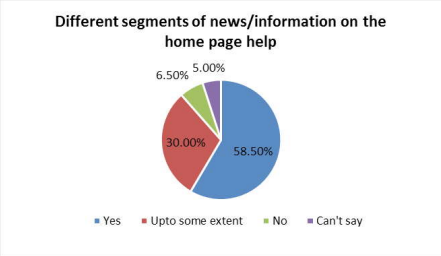

It was found in the survey that maximum readers believed that in an online newspaper, different segments of news and information arranged on the home page help the readers in searching for news and information easily. When asked if different segments of news/information on the home page helped them in searching for news/information easily, 58.50% respondents said that it helps them in searching of news and information easily while 30% said that up to some extent it helps. But, 6.50% were not in agreement with this and they said that it didn't help. Rest 5% was not in position to decide.

Links of related news stories helps the reader

Chart 12: Links of related news stories helps the reader

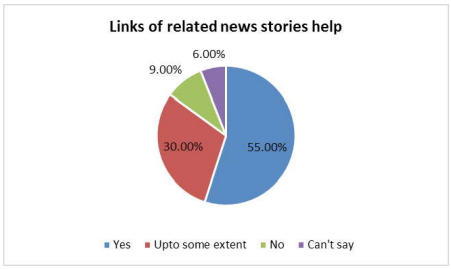

When respondents were asked about whether links to related stories in an online newspaper helped them read better, 55% respondents said that it helped them; 30% respondents said that only up to some extent it helped them but 9% said that it didn't help them while 6% opted for 'can't say' option.

Video clipping with news story attracts the reader

Chart 13: Video clipping with news story attracts the reader

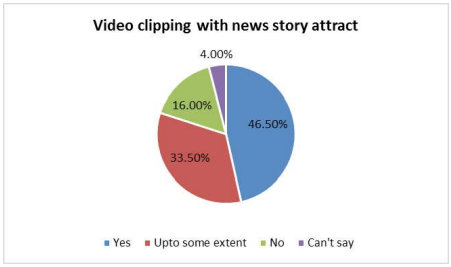

It has been revealed from the survey that in online newspaper, video clipping with news story attracts the readers. When respondents were asked that in online newspaper, whether video clipping with news story attract them, 46.50% respondents accepted that video clipping attracts them. 33.50% said that up to some extent it attracts them. 16% said that it didn't attract them while 4% were undecided about it.

Readers can be attracted more towards the newspaper for reading by better designed newspaper

Chart14: Better designed newspaper can attract the reader

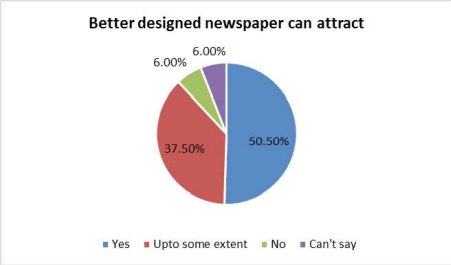

When it was asked that whether better designed newspaper could attracted them more towards the newspaper for reading, out of total of 200 respondents, more than half, i.e., 50.50% said that better designed newspaper could attracted them more while 37.50% said that only up to some extent it could attracted them more. However 6% said that better designed newspaper couldn't attract them more and6% said that they 'can't say'.

CONCLUSION

In the survey, it was found that majority of readers read headlines first in the newspapers. There was mixed response to the question as to what attracts the reader more to the newspaper. Majority of respondents accepted in the survey that colour pages or visuals attract them more. It was revealed in the survey that main points of news in blurbs and bullet points attract and help the reader. Although 48% were completely agreed that these elements of design help them while 45% said that it help only up to some extent. Most of the respondents in the survey were in agreement with this that the use of graphics, illustrations and animation changed the look of newspapers.

Most of the readers believed that in online newspapers, different segments of news and information on the home page helps the readers in searching for news and information easily. More than half of the respondents agree that getting the links of related news stories, while reading the news, help them. It was revealed in the survey that in an online newspaper, video clipping with news story does attract the reader. It was also found that a better designed newspaper can attract the reader more towards it.

REFERENCES

- Bain, C., & Weaver, D. H. (1979). Readers' Reactions to Newspaper Design.

Newspaper Research Journal, 48 - 59.

- Huang, E. S. (2003). Professionalizing Online News Photo Presentations. *Visual Communication Quarterly*, 4-11.
- Li, X. (2002). Web Page Design Affects News Retrieval Efficiency. *Newspaper Research Journal*, 38-49.
- Morris, D. L., & Haught, M. J. (2018). America's Front Pages A 30 Year Update. *Newspaper Research Journal*, 105 - 120.
- Pasternack, S., & Utt, S. H. (1986). Subject Perception of Newspaper Characteristics Based on Front Page Design. *Newspaper Research Journal*, 29-35.
- Pasternick, S., & Utt, S. H. (1983). A Study of America's Front Pages: How They Look. *Annual Meeting of the Association for Education in Journalism Mass Communication*, (pp. 1-40). Corvallis.
- Siskind, T. G. (1979). The Effect of Newspaper Design on Reader Preferences. *Journalism Quarterly*, 54-61.
- Smith, R. F. (1989). Black & White. Unread All over?: How Design & Color Affect Reader Judgment of Newspapers. *Newspaper Research Journal*, 75-85.

Esraj: A Brief Study

Dr. Krishnendu Dutta

'Haas chilo Sajaaru (Byakaron maani na)
Hoe gelo Haasjaaru kemone ta jani na'[1]

ABSTRACT

The Esraj is a very beautiful sounding musical instrument. There are many sources from which its name could have come from and it itself has many different names. It can be used both as an accompanying instrument as well as a solo instrument. The different Gharanas of the Esraj are Banaras, Gaya, Keramat Kukuv Khan, Imdadkhani and Bishnupur. It is classified as a Tatbadya in Indian musical instrument classification. The Esraj comprises of many physical parts. In today's world the Esraj is a very popular instrument. It has become famous not only in India but in foreign countries also.

Keywords- *Esraj, musical instrument, gharana, parts, artistes*

INTRODUCTION

'Aabol-Taabol'- a famous poetry of Sukumar Ray where the words like "Bakachhap" or "Haaszaru" are how much a kind of "hotchpotch" word is imaginable. But if the sitar and sarangi are merge imaginary, it creates such a structure what really creates a beautiful sound. Especially the extended notes with *aans* or *sut* along with meer is expressed in esraj impeccably.

Though esraj is rare but it is known by different names. Many people think, it is named by the name of Ishwari Maharaja of Banaras. Kshetra Mohan Goswami called esraj as "Aasuranjani". Esraj is named 'esrar' in the book "Aasuranjani tattwa". In other opinion, the word esraj is evolved from the word 'ayen-sin-re-ayen-zim' i.e., enlightment. The other names of esraj according to the shape are 'Mandrabahar', 'Naadtarang'. Other than this, esraj is also known as 'Mayuri', 'taaus', 'Taj', 'Bhas' or 'Surobhas'. The ancient shape of esraj 'Dilruba'[2] is a very popular instrument in Punjab. 'Sarinda' of Bangladesh is similar to esraj. The similar instruments to esraj are 'Surasanga'or 'Sursoun', 'Minsarangi' or 'Koyel'. 'Tarsanai' is derived by adding a gramophone sound box at the 'tabali' part of the esraj.[3]

Address: Department of Music, near IGNOU building, Sikkim University, 5th mile, Samdoor,Tadong, Gangtok, Sikkim, India. Pin- 737102, Contact- 8900154154, Mail- kdutta@cus.ac.in

Esraj is a member of the Ravana[4] group of instruments. It is mainly considered as an accompanying instrument. Sarangi used to be use with the 'Baizis' (a special kind of cantatrice) in past. So, it had less aristocracy. Esraj is introduced for educated aristocrat society. Esraj is popularized in Bangladesh by visvakabi Rabindra Nath Tagore. Now esraj is an inseparable accompany instrument of Rabindra Sangit. Esraj is also appropriate for solo performance- but only possible for well-trained artists.

Gharana of Esraj:

Banaras Gharana:

There are two Banaras Gharana. First is, established by Nabibaksh Sarangiwala of Banaras. No one is identified without him as carrier of this gharna. The second is, Ishwari Prasad ji of Punjab Gharana. There is also no trace of any other Esraj player.

Gaya Gharana:

Hanuman Das Singh ji is the pioneer of this gharana. Kanailal Dherji was also an eminent player of this gharana. Though the playing style was little different of them. Chandrika Prasad Dube was a renowned esraj player of this gharana. Habu Dutta established esraj gharana in Bengal from influence of Kanai Dheri. Kanai Dheri was been replaced in sense of popularity by Sarat Dutta. Habu Dutta's playing was also little influenced by Ujir Khan sahib of Rampur Gharana. Besides this, the khayal singer of Gaya gharana like Dhirendra Nath Mitra, Harmonium player Sohani Singh, Muneswar Dayal are metionable. Esrajist Shital Mukhopadhyay also popular player of this gharana. Yogin Doctor of Gaya, Acharya Brajendrakishor Raychowdhury of Gouripur were also esraj players of this gharana.

Keramat Kukuv Khan Gharana:

Late Kalida Pal had established this gharana. This gharana was finished with his name only. There only 2 or 3 players could be found, one of them is Debiprasad Mukherjee.

Imdadkhani Gharana:

The pioneer of this gharana was Imdad Khan. Dr. Prakashchandra Sen and Brajendrakishor (Gouripur) learned esraj in this gharana. One of the popular esraj player of this gharana was Blind esraj player Srinibas. Presently so many plays esraj in the style of this gharana. Though there could mixing of style could be seen.

Bishnupur Gharana:

This gharana was started with Ram Shankar Bhattacharya. Later the eminent artists like Anantalal Bandopadhyay and Ram Prasanna Bandopadhyay have a special style of esraj playing. Ashesh Bandopadhyay and his disciple Ranbir ray of this gharana are mentionable.

Position of Esraj in Indian musical instruments:

instrument

Ghanabadya (metal) Aanadhya(drum) Sushir(wind) Tat(string)

Ghanabadya:

1. Played by factions of a totally separate part. Like- kartaal (a pair of cymbals).
2. Played with a hammer. Like- bell.
3. Played by shaking. Like- rattles.

Aanadhyabadya Structural Functional

a. Structural

1. Hollow structure. One big side, another is small. Like- Mridang.
2. Shaped as Haritaki or harad or inknut. Like- Dholak.
3. Face and middle part are equal in size. Like- Dhaak.
4. Shape of a barley seed. Like- Shreekhol.
5. Both ends are same size. But the middle part is little narrow. Like- Damroo.
6. Half barley size. Like- Nakara.
7. Half inknut size. Like- Baya.
8. Half cow tails. Like- Dahina.

b. Functional:

1. Played with one or two fingers.
2. Played with one hand. Like- Khanjari.
3. Played with a cone. Like- Damama.

Sushirbadya:

1. One hole blowing instrument. Like-flute.
2. A small wrapped leaf is placed at the blowing point of the instrument. Like-Shehnai.
3. An instrument with a key or peg. Like-saxophone.
4. Narrow blowing point but the other open end is wider. Like- Nadaswaram.
5. Big metal (alloy) wind instrument. Like- Trumpet.
6. Instrument with reds. Like- Harmonium.

Tatbadya Shape Nature Use

According to Shape:

1. With long neck. Like- Veena.
2. With short neck. Like- Sarangi.
3. With Tumba or a big bowl shaped. Like- Tanpura.
4. Partially leathered. Like- Esraj.
5. Made with straight wood. Like- Sarod.
6. Flat, square shaped or rectangular, made up of wood. Like- Violin.

According to Nature:

1. Played with finger. Like- Tanpura.
2. Played with a Mizrab or plectrum. Like- Sitar.
3. Played with a bow. Like- Esraj.
4. Played with a stick. Like- Santoor.

According to use:

1. Played the instrument by placing horizontally. Like- Swaramandal.
2. Played the instrument by placing crossways or diagonally. Like- Surbahar.
3. Played the instrument by placing perpendicularly with the help of shoulder. Like- Esraj.
4. Played by placing the instrument in front of the player. Like- Santoor.

Esraj[5] is a kind of string (bitata) instrument. The facts that are being emphasized by the makers of Esraj are given below:

1. Tabali:

Tabali is own sound box of Esraj. This part is covered with leather. The Tabali is made with an execution able goat skin. The skin is soaked in water for about 2-3 hours. Then it is cleaned by shaving with the help of 'scrub'. After that the skin is stretched with 'Rolam'. The leather is attached with the main body with gum. The glue is made with wheat flour. First the maida or white wheat flour is kneaded as a tight pulped. Then the pulped is soaked in water then is kneaded again. As a result, the final pulper is less in quantity but tighter than the primary pulped. Now quicklime or unslaked lime is mixed with that tight pulper to attach the skin with body. Now this process become easier. Now they use 'fevicol' for attachment. There is nothing in Tabali for tuning like tabla. Tuning or tightening of the membrane (leather part in this case) is depended on some primary conditions. As tightening of the leather is could not be controlled by the player, tightness of the membrane changes. As a result, tuning changes unwillingly. Rapid change in tuning due to weather condition is a major reason of less usefulness of the Esraj. Tabali is used to create resonance[6].

2. Danda:

Danda is the main structure of Esraj. It is made with wood. In that case, standard length of esraj is 2.5 ft., width is 3 inch and depth are 1.25 inch. Dicotyledon trees are needed for making esraj. Because in stems of dicotyledon trees the vascular tissues cambium and cork cambium or phellogen is responsible for increasing the diameter of stems. So, the stem becomes strong and big. There are two types of trees that are suitable for making esraj.

(i) Tectona Grandis or Segun
(ii) Toona Ciliata or Toon

Presently, maximum toon wood comes to Bengal from Tinsukia, Assam. Segun wood is collected from the old house ceiling or other beams. 80 to 100 years aged segun wood is best for making best quality esraj. Sound quality of toon wood is similar to segun. But it is more important. Except from toon or segun Gandhari,

mahogany and sishu (north Indian rosewood) wood also used for making good quality danda or body of esraj. Dense holed wood is good for making esraj. That is why pine or sal wood is not suitable for making esraj. The particular shape of danda is made with the help of hacksaw and chisel. It takes up to 2.5 hours. The perfect part for making esraj is the lower part of the stem and the part just after the bark layer. The center of the stem is not used. Because from the perimeter towards center the second layer is made of dead xylem cells. It is solid, it gives rigidity and consistency. This part is called 'Saarkath' usually. Opposite to this, the wood in center is made with dead xylem and living parenchyma cells. It circulates fluid. So, it is alive and usually called 'Asaarkath'. Among solid, liquid and gas, the speed of sound is maximum in solid. So, Saarkath is more important than Assar Kath in making of esraj. Good saarkath transports the sound fast by absorbing little energy.

The danda is made hollow- not to make the body light but for increasing weight of the sound. Tabali and danda is not same surfaced. Upper part of the danda is little curved. Sound falls on it and it amplifies the reflection of sound.

3. Longot:

Lowest part of the instrument. In past it used to be made up of deer horn or deer bone. But now it is not possible. Now longot is made with brass.

4. Bridge:

Bridge is square in shape. In past bridge was made of elephant trunk or deer horn. In present times this component has been changed due to the wildlife preservation act. Now it is made with carbon fiber. 'Bevel edge chisel' or 'gobe Batali' is used to cut and prepare the bridge for esraj. Time takes about 1 hour. After that it is smoothened with file and sandpaper. The standard size of a bridge is length 1 inch, width 0.5 inches and depth 0.25 inches. 0.25 inches is called 'jaw' by the makers.

5. Auti:

A part of bone with hole. Generally, auti or manka is cutout from camel or cow bone with saw. But now it is also made with plastics. Auti helps to pull the wire to tie.

6. Parda:

Parda (it is a kind of hard veil) is made of metal. 19 in number. German silver is used as metal. The edges of the pardas are coarsened so that it could not harm hand. 'muga' or any other thread is used to tie the parda. Parda denotes the note-positions.

7. Tar or strings:

Esraj has main four strings. The main string, tied for madhyam (M) note is made of steel. It is 3/4/5 gauge in size. The strings of 'juri' are made of bronze. It is of 27 bronze gauge.

Fourth string is made of brass and its 26 gauge. Main strings are equal in length but different in width or gauge. So, linear density is different. But these rules are not applicable for strings of 'Tarab'. The strings of 'tarab' are 30 gauge in width. The strings are tied with muga thread. The main strings of esraj are not tuned in high frequency like viola or cello. Generally tuned in lower octave Ma, Sa, Sa, Pa notes. In veena or tanpura one string expresses one note. But one string creates many notes in esraj. Tightness and note frequency of the string can be controlled through the keys or nogs. The working length and pulsating point can be determined by pressing at different point of the vibrating string with finger. The strings of esraj vibrates the air in little quantity. As a result, it has very low natural sound intensity. The sound box of esraj enhances the sound intensity as a resonator. Not only esraj, all the Indian instruments has the resonator for intensity increase. The nature of vibration in string played by bow is not same as a string played by ahold (like- as it could be seen in sitar or sarod). Playing by plucking or hitting string gives same result according to position. Plucking means pulling the string by finger or any other thing- so the string starts to vibrate. Hitting means hitting with the string with something hard. The string is tied tightly at the both ends, as a result spatial waves, nodes and antinodes is created. Further string vibrates at different part creates harmonics.

Plucked or beaten strings are of same type. But vibration of a rubbed string is different. In case of plucked or beaten string the middle point is antinode and its multiple points are also antinodes. Therefore, if the string is plucked or beaten at the middle point, then there will not even no. of harmonics be produced. Because these points are antinodes. That is why if the string is plucked at middle point, octave, super octave etc. scale cannot be found. When the even notes will be dissolved the odd notes will emerge. Third type notes could express by beating at the one-third part of the string. This is important note. At this stage second, fourth octave etc. notes show itself. The second harmonic note will express by beating at one-fourth part of string. But fourth harmonic note will not be express. Also, third and fifth harmonic notes will be expressed very well. What kind of melody or notes will be expressed is depends on the plucking or beating position of the string. To get all the harmonic notes in its full form the string has to be beaten at the point where the loop creates. All the harmonic notes can not be expressed by beating the string at the antinode point. As all the notes are equal, the plucked string instrument is more melodious. All the harmonic notes are not expressed properly as the harmonic notes above the 6^{th} note are

very low.

In case of beaten string, the even and odd notes in harmonics both are present. The intensity of main note and the lower harmonics are clearly present. Its higher value harmonic notes dominates and the mixed tune sounds sharp and metallic. Nature of vibration in rubbed string is different. The nature of vibration is forced[7] typed due to the power of player's hand. But applied force is not periodical because of irregular hand movement of player.[8]

8. Kaan or key:

There are 4 to 6 kaan or keys at the open end of the danda of esraj. 15 keys in tarab od nistir wood. Keys are made of sishu (north Indian rosewood) wood.

9. Chhari or bow:

Another name of chhari is gaz. It is 2 to 2.5 ft. long. The bow is generally divided in two parts. First is playing part second is holding part. Playing part is made with horse tail hair or thin nylon thread. 'Alkaloid'[9] resin of pine tree is applied in this part. It is insoluble in water. Resin is only soluble in alcohol. Resin helps the bow to hold the strings tightly. Holding part is made with a special wood. The handle is made with merbau or (bhola) kwila wood. This type of wood is imported from Malaysia, Indonesia and Nigeria. Merbau or kwila wood grows in salty soil. Chisel, saw, hammer and driller are used to make the wood in shape. It takes 15 days.

Timbre of the notes in esraj is depended on the width, touchpoint, playing speed and pressure of the bow. When the bow is placed on string it pulls the string and the string takes part in bow's speed primarily. But the string does not go far due to resilience or elasticity. When it goes out of limit, the string voids the bow's power and comes back to its original place. So, it crosses the equilibrium. But as it is not free vibration, it can not go far, the bow takes it back to the position. There is no significance of positional point in rubbed string. In this case the harmonic notes are not available always. Produced sounds are loud, clear and completely expressed due to continuous rubbing. The bow has to be rubbed in right angle with the rubbing string instrument. It is rubbed in other way the sound will be different. Pressure is more important than the speed of bow in control of sound quality. The higher semi-tones are more clearly expressed while pressure is increased. If the bow is placed near the bridge, the higher harmonics are loudly expressed. As the fibers of the bow are scattered, there is no particular touching point[10].

10. Angasajja or beautification of instrument:

Esraj is polished and varnished to make it look beautiful. But sound

quality is also depending on this. Celluloid is also used for beautification.

If we talk about the history of esraj, the early form of esraj was assumed to be similar with 'Dilruba' and so many other instruments like this but could not draw a proper time line of evolution of this instrument. During the different invasion in India there were a communication of economy, culture and the musical instruments as well with various community people of greater Asia. Most of the musical instruments have lost their original identity because of this mixture. In most of the cases the instruments even lost its name and old playing process. The experts of our country are little passionless about determining the proper origin and evolution of the musical instruments. Not even the historians put an effort to find it out. As a result, our lot of indigenous or Indian musical instruments are recognized as Persian. We should be more careful about our national wealth.

Popular esraj artists:

Those who have expertise in playing and popularized esraj, here are some of them are mentioned below.

Nabibaksh Sarangiwala and Ishwar Prasadi of Banaras; Hanuman Prasadji, Kanailal Dheriji, Yogin Doctorji (Bhelubabu), Chandrika Prasad Dubeji of Gaya; Ramprasanna Bandopadhyay, Surendra Nath Bandopadhyay from Bishnupur gharana; Bishnupada Bhattacharya of Barishal; Zamindar of Gouripur, Maymanshingha Brajendra Kishor Raychoudhury, Shital Mukhopadhyay; Habu Dutta (brother of Swami Vivekananda) of Calcutta and his son Sarat Dutta, Biren Mukherjee, Kalidas Pal of Kansaripara; Sureshchandra Chakraorty, famous sitarist Bilayat Khan's grandfather Inayat khan and father Imdad Khan used to play thumri very well in Esraj. But they did not play esraj at any program. Rabindra Nath, introducer of Akaarmatrik notation Jyotirindra Nath, Silpacharya Abanindra Nath are noteworthy. Many of the Tegore family used to play esraj very well.

CONCLUSION

There is no deficiency in instruments in India. Classical or folk- two types of instruments have evolved in large number in different era for many reasons. But there is a huge lack in non-instrumental mentality for instruments. It is also fully applicable for esraj. The raw material that are used for making esraj costs approx. 1500 rupees. Wages 1000 rupees. Esraj is sold for 4000 rupees. But sell rate is very low. Esraj is sold maximum 2 in a year. Though the scope of exporting esraj is increasing in first world countries like America, Canada, Germany etc. A day might come when mainly the foreign musicians will patronage the

instruments of this country along with esraj. Esraj is becoming almost obsoleting instrument in increasing pressure of electronic instruments in present scenario. Which is not desirable at all. We cannot accept any new thing just because of its newness. Suchlike, anything old cannot be rejected for its oldness. Esraj and other alike instruments should be understood-known; should be preserved at least as a specimen.

REFERENCES

1. Sukumar Ray, Sukumar Rachana Samagra, Punscha.
2. Dilruba- ancient form of esraj. Many strings of tarab are attached with danda.
3. Laxmi Narayan Ghosh, Geetbadyam, Farma K.L. M. pvt. Ltd., Kolkata, p. 170-180.
4. Ravana- Dr. Snouick Hourgronje had written about 'Kamanuja' in his book named 'Mecca', where it was firstly known as two stringed and later four stringed instrument. It is clear from the picture of the instrument that it is not esraj. Experts says this 'kamanuje' instrument is also a copy of 'Ravana' or 'Ravanastram'. (Laxmi Narayan Ghosh, Geetbadyam, Farma K.L. M. pvt. Ltd., Kolkata, p. 171-172). For more information, 'Grove Dictionary of Music and Musicians' (2nd Edition, 1952) IV volume can be seen. Ravanastra or Ravanhasta is a kind of veena, a folk instrument of Rajasthan. (Ashok Bagchi, 'Baje mridang veena', W: B: State Music Academy, Calcutta, p. 181)
5. Bitat- stringed or drumming instrument covered by leather, internal stringed instrument. The instrument which has two face covered with leather. (Dr. Bimal Ray, Sangitik Sabdakosh 2nd part, W: B: state Music Academy, Calcutta, p. 59)
6. Resonance- when frequency and frequency of enacting force is equal and expansion of frequency increases rapidly with time; as barrier and speed are proportionate so they also increase equally. Finally, when applied force is lost in opposing the barrier, then it starts to oscillate according to the Newton's first law of speed. That vibration is wide spreader or resonating. In force harmonic motion when the frequency of acting force and forced vibration are equal, it could be said that there resonance happened. This kind of vibration is also known as sympathetic vibration. If the oscillation is limitless, but practically there is always an acting force present on the oscillation, so the expansion of the oscillation remains in limit. (Yugal Kishor Mukhopadhyay, 'Uchhatara Swanabidya', West Bengal state book board, Calcutta, p. 76)
7. Forced oscillation- a small-expansion, equal time and regular oscillation of a vibrator due to periodic external force applied on it is called forced oscillation.
8. Dr. Krishnendu Dutta, 'Bharatia Badyajantra o tar swanasangati', departmental magazine of Instrumental dept., Rabindra Bharati University- 2008, p. 64.
9. Alkaloid- a plant-based compound chemical made of nitrogen and natural oxygen. (Zamil Chowdhury, 'Sabda Sanket', Dey's publishing, Kolkata, p. 198.)
10. Dr. Krishnendu Dutta, 'Bharatia Badyajantra o tar swanasangati', departmental magazine of Instrumental dept., Rabindra Bharati University- 2008, p. 65.

Bibliography:

1. Bagchi, Dr. Ashok. *Baje Mridang Veena.* Kolkata: W. B. state Music academy, 2002.
2. Wahab, Abdul. *Bangal Lokbadya.* Kolkata: Loksanskrity o adibasi sanskrity kendra, Information and cultural dept., WB govt., 2006.
3. Goswami, Karunamoy. *Sangitkosh.*

Bangladesh, Dhaka: Bangla academy, 1985.
4. Ray, Dr. Bimal. *Sangity Sabdakosh (2nd)*. Kolkata: WB. State Music academy, 1996.
5. Raychowdhury, Bimalkanta. *Bharatia Sangitkosh*. Kolkata: Imdadkhani school of sitar, 1372/1391.
6. Khan, Mobarak Hossain. *Badyayantra Prasanga*. Bangladesh: Bangla Academy, Dhaka, 1998.
7. Mukhopadhya, Jugal Kishor. *Uchhatara Swanabidya*. Kolkata: West Bengal state book board, 1980.
8. Ghosh, Laxmi Narayan. *Geetbadyam (1st part)*. Kolkata: Farma K. L. M. co. pvt. Ltd., 1975.
9. Dey, Dr. Samir Kumar. *Sangitik Sabdabijyan*. Kolkata: Silpi prakashika, 1413.
10. Chakrabarty, Satyaban. *Dhwanitattwa o Manastattwa*. Howrah: Kalyani prakashani, 1993.
11. Goutam, Dr. Mrs. Reena (Baloria). *Sources of Research in Indian Classical Music*, New Delhi: Kanishka Publisher, 2002.

* Acknowledgement: Prof. Sanjay Bandopadhyay.

Dr. Krishnendu Dutta: One of the eminent pupils of Pandit Shyamal Bose presently associate professor (Sikkim University). Ex- teacher and project associate of Rabindra Bharati university. *Chhandam Silpakala kendra* and '*Ourba*' magazine's former editor. Music critique at 'weekly Bartamaan'. Published several articles in various reputed national and international journal, 5 books and counting.

Music as a Focus in Primary Education

Rajashree Nath, Prof. Sangeeta,
Pandit Shivani Chaurasia

Abstract

This paper offers some thoughtful discussion to give importance to music in primary education. The fruitfulness of music education in primary education system and how it can be really helpful for the students in their day-to-day life and at the same time in their studies too. It also throws light on teaching techniques, challenges and obstacles, the positive outcome in students' lives are given a thought. Potential solution to the obstacles is given. Lesson plans, infrastructural settings of classrooms to be designed, multicultural vision development, mutual understanding among the students are exhibited.

Key words: *Culture, Primary Education, Music Education, Music Appreciation.*

Introduction

Education plays a very crucial role in everyone's life. Education shapes the thought process of an individual and makes us aware and conscious of our duties and responsibilities. Hence quality education is necessarily to be inculcated during the formative years of education that is the primary period. Children need to be presented with opportunities to expand their mind and to be open to learning and to achieve this goal, every institution, teacher, parent is relentlessly working on it by enhancing education through various channels. And here is why music education can be a brilliant and progressive channel to promote learning and developmental aspects in children.'There is no other science than these fine arts which can make man milder, gentler, better behaved and more reasonable.'[1]

Music, being the abode of creative minds and aesthetics, is becoming popular among the masses day-by-day. Any form of music exhibits some cultural ethnicity and variety in human race and culture from the very beginning. In order to know about one's own culture, developed creativity, imaginative attributes, the role of music can be proved to be very important and effective as well. Countless benefits are interconnected with music education. Music reveals the true colors of culture and tradition and as the time is advancing, it is high time that cultural values should be preserved and retained in order to remain connected to the roots, because our culture and tradition are our

foundation or base and we should not forget them while making ourselves upgraded with time. Music plays a very vital role in all round development along with representing our cultural identity. 'Vocal and instrumental music affects the brain through the ears, whereas dancing appeals to the eyes as well.'[2] Vocal music and instrumental music primarily indulge hearing action and dance indulge visionary action, and these three actions effects the brain, its working and thinking capacity.

Purpose

Introduction of music in education has resulted in positive outcome. Music itself is a multitasking art form, one need to be fully concentrated while doing music, which enhances the concentration power in learning in an interesting way at the same time which results in improvement of working of mind. Music is still counted in co-curricular activities in primary education. But observing its utility in entire personal development of the learner, focus should be given on this art form as a general subject.

Proposal

Primary students are like wet mud they shape up themselves according to the mold presented to them. Children learn quicker and they learn by observing. Let's throw some light on a few utilities of music on a human being:

1. Language and Reasoning: As an Indian, the beauty of diversity of tradition, culture and language is well known. Language is an identity of a person that shows where he/she belongs to. There are a number of different of languages spoken all over the world. A multilingual person can be admired globally and he/she will be capable of communicating with a greater number of people belonging to different linguistic background and that will result in a better understanding of different cultures. 'Language is the basis of a standardized communication, moreover, it is the form that we use to construct internal thoughts: such is the importance of language in reasoning – it is the vehicle for communication'[3]. It is easier for a person to learn different languages through music. Correct pronunciation, understanding of the meaning of verses all these factors helps in having more idea about other languages. For example, there are many schools where Music is taught as a co-curricular subject. Folk songs, songs of different language and different states are incorporated in the syllabus. Each folk song has a story of how it came into being, or on what occasion it is performed and the importance of that particular occasion in the culture is narrated. As a result, through the folk songs, people come to know about the traditional practices of different states and different

communities which helps in developing a sense of connection or oneness among various communities.

2. Mastery of Memorization: 'However, memorizing is not entirely an innate skill but rather an ongoing process one endures over time, it is possible for anyone can train and develop their memorizing abilities'[4].It is a fact and can be seen in our day-to-day life that a tune can be remembered easily rather than a sentence. Children are taught small poems in the form of singing rhymes, the poetry is set in a particular tune so that the children could remember it easily and these rhymes rest in our memory for a longer period. As for example, most of us still remember the nursery rhymes but can't remember all the poems or stories we studied in secondary education classes with that much clarity. 'Music can induce a state of meditation and allows you to disengage from the "noise", so you can retain information better.'[5] In studies we always see that some particular facts are composed in a rhythm or a tune for remembering because tunes are very captivating and enjoyable that the brain finds it easy to remember and keep in memory for a longer period.

3. Improvement in work and promotes craftsmanship: 'One of the biggest causes of work-related stress is boredom, which curtails high performance and work satisfaction levels.'[6] To get rid of this boredom, engaging Music to the routine can be of great help. Listening to a favorite music can actually bring the zeal to work and refreshes the mind. Any work done with concentration has a better outcome and with added dedication, the outcome becomes a work of excellence. In the entire process of musical training concentration is a very important part. To sing each note with perfection, it employs great concentration and focus. 'Students who practice with musical instruments can improve their hand-eye coordination. Just like playing sports, children can develop motor skills when playing music.'[7] The more the coordination, the better the work. Coordination not only among people but also with oneself, like the coordination of the brain and other organs of the body. In musical training, It is important to listen to each note with full focus then only it is possible to sing that note, and thus gradually the art of concentration develops in the mind which is helpful in every other work and activities in our life. Creativity is another soul part of musical training that develops creative thinking which enhances aesthetical sense and out of the box thought process in a person. As we all know any form of art is incomplete without creativity because art and creativity are complementary concepts, one is incomplete without the other. This developed thought process gives rise to craftsmanship in the learner.

4. Develops Mathematical Abilities: 'Learning music improves math skills because, at some level,

all music is math. It's about time signatures, beats per minute and formulaic progressions. Performing music, therefore, reinforces parts of the brain used when doing math'[8].Music learning also develops mathematical abilities. Music and mathematics are very closely related, the 'Laya' or tempo is nothing but time interval in simple language. In order to understand rhythm, one needs to have a clear concept of tempo which can be simply defined as a time cycle of equal interval setting. The 'Tala' is the time cycle composed of counting of beats and rhythm. Coming to the notes, the very basic music training involves Sargam and their Alankar, these Alankars are combination of notes in different patterns which is an integral part of practice. The Alankar design is similar to the concept of permutation and combination n mathematics. As in permutation and combination method, we try to attain the maximum possible combinations of a given set of numbers in music and the same method is used for practicing the 12 notes in their maximum different combinations. 'Although math and sciences are important subjects for students to learn and master, music is also crucial for students to achieve a well-rounded education.'[9] Music incorporates mathematical elements to a great extent and subconsciously musical students are actually using many mathematical contents while singing, playing and practicing.

5. Co-ordination and Promotes Teamwork: There's a popular proverb, "Unity is strength". We all know the importance of unity. Unity is the feeling of oneness among many. Oneness, harmony, these things are determined by co-ordination among one another. Let us take a particular community of people for example. So, whenever we meet any person, by communicating we can understand that the person belongs to a particular community. The reason behind this is there are some signs like common accent, a distinguished manner of speech, common features or common behavior which the people of that particular community posses. There is a co-ordination and similarity among them by which they are united and represents their community. Likewise, in music, there are groups, choir, bands whose work depend on co-ordination and synchronization that results in a great teamwork. "United we stand, divided we fall"- for this reason teamwork is necessary in every sphere of life and to promote this, harmony among people is very important which is a part of music training as well. 'Joining a band or an orchestra can help foster relationships with like-minded people, and it can encourage teamwork and leadership.'[10] The quality of leadership is very important for a successful life. It is necessary throughout journey of life and personality development.

6. Useful as a Stress Buster: Children spend a pretty long time of

the day in their schools. Sometimes it can be stressful for the students to attend classes after classes and then maintaining the mental calmness at the same time. 'School is such an important time for children and at times it can be stressful – especially during tough examination periods'[11] Children these days have many co-curricular activities along with studies and especially during the time of examination, they usually suffer from stress and could not concentrate on their studies. In this situation a little involvement of music can be very helpful by providing relief to some extent which helps to refresh the mind and have a better concentration on the studies. 'Music has become a proven remedy to relieving stress, with research from Stanford University linking this to the beat of music. At 60 beats per minute, music can cause our brain to synchronize and cause alpha brainwaves – which are present when we are relaxed.'[12] So, it is seen from the studies that Music can be a very effective as a stress buster which is important not only for students but also for every person engaged in different fields. 'Music is known to have stress relieving effect, provided the wavelength of music played matches with the emotional wavelength of the listener'[13]

'It is evidently true that the sense of music is a common element among living beings. Man is supposed to be the best creation of God or Nature, mainly because he can express his thoughts and feelings, and can imitate others according to his intelligence.'[14] It is seen that from ancient times the changes that have taken place in political, social, economic and religious conditions have been due to music and its enchanting power. Music has a high educative value. It stimulates the mind, awakens and feeds the aesthetic sense. It develops the manners, deepens and ennobles the emotional nature and gives grace to all human expressions. Consequently, fine arts are most essential to society, and every man or woman of some social standing should understand the aspects of those fine arts in which he or she is naturally gifted or personally interested. All these qualities, if taught from childhood, then the society will have more good and productive human beings and primary education is the stage when the foundation is being built. Character building process starts in primary education, so these are some qualities that should be developed by the period for a better future of the society. As North Indian classical music is widely popular now-a-days, students are taught the cultural, improvisational and structural elements one by one using traditional pedagogical tools and teaching techniques.

Challenges and Potential Solution

Primary class children are quite hard

to teach any subject, we cannot expect them to understand each and every thing to learn fast and quick. Children can be moody at times, not willing to learn and doing something else whatever they like to. In this case it is first of all important to give birth to the interest about any particular thing which is to be taught. In case of music teaching, at first they need to get familiar to it and find interest in learning, for that kids in primary section have action songs, rhymes which involves acting and dancing to catch their interest and gradually they develop a kind familiarity towards the subject. After that, step-by-step things are taught in proper manner, for the beginners, there are some basic easy ragas and talas composed with devotional poems like the composition, "Jaago mohan pyare…." in raga bhairav, "Naman karu mai sadguru charan…" in raga Bhoopali and many more. These are some basic ragas and their composition taught in the preliminary stage. Through these compositions students are taught not only music but also the cultural values.

Hence, it can be said that Music holds an important role in the overall personality development of a person, as it helps us retain our cultural values by its discipline and ethics. Education is the key to become a responsible human being who can contribute to the growth and development of the country and Music, in many ways, is complementary to education because it helps and supports in the procedure of learning, discipline and thinking of a person.

References:

1. Bandopadhyay Shripada, The Music of India, pg no. 01
2. Bandopadhyay Shripada, The Music of India, pg no. 01
3. Gao Richard, The importance of language in reasoning. http://www.rdgao.com/the-importance-of-language-in-reasoning
4. https://www.libertyparkmusic.com/ways-music-boosts-productivity-work.
5. https://www.libertyparkmusic.com/ways-music-boosts-productivity-work
6. Memorization Technique https://tophat.com/glossary/m/memorization-techniques
7. Important Benefits of Music In Our Schools - NAfME
8. https://www.brainbalancecenters.com/blog/correlation-between-math-and-music-ability
9. Why Is Music Important? An In-Depth Look - Peterson Family Foundation
10. Bandopadhyay Shripada, The Music of India, pg no. 05
11. 5 benefits of playing music | Esperance Anglican Community School (eacs.wa.edu.au)
12. The Importance of Music in Education | Nord Anglia Education
13. 'Right music is a good stress-buster' | Allahabad News - Times of India (indiatimes.com)
14. The Importance of Music in Education | Nord Anglia Education

Musical Tradition of Bishnupur Gharana: A study with reference to the contribution of 'Pandit Jadu Bhatta'

Bhattacharya Arpita, Pandit Sangeeta

Abstract

Musical Gharana is meant to be a School of Music that follows a particular singing and playing style. Bishnupur Gharana is the only Musical Gharana of classical music established in Bengal region. Bishnupur Gharana is a school of classical music established during eighteenth century at the capital of Malla kings. The Gharana was famous for practicing singing as well as playing instruments. Pandit Jadu Bhatta was an eminent vocalist and representative artist of this Gharana. His contribution in the field is unforgettable for a real music lover. The following research paper focuses on the contribution of Pt. Jadu Bhatta in Musical Tradition of Bishnupur Gharana.

Keywords- *Bishnupur gharana, Bengal region, eighteenth century, Malla kings, Pt. Jadu Bhatta, Dhrupad tradition.*

Introduction

The culture of India is a legacy of its own. It is neither copied nor adapted but, is definitely effected by different neighboring cultures that people brought with them. Art and Music of a place, is an inseparable part and a significant portrayal of its culture, and when it comes to India, a harmony of different regional cultural arts and music can be witnessed, Further, we will talk about the art and music of Bengal.

The art and culture of Bengal has a glorious past ever since the region exists. Whether it is the authentic traditional cuisines or the classic poetic style of talking of the residents, Bengal is full of life and is a landscape of art and culture.

Probably, every seven out of ten households of a neighborhood of the region, is involved in an artistic practice. Various forms of music are practiced here but the most famous form of music popular here, is

* Research Scholar, Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

**Professor, Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi, email: arpitabhattacharya011@gmail.com, Contact No.: 6394530688

'Rabindra Sangeet'. The poetic compositions of the Nobel prize winner and stalwart poet-composer of all times, *'Visva-Kavi'* Rabindra Nath Tagore. He composed his own kind of music with beautified intelligent combination of North-Indian Classical, Semi-Classical Music, *'Baul'*, the popular folk music genre of Bengal and a touch of western music as well. It is widely known that Tagore family was one of the households where classical, semi-classical music were practiced along with western music. 'Rabindra-Sangeet' is a soulful harmony of notes and lyrics (*swar and pada*) and referred to as *'Ardhanareeshwara'* that is a form of Lord Shiva and Goddess Parvati together.

Rabindra Nath was greatly influenced by North-Indian Classical and Semi-classical music, mostly, by Dhrupad, which could be noticed in his wide range of compositions.

Bishnupur Gharana was the only school of Classical music in the mentioned region which specializes in Dhrupad. 'Pt. Jadu Bhatta', was an eminent representative vocalist of Bishnupur Gharana and one of the considerable music teachers of the Tagore Family. This can also be a reason for Tagore's affection towards Dhrupad of Bishnupur Gharana.

Dhrupad Tradition

Background:- Dhrupad is a calm and serious kind of song. A specific kind of pressure is stressed on throat and lungs. This is why it is called a song specified for Male singers. It was popular in the medieval era but due to the transformation in public interest it is replaced by *'Khyal'*. Most of the traditional Dhrupad compositions had four sections namely- *Sthayi*, *Antara*, *Sanchari*, *Abhog*. Now-a-days only two sections *sthayi* and *antara* are found. They are composed basically in Braj and similar dialects. Dhrupad is sung in *Chaar taal*, *Brahm taal*, *Sul taal*, *Teevra taal*, *Matta taal*, *Shikhar taal* that are being played on Pakhawaj, i.e. an instrument accompanied with Dhrupad and Dhamar. Earlier, Dhrupad was strictly accompanied by Pakhawaj, but due to lack of public interest, the use of Tabla is also liberated.

The ornamentations such as *Khatka*, *Murki* and other combination of quick phrasal notes are strictly prohibited, rather *meend* and *gamak* are used. The beauty of Dhrupad is in the temporal variations that are known as *'layakaari'*. The use of different layakari(s) are thoroughly emphasized in Dhrupad performances. Earlier, Dhrupad singers were addressed as *'Kalawant'*.

Textual References:- It is widely known that Dhrupad might have been evolved from *'Prabandha'*. [Our musical texts suggest that *Raag*, *Taal*, *Prabandh* and *Dance* are divided into two sections- *'Maarg'* and *'Deshi'*.][1] [Bharat only elaborated *Maarg*

because no bifurcation between *Maarg* and *Deshi* is found.](2) [The term *'Geet'* or *'Geetak'* was later interpreted as *Maarg*, and the *'Dhruva(s)'* described in the thirty second chapter of Natyashastra must have been replaced by *'Deshi-Prabandh'*.](3)

[There are four components of *Prabandh- Dhruv*, *Udgrah*, *Melapak* and *Abhog*.](4) Dhrupad is derived from the combination of two words- *'Dhruva'* and *'Pada'*. Dhruva is something that is subtle and Pada are the phrasal lyrics. [Dhrupad is supposed to be originated from *'Saalag-Sud'* (*chhayalag*) *Prabandh*.](5)

[Sharangdev in his musical treatise 'Sangeet-Ratnakar' described five kinds of *'Geeti'- Shuddha*, *Bhinna*, *Gaudi*, *Besara*(*veg-swara*) and *Sadharani*. These *Geeti(s)* are later interpreted as different styles of singing.](6)

We know that there are Gharana(s) of *'Khyal'* singing, similarly there are *Bani(s)* of Dhrupad singing following particular styles and patterns. There are four of them, namely- *Gauhar/Gobarhar*, *Nauhar*, *Dagur* and *Khandar*.

Bishnupur Gharana

The history of Bishnupur contributes in the glorious past of the culture of undivided Bengal. Some consider it as 'temple city' and to some it 'city of music'. The effect of temples and music is clearly observed at the place. It is also a prime location for the Vaishnav cult. [Tradition of Dhrupad was maintained in Bengal from a very early period. Dhrupad flourished at Vishnupur, Agartala, Murshidabad, Dacca and especially in Kolkata and also in the adjacent towns.](7)

[Vishnupur claims to be a gharana. Frequent visits of old masters of Dhrupad at Vishnupur in the seventeenth and eighteenth centuries are established facts.](8) The composition of Dhrupad in Bangla language, invention of notation system, and also making classical music accessible to general folk are some of the major contribution of Bishnupur Gharana.

Emergence of the tradition

Bishnupur has a glorious contribution in the cultural history of Bengal. Music exists here from the sixteenth century. [Some of the 'Kirtan Phrases' of Maharaja Bir Hambir of that time are found.](9) [Some ancient manuscripts are available that suggest that numerous 'Padavali', 'Rasa-Sahitya' (Aesthetic- Literature) are composed centering the capital of the Malla kings.](10) The Malla kings were the nourishers of music, literature and art. Also, Bishnupur held the flag of Bengali culture for centuries.

[Tansen incorporated the term 'Gharana' in the history of North-Indian Raag study.](11) During 18th century, a gharana of classical music

was established at Bishnupur, the Malla kingdom. Then began the trail of practicing Vocal and playing instruments as well. [Sitar, Sur-Bahar, Esraj, Nyas-Tarang are some popular instruments of this gharana that glorifies its history.](12)

[When the successors of Tansen migrated from Delhi to the Eastern parts of India, Maharaja Raghunath (II) of Bishnupur invited one of them, who was an eminent Dhrupad vocalist.](13) [He was Bahadur Khan, son of Jeevan Khan, who was hired by the Maharaja on a monthly wage of Five Hundred Rupees.](14) This is how classical music was rooted at Bishnupur during seventeenth and eighteenth century.

Just because we are highlighting the Dhrupad Tradition, does not mean that Bishnupur Gharana is limited only to Dhrupad practice. It emphasized the practice of *Khyal*, *Thumri*, *Tappa* as well. But mostly it has its excellence in Dhrupad. As, Agra Gharana is known for its Dhrupad practice but it also practices other forms of classical music as well.

Specialty of Bishnupur Gharana:

The fundamental feature of Dhrupad singing in Bishnupur is the simplicity. This is the most idealistic feature. [The use of ornamentation e.g. *meend*, *gamak* is prohibited and the clear pronunciation is emphasized in this gharana.](15) [The aalap of Bishnupur Gharana is considerably long. It has four sections. There is Nom-Tom incantation in slow rhythm which successionally grows to double, triple and quadruple.](16) [The lyrics are the only conveyor of the melody in Bishnupur Gharana.](17) It shows the contradictory impression to traditional Dhrupad that we are aware of. Generally, we witness Dhrupad performances, that showcase the use of different ornamental variations of *meend* and *gamak* in quantitative scale.

[We are told that, *Khandar-Vani Alamkara* in performances was very popular in Bengal. Pt. Jadu Bhatta was a representative of this style.](18) Core characteristics of a *Vani* are described as *Alamkara*. There are numerous such *Alamkara(s)* for Dhrupad singers. Birendra Krishna Roy Chaudhury mentions some of the *alamkara* as [*dhuran*, *muran kampan*, *andolan*, *sparsan*, *meend*, *aas*, *chhut*, *khandar*, *badar*, *lahar*, *dahar*, *dagar*, *gamak*, *lahak* etc.](19)

Contribution of Pt. Jadu Bhatta in the tradition of Bishnupur Gharana

Jadu Bhatta, as the name is enough in itself so is the work in the field. He is one of the stalwart musical personalities of Bishnupur Gharana as is widely known. He contributed through his singing, teachings and preaching as well.

[Pt. Jadu Bhatta was born as 'Jadunath Bhattacharya' in the year

1840 at 'Bhatta Para', Bishnupur, Bankura district. His father Pt. Madhusudan Bhattacharya or 'Madhu Bhatta' was a great musician and also as transparent in instruments.](20) As is clear, he might have been influenced by his father's music love. he started learning music from his father. [Pt. Ramshankar Bhattacharya was very impressed by little Jadu's talent when he heard him singing one of his songs with such accuracy and sensibility.](21) Pt. Ramshankar Bhattacharya began teaching little Jadu right away. [After a long tutelage of nine years he had to stop learning because of his master's growing age and declining health. He went to Kolkata after his master passed away.](22) [Luckily he found Sri. Ganga Narayan Chattopadhyay of 'Betiya Gharana' as his Guru and learnt Dhrupad and Dhamar from him.](23)

Dilip Kumar Mukhopadhyay states in his book "*Bharater Sangeet Guni*" that, "Pt. Jadu Bhatta was very peculiarly particular about his instrument while singing. He used to take quite a long time to tune his tanpura until he was absolutely satisfied with the notes it produced. As we often witness that the musicians, either vocalist and instrumentalist, take a remarkably long time to tune their instruments and accompaniments, he was also one of them. Dilip Kumar Mukhopadhyay narrates an incident that, "once in a function, where 'Bankim Chandra Chattopadhyay' was also present, he was asked to sing". [He was as usual tuning the Tanpura neglecting the mood and temperament of the audience. Bankim Chandra was at ease at first, but then Bankim Chandra lost his patience, the two had a go and tended to leave the gathering.](24) [The hosts then held the charge and brought them back and Pt. Bhatta began to sing Raag Darbari-Kanhada.](25) [It had such an impact on Bankim Chandra that he accepted Pt. Bhatta's tutelage as is mentioned in his biography".](26) Also, Jadu Bhatta first gave music to the national song of India, 'Vande mataram'.

[Tagore himself states that, 'Jadu Bhatta was much more than just an ustad'.](27)

[Jadu Bhatta adorned a number of royal courts of Bengal and Sangit Sabhas of elites of Calcutta. Principal among them were: Tripura Royal Court and the *Jorasanko Thakurbadi*.](28)

[Impressed by his singing, the king of Tripura, Maharaj Ravindra Manikya awarded him with the title of *'Taanraaj'*. Also, king of *Panchkot* Raja Neelmani Singh gave him the title of *'Rangnath'*.](29)

He had a great command over Bangla, Hindi and Braj languages as is clear from his known compositions. Also, Dilip Kumar Mukhopadhyay reassures this in his book *'Bharater Sangeet Guni'*. He was a musician one

of its own kind.

Some of his compositions are-

- [Koun roop boli go rajadhiraj, aaju nain nirakhi rangnath gaave; composed in Raag Tilak-Kamod, Jhaptaal.](30)
- [Shashadhara tilak bhaal; composed in Raag Bhairav, Jhaptaal.](31); and many more that drenches you with the aesthesis of melody and literature.

One of his well-known disciple, was Master Pt. Radhika Prasad Goswami, another stalwart vocalist of Bishnupur Gharana.

As a contradiction to the Bishnupur Gharana style, [his singing had a majority of use of Gamak.](32) This could be the double impact of learning from Bishnupur and Betiya Gharana both. [He had an easy access in all the three octaves.](33) [He died at a very young age of 42 years in the year 1883 at his place in Bishnupur.](34)

Conclusion

Dhrupad is the most ancient style of singing in North-Indian Classical Music. It is known that Raja Maan Singh Tomar of Gwalior contributed in the spread of Dhrupad. The history music has given us so many talented Dhrupad singers over the time. Many maestros of different Banis. As the time passed new developments were made, new techniques were incorporated, new technologies were applied and so emerged new Gharanas, but Bishnupur held its tradition as its asset and never loosen the grip.

If it had been the age of machines, Pt. Jadu Bhatta's artistry would not have faded from our memories. He was such a musical personality who however have died at a young age but his artistry, his singing and contribution in musical field is enough to last for ages. After the death of his Guru Pt. Ramshankar Bhattacharya, he left Bishnupur and went to Kolkata. There he started learning from Sri. Ganga Narayan Chattopadhyay of Betiya Gharana. Betiya Gharana is a Gharana of Dhrupad from the eastern parts of India. It belongs to the Royal Court of Bihar. It developed mainly during the nineteenth century.

The quantitative use of *meend* and *gamak* is the impact of his later tutelage. However, he is considered a representative of Bishnupur by his birth and preliminary vocal training. His worthy disciple Pt. Radhika Prasad Goswami was also a worthwhile artist of Bishnupur Gharana. Pt. Jadunath Bhattacharya was a great composer; laudable laureate who wrote many Bandish(es) in Hindi, Braj, Bangla and similar dialects; a worthy disciple to the Gurus who taught him and a expressive singer whose voice drenched the listeners in the aesthesis of his singing.

References:

1. Thakur, Pt. Onkar Nath. (2012). Sangeetanjali: Volume-5, Pg. No. 2-8
2. Kapoor, Prof. Mangla. (2013). Sangeet Maangalya, Pg. No. 86
3. Same as 2
4. Chaudhari, Subhadra. SANGEET RATNAKAR. Pg. No. 206
5. Same as 4
6. Kapoor, Prof. Mangla. (2013). Sangeet Maangalya, Pg. No. 106
7. Rai, Sukumar. Music of Eastern India, Pg. No. 78
8. Same as 7
9. Dutta, Debabrata. Sangeet Tatwa.
10. Same as 9
11. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 41
12. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 41; Bandopadhyay, Swapan. Ananda Bajar Patrika.
13. Same as 11
14. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 41; Mallick, Priyanka. (2016). From Gharana to School – The History of Classical Music in Bengal, unpublished thesis, Dept. of History, Jadavpur University, Pg. No. 30
15. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 42
16. Same as 15
17. Same as 15
18. Rai, Sukumar. Music of Eastern India, Pg. No. 76
19. Same as 18
20. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 46; Singh, Pradeep Kumar. Bishnupur Gharanar Sankhipta Itibritta.
21. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 47; Watwe, Ms. Tripti. Sangit Bhavan and it's Acharyas, unpublished thesis, Visva Bharati, Shantiniketan, Dept. of Hindustani Classical Music, Pg. No. 76
22. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 47
23. Watwe, Ms. Tripti. Sangit Bhavan and it's Acharyas, unpublished thesis, Visva Bharati, Shantiniketan, Dept. of Hindustani Classical Music, Pg. No. 76
24. Mukhopadhyay, Dilip Kumar. Bharater Sangeet Guni, Pg. No. 48
25. Mukhopadhyay, Dilip Kumar. Bharater Sangeet Guni, Pg. No. 49
26. Same as 25
27. Watwe, Ms. Tripti. Sangit Bhavan and it's Acharyas, unpublished thesis, Visva Bharati, Shantiniketan, Dept. of Hindustani Classical Music, Pg. No. 77
28. Chatterjee, Chhaya. Sastriya Sangeet and Music Culture of Bengal through the ages.
29. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 47; Watwe, Ms. Tripti. Sangit Bhavan and it's Acharyas, unpublished thesis, Visva Bharati, Shantiniketan, Dept. of Hindustani Classical Music, Pg. No. 77
30. Source: Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva

Bharati University, Pg. No. 47

31. Source: Ganguly, Dr. Nupur. Rabindra Bharati University. In a workshop organized at Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University on 15th February, 2022 under the title " Influence Of Dhrupad, Khyal, Thumri and Tappa on Bengali Songs" she shared the composition.
32. Mukherjee, Subarna. (2019). Speciality of Raga in the Singing Style of Bishnupur Gharana, unpublished thesis, Sangeet Vibhag, Sangeet Bhavan, Vishva Bharati University, Pg. No. 47
33. Same as 32
34. Same as 32

The Tribal Music and Music Education

Partha Sil, Dr. Santosh Kumar

Abstract

Music is a treasured aspect of our culture with its large impacts on human life. Many studies have stated the importance of music on human mind, body and soul. Music, a known stress buster, is considered as a therapy for good health and wellness. In recent times, music has become a part of education in India, like most of the other nations. Such a formal training in music is termed as ***'MUSIC EDUCATION"****. This paper highlights the different aspects of music education, its implications as well as the related philosophy. Apart from this, the paper also focusses on how music education can help conserve the music and musical instruments of the tribes, which otherwise have reached the verge of extinction.*

Key words: *Music, Tribal Music, Music education, Traditional Music, Indigenous Music.*

INTRODUCTION

The art of music has substantially influenced mankind since time immemorial. In fact, music defines the culture as well as customs of a society. Music also plays a significant role in shaping the individuality and thought process amongst people. Several studies performed in the field of educational psychology, neurology and other sciences have clearly revealed the importance of music in the cognitive and psychosocial development of children as well as adults. According to some studies, music and rhythm stimulation has unbelievable influence on the cerebral cortex of the brain. Thus, music is necessary not only for the upliftment of the society and its people but also for the cognitive development of individuals in general. Hence, a knowledge of music can prove to be extremely fruitful.

Most societies across the world have their own traditional as well as contemporary music. For example, countries like Ancient Greece, China and Africa have always emphasized and understood the importance of music. The early history and age-old stories of these civilizations clearly portray the presence of different forms of ethnic music which reflects their

*PhD Research Scholar, Sikkim University, Gangtok, basuripartha@gmail.com

**Assistant Professor, Sikkim University, Gangtok, krsantosham@gmail.com

culture. These cultures did not merely regard music as an artform but as a way of life.

Our country India, is perhaps one of the most diverse countries of the contemporary world in terms of both music as well as culture. However, this is not something new. India has always been a hub of rich musical forms. Every community residing in our country mostly has its own traditional music which is quite unique in its own way. However, the most fascinating musical forms are owned by the tribes of India. Most of the ethnic tribes have unique and unconventional music and musical instruments which are still unknown to the modern world. The musical traditions of these indigenous people are mostly oral in nature and are passed down from generations to generations. However, in the recent times, with the advent of modernization, sophisticated lifestyle of people as well as lack of knowledge, these age-old musical traditions are now on the verge of extinction. The only way to conserve this music is through educating the people, particularly members of these ethnic communities, regarding the significance and beauty of these mesmerizing musical heritage through a formal training. Music education can prove to be quite significant in this aspect.

Music education is a rich subject which has developed over the last hundred years (Hochenbaum & Kapur, 2014). In a number of countries around the globe, pedological strategies have been developed to deliver musical learning in the classrooms which would help to increase the motivation, participation and engagement in music among the students (Hemming-Georgii & Westvall, 2010).

Music schools offer a wide range of possibilities fulfilling the needs of music education in today's society. Inclusion of a wide variety of musical subjects provide the amateurs with proper training and experience as well as to detect and nurture talents in individuals who go on to pursue music professionally. The music schools also provide an inclusive space promoting personal development and well-being (Alba & Gomez-Diaz, 2018).

THE TWO PREMISES OF MUSIC EDUCATION

Most people, around the globe, are now experiencing and performing music in a significantly higher number than at any previous time. Newer technology has now made it possible to create and distribute music all over the world. However, in spite of its huge importance, the role of music education is often neglected. In this context, the two main premises of music education need to be discussed. Traditionally, theorists have considered the 'intention to teach' and the 'intention to learn' as the two main

premises of imparting music education. Consequently, the core values of music education are the conscious purpose of teaching other individuals and the conscious desire of individuals to learn. Such premises of music learning embrace every kind of music education. The most common among this is the traditional form of music education which is being imparted in the schools as well as the community music schools. Community music involves the creation as well as active participation in various forms of music such as performing as well as improvising. This practice is still at a primary level with respect to the tribal communities of India. (Olsson, 2005).

FACTORS AFFECTING MUSIC EDUCATION

Apart from the premises of music learning, two other factors largely effect the type of music education: (a) Nature of music (b) Significance of music

NATURE OF MUSIC

Musical works usually result from the actions of people. In other words, musical products like performances, improvisations, compositions and arrangements derive their nature and significance from their contexts of creation and use. Even the structural details of musical patterns like melodies and harmonies owe their characteristic feature to the reflections of the music makers. Thus, music education to a large extent depends on the musical creativity of the instructor and also the nature of music that is being taught (Elliot, 2009).

SIGNIFICANCE OF MUSIC

Significance of music in human life also has an impact on type of music education that is being imparted. Usually, the form of music which liked by the audience or which brings a sense of relaxation and peace to human minds forms an indispensable part of the education curriculum. Moreover, musical works which bring a sense of cultural integrity are emphasized more in music education. Additionally, teaching and learning a variety of music, comprehensively as musical cultures, is an important form of multicultural music education (Elliot, 2009).

WHY TEACH TRIBAL MUSIC?

Music education and learning has a long history of defending its essence in the school curriculum and other educational institutes (Pitts, 2015). Music education is considered to have many important values among which self-growth and self-knowledge are worth mentioning. Music extends the range of people's expressive and impressive powers by providing the opportunities to formulate musical expressions of emotions, musical representations of people, places and things and musical expressions of

cultural ideological meanings. When these range of opportunities for musical expression and creativity is combined with the opportunities presented by texts in vocal and choral works, music makers gain numerous ways of giving artistic forms to their powers of thinking, knowing, valuing, evaluating, believing and feeling which in turn challenges the listeners' conscious powers and musical understandings (Elliot, 2009).

Music education also increases the motivational powers of an individual. This motivation acts as a driver that encourages an individual to engage in specific activities. Recent advances in research shows that knowledge of basic motivational features is very important for music teachers, allowing them a better understanding and planning the internal dynamics of music education (Susic & Benic, 2017). Now, going a step further, tribal music education can take this entire process to a whole new level. Educating the tribes regarding their own music, musical instruments and culture can conserve this rich musical heritage. For example, Sikkim, a north-eastern state of India is a land rich in numerous ethnic tribes and communities. The amalgamation of these tribes has given rise to a multicultural society in the state. Each tribe of Sikkim, particularly the Lepcha, Bhutia and the Nepali, have their own unique folk music as well as musical instruments. These musical instruments are mostly made of local materials like bamboo, gourd, bones etc. and consist of a unique playing style which produces fascinating tunes and rhythm. However, today very few people exist who can actually play these instruments. Even the individuals belonging to these communities are unaware of their own musical heritage and culture. Hence, a proper formal training is required through which the knowledge of these traditions can actually be imparted to the common people. This type of music education is the only way through which this multicultural music as well as musical instruments of the tribes can be conserved.

TEACHING-LEARNING PROCESS

Music education is not only concerned with developing musicianship-listenership and musical creativity in the present, but also teaches the students a method to continue developing their musicianship in the future.

The process of developing musicianship is a particular kind of learning process that the students can engage in and learn how to employ themselves. The keys to this process are targeting attention, progressive musical problem solving, problem-finding, musical problem reduction, critical reflection and the creative generation and selection of musical ideas (Elliot, 2009).

TEACHERS ENGAGED IN MUSIC EDUCATION

Teachers who are musically competent themselves mostly carry out music education. Musicianship and teaching ability are interdependent. One without the other is insufficient. Becoming an excellent music teacher depends to a large extent on learning to reflect the teaching efforts to develop the musicianship of the students facing appropriate musical challenges. (Elliot, 2016).

EMPOWERING TRIBAL MUSIC EDUCATION THROUGH TECHNOLOGY

Music education in the modern world is largely empowered by technology, which plays important roles in at many levels of a musician's practice. While pursuing an education in music, the increasing prominence of technology in the life of practising musicians is often observed. Portable recording devices is one of the simplest ways in which technology promotes today's learning environments. Many musical education programs now have 'keyboard labs' where a group of students gather around computers with headphones, engaging with interactive musicianship skills software.

Computer-assisted music learning can be used for musical activities such as ear training, rhythm scales, scales and harmony as well as other theoretical aspects of tribal music. While current technological systems work satisfactorily for certain aspects of musical training, no readily available system specializes to the individual needs of the performer or a particular musical instrument (Hochenbaum & Kapur, 2014).

THE PHILOSOPHY OF MUSIC EDUCATION

A philosophy of music education refers to the value of music, the value of teaching music, and how to practically utilize those values in the music classroom (Elliot, 2016). The philosophical basis of music education often leads through the aesthetic and praxial schools of thought (McCarthy & Goble, 2002).

AESTHATIC APPROACH OF MUSIC EDUCATION PHILOSOPHY

During the first half of the 20th century, music education in the public schools was often reflected the role of music in the social, physical, moral and intellectual development of the individuals. However certain influential music educators felt the need for a strong theoretical foundation in order to create a more academically credible basis of music education which led to the emergence of the aesthetic approach of music education. As per the aesthetic approach, music education is largely associated with the emotive life. Some scholars emphasized the notion that

all music is similarly expressive of human feeling while according to some others, musical work alone has the capability to excite feelings and emotions in the listener (McCarthy & Goble, 2002).

PRAXIAL APPROACH OF MUSIC EDUCATION PHILOSOPHY

Although the aesthetic approach of music education was largely accepted, yet some scholars discussed its limitations and advocated the adoption of a more relatable philosophy, one that would emphasize "more inclusive understandings of socio-musical values and related educational means". This led to the development of the praxial philosophy of music education. The praxial philosophy largely addresses seven basic issues of music education which are as follows:

- Aim or why teach music?
- Knowledge
- Learners
- Teaching-Learning Processes
- Teachers
- Teaching-Learning Context
- Evaluation

The praxial philosophy of music education has developed largely during the last decade. This philosophy basically highlights the importance of teaching and learning music as a particular form of action that is purposeful (Elliot, 2009).

Apart from the above-mentioned approaches, two additional philosophical approaches of music education have been proposed: the synoptic and the analytic approaches (Jorgensen, 2001).

The synoptic approach signifies a constructive role of extant literature to formulate a philosophical perspective of music education while the analytic approach emphasizes on a critical role of existing literature and philosophical perspectives in music education (Jorgensen, 2001).

IMPLICATIONS OF MUSIC EDUCATION

The development of the branch of music education provides the music educators a common educational terminology for articulating and assessing the outcomes of music learning that can be used as a tool for teaching and evaluation of music programs. Also due to the involvement of music in the academic sector, music education programs can now overcome their long-standing marginal status. By doing so the music programs not only increase their academic credibility but also translate into a language that can be understood by non-musicians (Hanna, 2007).

CONCLUSION

In conclusion it can be said that music education and philosophy is moving forward in rich and exciting ways. It is emerging on multiple fronts as new pragmatic and praxial philosophers and critical theorists are applying their understanding to resolve the past and present issues in music education.

Accordingly, music educators now have more sources of philosophical insight on more topics than ever before. The first challenge of the music educators is to approach this literature with a balanced attitude of critical reflection. The second challenge for both present and future music educators is to use this literature wisely during the development and refinement of their own philosophies of music education. Music education and philosophy must not be left alone to capital music education philosophers. It should be carried out and applied continuously by music teachers and community musicians who work with people in the everyday world. Music education must not only be limited to the mainstream music, but should actually reach out to the tribes and ethnic communities. This is utmost important for safeguarding the culture, music and musical instruments of these indigenous groups. More people, particularly, musicians from these communities must be indulged in this process for better outcomes. The idea of tribal music education is currently at the preliminary stage and requires more planning and effort.

REFERENCES

- Alba, d. B. & Gomez-Diaz, M., 2018. Music education for all: The raison detre of Music schools. *Education Sciences,* 8(66), pp. 1-16.
- Alperson, P., 1991. What should one expect from a philosophy of music education?. *The Journal of Aesthatic Education,* 25(3), pp. 215-242.
- Bastiao, A. Z., Menezes, M. & Oliveira, A., 2011. Pedagogic Articulations In Music Education: The Pontes And The Ame Approaches For Continued Teacher Education. *Problems in Music Education,* Volume 8, pp. 25-32.
- Elliot, D., 2016. Music Education Philosophy. *Oxford Handbooks Online,* Volume 1, pp. 1-30.
- Elliot, J. D., 2009. *Praxial Music Education: Reflections and Dialogues.* s.l.:Oxford University Press.
- Green, L., 2008. *Music, Informal Learning and the School : A New Classroom Pedagogy.* 1st ed. London: Ashgate Publishing.
- Hanna, W., 2007. The New Bloom's Taxonomy: Implications for Music Education. *Arts Education Policy Review,* 108(4), pp. 7-16.
- Hemming-Georgii, E. & Westvall, M., 2010. Music education- a personal matter? Examining the current discourses of music education in Sweden. *British Journal of Music Education,* 27(1), pp. 21-33.
- Hochenbaum, J. & Kapur, A., 2014. Towards the Future Practice Room: Empowering Musical Pedagogy through Hyperinstruments. pp. 307-312.
- Jorgensen, E. E., 2001. What are the roles of philosophy in music education?. *Research studies in music education,* pp. 19-31.
- McCarthy, M. & Goble, S. J., 2002. Music Education Philosophy: Changing Times. *Music Educators Journal,* pp. 19-26.
- Olsson, B., 2005. A Credo of Music Pedagogy. *International Journal of Music Education,* 23(2), pp. 121-123.
- Pitts, E. S., 2015. What is music education for? Understanding and fostering routes into lifelong musical engagement. *Music Education Research,* 19(2), pp. 160-168.
- Susic, B. B. & Benic, Z. M., 2017. *Different Teaching methods in Music education and Achievement Motivation.* Zagreb, Faculty of Teacher Education, University of Zagreb (Croatia).
- Vishal, D., 2015. *The Face of Music Education in Schools in India.* Mumbai, ResearchGate.

Dhruva – Gana

Kathika Kushari

ABSTRACT

In India, about 1500 B.C. to 1200 B.C, Indian music reached to its highest level. In those days, Indian Music was classified into two section, eg, i) Gandharva or Marga, and ii) Desi or regional urban. Again, both of them was also divided into dramatic and non-dramatic. In Gandharva, dramatic songs ware known as 'Dhruva'. It was performed in between the two dramatic scenes and also prior to beginning of the play (dance-drama). Those songs were mostly written in Sanskrit, Souraseni and Magadhi languages. They were composed in one lyrical stanza and was called 'Vastu'. The songs were set of Gandharva or Marga Talas and Jatis (Modes) or Grama Ragas. Dhruvas were performed behind the curtains with musical instruments.

The non-dramatic songs of Gandharva were known as Prakarana Gitas , they were 14 in number . Later, with the rise of Buddhism, Gandharva Dhruva became obsolete.

Key – words : *Gandharva , Marga , Dhruva , Jati , Grama-raga , Vastu , Prakarana*

ARTICAL

INTRODUCTION :-

Drama in the ancient context was said to be a blend of four components : **Speech**, **Gesture**, **Song** (or Music) and **emotion**. Each of these was believed to correspond with a **Veda** : The spoken word or speech the vehicle of elemental power with **Rig – Veda**, acting gestures and expressions with ritual action of**Yajur veda**, songs rooted in tradition with the musical style of rendering the **Sama – Veda** verses , and emotional elements communicated to spectators through the combination of all such means with **Atharva – Veda** . A play was described as a poem **(Kavya)** that is to be seen and heard (**Drshya – Kavya**). Song and music, therefore, did play a vital role in the enactment of a play. The songs in the play were of **Dhruva Gana** class .

Dhruva songs are supposed to be the oldest from of Indian songs which were manifested with sophistication of first order and musical technicalities of the highest degree.

Address - 6/791, G/C Nilkantha Apartment, Ray Bahadur Satish Chandra Mukherjee road, Debipark, Po+Dist–Hooghly, Pin–712103, Mobile-7998070793, 8240611068, E-mail kathika.kushari@gmail.com
Academic Qualificattion –Ph.D Research Scholer , Department of Musicology Rabindra Bharati University, Kolkata - 700050, 2022

Of course, these were the songs used in different sequences of a particular Drama, at different times on different occasion.

CLASSIFICATION OF DHRUVA

Bharat has elaborately dealt with the **Dhruva** type of dramatic songs in the **Natyashastra** . He has said that they were 464 in number, and were divided into **sama** and **visama**. the **Sama – Dhruvas** were possessed of **vrttas** and **aksara**. The Dhruva songs evolved from the sources of three types of Vedic songs and other seven types of Gandharva Geetis :-

The sources of Dhruva songs are follows :-

RK – This is a from of Vedic song which is composed of the line and stanzas of the hymns of Rk – Veda.

Panik – This is also another type of Vedic song which is rare.

Gatha – It is virtually the from of **Sama-Gana**. which was created by tuning the **Rk** mantras in ideal music form, all the mantras in the**Samaveda** were used as songs.

The other seven types of Gandharva Geetis are mention below:

Mandraka, Aparantaka, Ullopaka, Rabindraka, Ouvenaka, Prakari**,** and Uttar**.**

The other seven types of gitis starting from **Madraka** to **Uttar** were purely traditional and could neither be composed arbitrarily, nor could be change accordingly to need. This songs were virtually the literary expressions to represent the ideal models of musical structure, rich both in tonal and rhythmic characteristics. These songs were not composed for any particular sequence as is required in case of composition of Dramas. The **Dhruvas** had in them five categories like **Jati**, **Stbana**, **Prakrana**, **Pramana**, and **Nama**. The **Dhruva Gitis** like **Praveshika**, **Naiskramika**, **Aksepita**, **Prasadika** and **Santara** were used in different functions of the dramatic performances (**Abhinayas**). They were also known as **Pravesiki**, **Naiskramiki**, **Aksepiki**, **Prasadiki** and **Santara** or **Antara** . Some of the **Dhruva songs** were sung by the musicians behind the curtain. And when it was removed the character would enter and join the singing and gesturing the mood etc indicated by the song. All those songs were played to the accompaniment of the instruments. Thus the different types of Dhruvas indicate the varied funtions they perform during the course of the play. They were used to suggest either the entry or the exit of a character or other events. The Accompanying instrumental music did, of course, enhance theatrical effect of the scene, and, made it more enjoyable .

PRAVESHIKA or **PRAVESHIKI** – This type of Dhruvas used to create **calmness**, as it was saturated with **pleasing and soothing aesthetic qualities**. These were songs heralding the entrance of

a main character on to the stage for the first time. The singing of the Dhruva was generally from behind the screen (Nepathye), and when the screen was removed the character entered on to the stage. And the actor too would join the singing. This appears to be the forerunner of the Patra – **Pravesha Daru** of **Bhagavata Mela**, **Yakshagana** and **Kuravanji Nataka**. According to Rajashikara (Balabharata) the Dhruva that announces and introduces a Character, delights the hearts of the spectators, and helps to forge a relation between the two.

NAISHKRAMIKI or **NAISKRAMIKA**–The **Naiskramika** or **Naiskramiki** once were used when character **left the stage either at end or the middle of an act** .

AKSEPITA or **AKSHEPIKI** – The **Aksepita** or **Akshepiki** once were at the **discertion of the auther of eminence in situations, not usually allowed**. The change, sometimes, occurs in the character after listening to **Nepathya – Vakya** – the speech behind the curtain. Along with the change to the mood, a change in tempo also takes place – from slow to quick or the other way. **Abhinavagupta** illustrates the use of **Akshepiki** sung in fast tempo (**Dhruta**) to indicate the change of mood of **Sri Rama** from that of **sadness** (**Shoka**) to that of **heroies** (**Vira**) after listening to Ravana.

PRASADIKA or **PRASADIKI** – The **Prasadika** once were used for bridging the gulf between **two successive situations of contrary emotional appeals**. This types of songs sung in **Madhyama Kala** are used to express **Sringer Rasa**, as in **love – scenes**, the first meeting of the **lovers, recalling a pleasant memory sweet speech, joy and wonder**. It is also meant to clam the spectators after a stressfull scenc as in **Aksepiki**.

ANTARA or **SANTARA** – The **Santara** ones were used **to cover the faults in the dramas** or to smoothen over unexpected sudden incidents like **height of Anger, Sorrow, Forgetfulness, Sleep, Fainting, Falling down etc**. All such songs were played to the accompaniment of the instruments.

In connection with the above mentioned five kind of Dhruva, Bharata has discussed about the significance of the **Gandharva**, Connstituted out of **Swara**, **Tala**, and **Pada**. The word pada con-notes the idea of a song or songs in a drama, as distinguished from songs not intended for the stage, called **Pravandhas**. The dramatic performance or visual representation by gestures being an invariable feature of drama, padas were always accompanied by **Abhinaya**. Bharat has said that the **Nibandha** type of padas was **chanda**, **Yati**, **Aksara** etc.

In fact the **Dhruvas** were also known as **padas** or **ancient Prabandhas**. Accompanied by

Tala, Yati, Laya, Chanda, Rasa and Bhava.

CHANDA :-

Bharat says the Dhruva cannot be without **Chhandas** (**Meter**). According to **Natyashastra**, Chandas are discussed as an essencial part of Vachika Chhandas with that on dramatic plot with script (Pathya) and he also says gives a structure to the word of the Dhruva song .

"Chhandamsi Pathya Nibaddha."

The Chapter 16 of the **Natyashastra** discussed the practical aspects of chhandas illustrations of Dhruvas set in different vedic meters, which were -

Gaytri, **Jagati**, **Vrhati**, **Anustup**, **Tristup**, **Usnik**, and **Panik**.

This seven metres emerged from Varundeva. It is said in Aindrakanda of Sam-Veda.

"Varutthotavareene Chandyam
Vacah stotram Rajasu Gayata". 255

LAYA :-

Laya literally means binds the emotion of the song with the tempo . Laya signifies the speed or the tempo of a song or dance. The **Natyashastra** in chapter 19 described how the emotional content (**Rasa**) or the mood of a **Dhruva song** could be best presented in a certain laya.

Semiotics and Advertisement: Analysis of 'Mon Guerlain: Eau De Parfum Intense'

Dr Vivek

Abstract:

Theories proposed by John Berger, Judith Williamson, Sara mills are extremely useful for providing tools and methods to analyze advertisement's code and construction. Their theories of Semiotics also investigate the advertisement to explore the reasons of success of certain advertisement. In this way these theories help in decoding connotation meaning behind the extension meaning from the image, symbols provided in the advertisement. Through building the base of analysis on their semiotic theories, the advertisement of 'Mon Guerlain: Eau De Parfum Intense' has been explored in this paper to understand advertisement in its entirety. Efforts have been made to decode many hidden meaning conveyed in this advertisement that can be derived from the codes and signifiers presented in the advertisement.

Key Words: *Advertisement, theory, signs, signifiers, perfume*

Nowadays, advertisements have become integral part of our life. They appear anytime and anywhere forcing us to make our choices unconsciously. Interestingly advertisement not only advertise for the product, but they also convey many implicit messages and communication to its viewers with the application of codes in the advertisement. To decode these implicit messages presented in advertisements, semiotic analyses become indispensable. It offers insight and tools to explore the deeper meanings these advertisements tend to convey to its large viewer. Semiotic tries to deconstruct and decode the mythical structures of advertisements.

Theories of Semiotics:

In the modern societies, where advertising agencies adopt various means and methods to generate unconscious desire in the targeted customers, semiotic plays catalyst role in the decode of advertisement. Ferdinand de Saussure, the French linguist argues that the sign consists of two parts. The first part of sign is a signifier which are made of a sound,

Asst Professor, Dept. of English, Jai Narain Vyas University Jodhpur, Vivekpa7@yahoo.com

an object or, words and second part of the sign is the signified which is related to Concept, a meaning or an idea. According to him, the relationship between signifier and signified is usually arbitrary.

Judith Williamson in her book "Decoding Advertisement: Ideology and Meaning in Advertising" (1981) explains how the meaning of signs are willingly transferred into mythology in advertisement to give a meaningless product, some meaning. According to her, three points are important to semiotically analyse the advertisement. These points are-

1. The co-relation between signifier and signified is non-sequential. They are linked because of some formal structure assigned to them.
2. The activeness of viewer is important because it is him/her who has to make the transfer of meaning to product possible. In the absence of viewer, transference of meaning to product is not possible at all.
3. The element from which the product acquires its implicit meaning, it must have its significance in the another system of meaning.

Williamson believes that in advertisement, product produced creates a distinction by innovation of false categories. She terms this as ideology (Williamson,1981, p.13). We as viewers, unaware of ideology, participate in the creation and interpretation of the meaning believing in already knowing the facts. Thus, viewer unconsciously links product's signs, symbols and creates the meaning as per his/her understanding. Williamson calls this as the currency of sign.

Furthermore, Williamson points out that with the combination of denotation and connotation of sign, sign in its totality points to something else. This something else has been called referent system by Williamson (Williamson,1981, p.33). According to her, for the product to symbolize something, the viewer should have the knowledge of this referent system to complete the transference of meaning to product as wanted by advertisement. she also points outs towards the meta structure of the advertisement which consists of two system (1) referent system (2) product system. To make product totally deciphered, viewers are required to know about both system presented in the advertisement.

Similarly John Berger in his seminar work "Way of Seeing" expresses that seeing comes before what we know. Therefore signs tend to deliver some kinds of messagesand generate some kind of meaning in the implicit way. According to him, difference in the social presence between men and women can be easily accessed and observed. He argues that a man's presence may a

connotates what he can do to you or for yours, whereas in the case of woman's presence, it can be deciphered that what can be done to her. According to him, woman watches herself being looked at by viewers whereas man's presence gives the impression of action. Women's sense of being split into two i.e. surveyor and surveyed turns her into the object of vision. (Berger, 2008. Page. 41) Extending work of Berger, Sara Mills, another semiotic theorists point out about the fragmented body part of women being depicted in the advertisement. She argues that fragmentation of women's body parts tend to depersonalise, objectify women's body to cater it for male scrutiny (Mills, 2002, p.6).

An understanding of these theories provided by these scholars, enable us to read the meaning of advertisement in its entirety. Here application of these theories are meant to provide semiotic analyses of an advertisement which is to be explored in the next section of this essay.

Semiotic Analysis Of A Luxury Perfume Advertisement 'Mon Guerlain : Eau De Parfum Intense'

In this semiotic analysis, the advertisement of 'Mon Guerlain: Eau De Parfum Intense' has been taken to explore the working of the advertisement and many encoded underline meaning beneath this facade.

The advertisement of Mon Guerlain was launched in year 2019, featuring Angelina Jolie with Guerlain perfume. Guerlain is vintage brand of perfume having its origin in Royal France in year 1828. As an older, classic, perfume brand of France, Guerlain is very popular with young and middle aged women. Interestingly, Guerlain as a French word means a strong minded woman.

In this advertisement we can see that there are several elements which are included such as an attractive woman, a bottle of Mon Guerlain: Eau de Parfum Intense and the background. There is prominence of light colours on the advertisement, as white colour of background, blond colour look of the featuring woman and light pinkish colour of the perfume bottle. The whole hue of the advertisement is mainly light, soft colour combination. All these visible elements are signifiers of the advertisements.

The blond haired beauty posing erotically in the scene enchantingly. A very subtle, light, soft makeup that is perfectly bending and matching with the light background of the advertisement.

One glance is enough to notice in the poster is that the model is not only a female but also appears, elegant, rich and strikingly beautiful. Any one, who has ever watched Hollywood movies, will instantly recognise that the woman featured on the poster is none

other than Angelina Jolie. with recognition of Jolie, more visuals automatically spring up in the mind such as rich, famous, desirable, adventurous.

One glance is enough to notice in the poster is that the model is not only a female but also appears, elegant, rich and strikingly beautiful. Any one, who has ever watched Hollywood movies, will instantly recognise that the woman featured on the poster is none other than Angelina Jolie. with recognition of Jolie, more visuals automatically spring up in the mind such as rich, famous, desirable, adventurous.

Advertisers need the viewers to draw a parallel between the qualities of the beauty, elegance and status of Jolie and the product they are marketing for. These are some signified concept of the campaign. The light, soft background of the advertisement also has a connotation that is it brings freshness and fresh air to people just like the soft, unique, mild fragrance, this perfume brings to its customers here by making them more special among ordinary people.

Similarly presence of Angelina Jolie connotes the fact that, women are not just home maker anymore. Empowered with more money, power and recognition, women can be maker of their own destiny without the help of any man in life. She can be the epitome of a free woman, in terms of strength, dare and courage. Advertisers want that the Guerlain's customers buy this brand's perfume. By depicting the strong and sensual woman, it claims to be the champion in showcasing the multifaceted passion of femininity. Hence the association comes that 'Mon Guerlain Eau de Parfum Intense' is equal to free spirit and multifaceted passion of women. Wearing this perfume, women can display their luxurious taste, money, elite status as well as passion.

Another thing to note here is the facial expression of the Jolie. She looks confident strong willed and unapologetic woman who does not try to hind her vulnerability in fact, embraces it with confident look. Breaking free from tradition, she appears as the free woman owning her life's gear in her own hands.

Through this way this perfume draws attention of its targeted viewers to share their passion and affirm their ardent persona just like Jolie.

There is another factor at play that is, this model is depicted in the sensual way. Her almost bare body, slightly open lips and deep eyes straight looking at the camera accentuates the sensuality of the model. People can easily see her flawless, radiating tattooed skin revealed in the scanty sheets and they feel captivated by this image. Jolie's almost slipping sheet depicted in poster, which she appears to hold with her one hand, may symbolise that a modern woman does not afraid to take risks in the life to be the decision maker of her destiny. Though, slipping sheet can have its sexual connotation of woman in indulging sexual activities with another man. Similarly, demonstration of her bare back and slightly tilted, side face make the audience perceive that the woman's body language is slightly suggestive. Jolie's body language embodies the product's quality advertisers want to tell to their customers that the Mon Guerlain : Eau de Parfum Intense is sensuous but in a classy, elegant way. Her long tattoo showing on her bare shoulder and back, depict her as strong, freewill who can carry her sensuality boldly.

The image of a pretty sensuous woman can speak million word without uttering a single word. The minimalistic clothing, simple soft look and casual hair style of woman signifies the social status and higher class of the woman.

In the right corner of the poster, a shining bottle of 'Guerlain: Eau de Parfum Intense' is shown. The bottle of mon Guerlain is featured with a pure and eternal style.

It echoes an alchemist is bottle, which is artistically beautified with luxurious glass weight and glass adornment. So, the design signifies luxury, wealth and art. Guerlain is inscribed on the bottle, which becomes another sign for feminine beauty.

Along with the print advertisement, a 45 seconds video was also released during the launch of 'Guerlain: Eau de Parfum Intense'. This video starts with a voice saying "wild thing, I think I love you" along with depiction of Jolie, moving in silky sheets and wrapping one of the sheets around her apparently nude body. All this setting connects us with Jolie's daring and adventurous appearance signifies strong willed women believing in herself taking the course which many people afraid to take up in their life.

Alongside her glamorous, sensuous persona, her humanitarian actions such as visiting war torn countries, adopting and raising kids from different countries, never afraid to speak her mind and living her life on her terms, rightly place her in the

league of beauty with compassionate and strong hearted category of people. So here, her experience of emotional journey has been transferred to 'Guerlain Eau de Parfum Intense' that is also presented to depict the same emotion in it and this perfume aligning with the her boldness.

If we look at this advertisement from the semiotic theory presented by Judith

Williams. We see, this advertisement fulfils all the terms and conditions of her theory that has been described earlier. We see, there is no exact co-relation between the signifier that is the product and between the signified, presented through the presence of Angelina Jolie in this advertisement. They are linked with each other in this advertisement, because they are in the same frame. Similarly, the presence of Angelina

Jolie in the advertisement of 'Mon Guerlain' symbolizes something that Williamson terms as referent system (Williamson,1981, p.33). Along with perfume, Jolie provides the opportunity to represent the gamut of emotions and qualities associated with her to the product. Though, it is important that viewers should have the earlier knowledge about the qualities and emotions which Angelina Jolie represents, to understand the message in the same symbolic language. This is what is intended by advertisers.

Viewer's knowledge about Angelina Jolie's personality, will effortlessly transfer the meaning of her presence, along with perfume to the bottle itself. This is how in advertisement, a beautiful lady and the bottle of Guerlain signify the mental concept of Jolie and perfume respectively. This kind of symbolism has been called first level of denotative level. According to Williamson's theory, the sign of Jolie and perfume signify the connotation of be strong woman and luxury. So if anyone want to be like Jolie, the finest example of feminine beauty with strong personality, then one shoulduse this perfume as this can give the user, an irresistible beauty.

Similarly, as per the theory of Williamson, use of the classic, royal fragrance of Mon Guerlain, certainly creates an illusion of upward rise in the society in psyche of viewers. We now know that Williamson calls this ideology which operates as an strategy to encourage people to buy this product. Its purchase gives impression of high status in the society to the people who are using this product. Therefore, combined together, products, signs, symbols presented in this advertisement create a subtle meaning for viewers. This can be called currency of sign as per the theory of Williamson. This is what, we have seen in this advertisement, where Angeline Jolie's presence, represent a value in her interchange ability with perfume and in return confers value to viewers as well

(Williamson,1981, p. 43).

Finally when this transference is completed and when customers eventually buy Mon Guerlain Eau de Parfum Intense, they automatically tend to acquire the brand's meaning and in turn join in the remarkable journey taken by Jolie. Through this transference process, they associate themselves with a strong willed but sensitive, sensuous woman like Angelina Jolie thus hereby transforming themselves into better human beings.

With the alignment with the celebrity who, in the psyche of viewer, herself is transferring into the product, as a result customers/viewers also transform themselves into the product This exchange between viewer and imaginative subject of the advertisement has come under the definition of appellation, provided by Williamson (Williamson,1981, p.64).

We can also find meta-structure in this advertisement 1. Referent system presented with the presence of Jolie among others 2. product system (Williamson,1981, p.42), represented by Mon Guerlain's rich, royal history and association with luxury and

one of the best perfumes, within the best perfumes of the world. According to Williamson to fully understand the complete meaning of the advertisement, viewer should have the prior knowledge of the referent system, as well as product system i.e. status of product. Empowered with knowledge of this meta-structure, complete meaning can be understood by viewers which is the ultimate aim of advertisers themselves.

Furthermore, the bold, sensuous look of Jolie looking straight into the camera in the advertisement appears to be objectified Jolie, for the male gaze. Though the prominent target of the advertisers is women but though objectification of Jolie, theymust have wanted to attract the attention of men too towards the product. So that they (men) motivate women in their life to buy this product. We can draw this inference from this advertisement, though there that is no man presented in the poster through the application of the concept of absent man provided by Williamson. She elaborates the concept of Berger where he emphasis on different position of man and women in the gendered social realities. Irrespective of man's presence or absence, Whenever woman appears, she watches herself being appeared and looked at by the people especially the men. And this is how, she turns herself into the object.

In this present advertisement, there is no man presently beside Angelina Jolie but according to Williamson, there is no literal absence of man. In fact, conspicuous

presence of man gives him a pervasive presence in the advertisements, though he is nowhere

in the advertisements but woman's body has to serve him as an object, available for his gaze to appease his sensual appetite (Williamson,1981, p.102).

Angelina Jolie looking beautiful and sensuous immediately becomes the object of male desire in her present look. Her eyes looking straight at the camera does reinforces the idea of women making efforts to please her audience especially male audience. This sexual desire becomes an another connotation, though it is subtly hinted in this advertisement. Similarly, the words used in the name of perfume i.e. Eau de Parfum Intense also symbolises sexual and sensuousness of the model.

It is true that without knowing Angelina Jolie's advertisement, half of the meaning of the will inevitably lost. Jolie is the leading actor having many humanitarian efforts in her name. She is sexy and charming with great forces and persuasion. We know that the most important aim of the advertisement- is to persuade people to buy this product so popular star like Jolie becomes almost indispensable element in fulfilingtheir aim. Therefore, many advertisements associated with luxury choose popular star to symbolise beauty, success and simultaneous persuade people to buy the product to encash their fantasy about leading a luxury life as their popular stars are living.

If people do not know Angelina, still this advertisement has international appeal.

The image of an sensual, attractive classy lady is not necessarily intended to reach audience of same quality. Instead, due to fantasy generated by this advertisement in the psyche of viewer, they find the impression that if they use Guerlain Eau de Parfum Intense, they can come little closer to this fantastic image created by the advertisers.

Conclusion: -

In the conclusion, it can be said that semiotics has provided enough tools to understand the meaning of any particular advertisement. In the present-case, efforts have been made to incorporate theories of Berger and Williamson to semiotic analyse the advertisement.

Now we know that when an advertisement uses symbolism like used in mon Guerlain:

Eau de Parfum Intense, we can see that, better with little text, it can bring forward several elements and aspects of our individual psyche. Through this, they can pursue us to make choice and decision to purchase their product.

They create a myth to their targeted audience. From this, we can assess that the focus of this advertisement and advertisement in general is not on the quality of the product. Instead their focus is more

on fulfilling the vision, symbolised by Jolie in this particular advertisement that their customers are looking for.

The ultimate message of the advertisement is to show the targeted viewers that they can also be like celebrity by using the product and can fulfil the vision for themselves.

Works cited:

1. De Saussure, F. (2011). Course in general Linguistics. New York: Columbia, University Press.
2. Williamson, J. (1981). Decoding Advertisements: Ideology and Meaning in Advertising. Marion Boyers.
3. Berger, J. (2008). Ways of seeing. London: Penguin UK
4. Mills, S. (2002). Feminist Stylistics. London: Routledge
5. Yuping, Z. (2009). A Semiotic Study On Print Advertisement Of Luxury Perfume Brand For Women, Asian Journal Of Social Science Studies 4 (1) : 15, Retrieved On May 2021
6. https://www.guerlain.com/us/en-us/p/mon-guerlain-eau-de-parfum-P013139.html, Retrieved on May 18, 2021
7. https://en.wikipedia.org/wiki/Angelina_Jolie, Retrieved on May 18, 2021
8. https://www.paris8.lu/fr/mon-guerlain-eau-de-parfum-intense-guerlain/ Retrieved on May 18, 2021